भूमिका ।

देव समाज के परम पूजनीय संस्थापक भगवान् देवात्मा ने सत्य और शुभ के पूर्ण अनुरागों और मिथ्या और अशुभ के प्रति पूर्ण घृणा विषयक अपनी निराली देव शक्तियों के द्वारा सत्य धर्म्म के जिन अति अमूल्य सत्यों और तत्वों को खोजा और जाना है, और जिन की उन्हों ने इस पृथिवी पर पहली हि बार मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा दी है, उन में से एक सम्बन्ध तत्व है। अर्थात् मनुष्य नेचर का एक अंश होने के कारण उस के और अंशों के साथ बन्धा वा जुड़ा हुआ है। वह उस से सम्बन्धित रहकर हि अपना जीवन व्यतीत कर सकता है। उनसे अलग होकर जीना उसके लिए असम्भव है। रात दिन नेचर गत नाना सम्बन्धों से घिरा हुआ होकर वह प्रति मुहुर्त उनके नीच वा उच्च, विनाशकारी वा विकासाकारी, मृत्यु दायक वा जीवन दायक प्रभाव लाभ करता और उन तक अपने जीवन की अवस्था के अनुसार वैसे हि प्रभाव पहुंचाता है, और इस प्रकार अपने जीवन को बनाता वा बिगाड़ता है। इन सम्बन्धियों के सम्बन्ध में उसकी उच्च गति मूलक वा हित

कर चिन्ताएं वा क्रियाएं हैं उसके लिए धर्म्म मूलक वा जीवन दायक होती हैं, और नीच गति मूलक वा अहित कर चिन्ताएं वा क्रियाएं अधर्म्म मूलक वा विनाशकारी होती हैं। पहली प्रकार की चिन्ताएं वा क्रियाएं मनुष्यात्मा के अन्दर उच्च भावों की जाग्रति और उन्नति से प्रकाश पाती हैं, और दूसरे प्रकार की चिन्ताएं और क्रियाएं नीच सुख अनुरागों वा घृणाओं के परिचालन से उत्पन्न होती हैं। इसलिए क्या मनुष्य जगत् के नाना सम्बन्धों और क्या उस से नीचे के जगतों के सम्बन्ध में जो परस्पर हानिकारक अनमेल वा अनेकता छाई हुई है, और उस के कारण घर २, ग्राम २, नगर २ और देश २ में अनुचित दुख, क्लेश, अन्याय और अत्याचार फैला हुआ है और हा हाकार मची हुई है, वह दूर नहीं हो सकती और उन में उच्च शान्ति और सुखकर मेल नहीं आ सकता; जब तक कि मनुष्य अपने प्रत्येक सम्बन्ध में नीच सुख अनुरागों और नीच घृणाओं से उद्धार लाभ करके उस में उच्च वा धर्म्म भावों के द्वारा नहीं जुड़ता। इसी महत् उद्देश्य को लेकर भगवान देवात्मा ने मनुष्य के लिए उसके प्रत्येक सम्बन्ध को उच्च गति वा धर्म्म मूलक बनाने के लिए अपनी सत्य धर्म्म विषयक निराली शिक्षा प्रदान की है। उन्होंने इस विषय में अपने अद्वितीय

धर्म्म ग्रन्थ देव शास्त्र के चौथे खण्ड में नेचर गत सारे सम्बन्धों में वह सैकड़ों आदेशों और साधनों का विधान किया है, जिन को पूरा करने से इसी दुनिया में सच्चा धर्म्म राज वा देवराज आ सकता है। भगवान् देवात्मा ने केवल विविध सम्बन्धों में ऐसे आदेश हि नहीं दिए, किन्तु अपने अद्वितीय देव जीवन के द्वारा प्रत्येक सम्बन्ध में अपना सर्व्वोच्च दृष्टान्त भी प्रगट किया है, और इस पृथिवी में अपनी वर्तमानता के समय इन आदेशों और साधनों को प्रत्येक सम्बन्ध में आप पूरा करके दिखाया है। इसके भिन्न उन्हों ने एक २ सम्बन्ध के विषय में विविध समयों पर जो अति मूल्य वान उपदेश प्रदान किए हैं, और जिन में से कोई २ हि लिखा जा सका है, उनकी महिमा अवर्णनीय है।

हम ने इस पुस्तक के पहले भाग की भूमिका में यह सूचना दी थी, कि "पूजनीय भगवान् के अभी बहुत से लेख और उपदेश नेचर गत त्रिविध सम्बन्धों में पाठ और विचार के साधनों और अन्य विविध विषयों में शेष हैं। कि जिन को इस पुस्तक के दूसरे भाग में छापने की तजवीज़ है।" हर्ष का विषय है, कि हम अपनी इस आशा के अनुसार उन में से केवल एक भाग, अर्थात् नेचर गत विविध सम्बन्धों में पाठ और विचार के साधनों के लेखों आदि को इस दूसरे भाग में देने के योग्य हो

सके हैं। इन में से कितने हि उपदेश तो ऐसे हैं, कि जो भगवान् देवात्मा की इस पृथिवी पर वर्तमानता में हि एक वा दूसरे सामाजिक पत्र में छप गए थे, परन्तु कई ऐसे भी हैं, कि जो उनके कागज़ात में लिखे हुए पड़े थे, और अब उन्हें निकाल कर आवश्यक परिवर्तन के अनन्तर छापा गया है।

अभी विविध विषयों के सम्बन्ध में पूजनीय भगवान् के और भी बहुत से मूल्यवान और तेजस्वी लेख और उपदेश बाकी हैं, कि जिन को हम इसी पुस्तक के तीसरे भाग में देने की आशा करते हैं।

हमारी यह दिली कामना है, कि जैसे इस पुस्तक का पहला भाग क्या हमारे सामाजिक जनों और क्या अन्य अधिकारी आत्माओं के लिए कल्याणकारी और हितकर प्रमाणित हुआ है, वैसे हि भगवान् देवात्मा की सम्बन्ध तत्व विषयक शिक्षा सम्बन्धी उपदेशों की यह निराली और अति हितकर पुस्तक भी आत्मिक हिताभिलाषी जनों के लिए अधिक से अधिक कल्याणकारी और हितकर प्रमाणित हो सके।

संग्रह कर्ता
रत्न चन्द जौहर
मंत्री भगवान् देवात्मा ट्रस्ट

लाहौर
जुलाई १९३९ ई०

सूची पत्र ।

देव समाज के संस्थापक

परम पूजनीय

भगवान् देवात्मा

के विशेष विशेष

लेख और उपदेश।

दूसरा भाग।

पहला अध्याय।

नेचर गत विविध संबंधियों के संबंध में।

१—माता पिता और सन्तान के सम्बन्ध में।

२० जनवरी सन १९१९ ई० को "मात पिता सन्तान व्रत" के दिन भगवान् देवात्मा ने अपने कई पारिवारिक जनों और कुछ कर्म्मचारियों की सभा में इस सम्बन्ध के विषय में जिस अति हितकर उपदेश का दान दिया, उसका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है :—

पूजनीय भगवान् ने फ़रमाया, कि जहां तक सन्तान के पालन का सम्बन्ध है, पशु और पक्षी भी अपने बच्चों को पालते हैं। गाय, भैंस, गधी, घोड़ी, चिड़िया आदि जानवर तो पालते हि हैं, परन्तु दूसरे के बच्चों को खा जाने वाले हिंसक पशु शेर, भेड़िया आदि भी यही नहीं, कि अपने बच्चों को मारकर खा नहीं जाते वा उन्हें असहाय अवस्था में छोड़कर मरने नहीं देते, किन्तु वह भी उन्हें और पशुओं की न्याई हि पालते हैं। परन्तु शोक! और महा शोक!! कि मनुष्य के भीतर कितनी हि वासनाएं आदि इतनी बढ़ गई हैं, कि जो पशुओं में नहीं बढ़ीं; इसलिए मनुष्य अपनी इन बढ़ी हुई वासनाओं के अधीन होकर अपनी सन्तान के पालन में कितनी हि बातें ऐसी करता है, कि जो केवल यही नहीं कि उसके और उसके बच्चों के लिए कोई हितकर फल पैदा नहीं करतीं, किन्तु इसके विरुद्ध दोनों के लिए महा हानिकारक प्रमाणित होती हैं। यथा:—

(१) पशु अपनी नर और नारी सन्तान की पालना में कोई भेद नहीं रखते। वह दोनों को हि चाहे वह नर हो वा नारी अपनी सन्तान समझकर एक हि तरह पालन करते हैं, और एक हि तरह उनकी रक्षा करते हैं। एक २ चिड़िया अपने बच्चों को चाहे वह नर हों वा नारी एक हि तरह से अपने परों के नीचे दबाकर

सेवी है, एक हि तरह उन्हें चोगा देती है, और दोनों में कोई भेद नहीं रखती। परन्तु मनुष्य, विशेषतः हमारे देश का मनुष्य, बेटे और बेटी में बहुत बड़ा अन्तर देखता है। उसकी दृष्टि में दोनों हिं बच्चे उसके द्वारा हि जन्म लेकर दो प्रकार के दृश्य पेश करते हैं। एक को वह अपना समझता है और दूसरे को पराया। बेटे को समझता है कि यह मेरा है। यह बड़ा होगा, कमाएगा, हमें खिलाएगा, हमारी जायदाद का वारिस (उत्तराधिकारी) होगा, हमारा नाम रौशन करेगा वा पीछे रहेगा। इसलिए वह उसके खिलाने, पिलाने, कपड़े पहिनाने, ज़ेवर बनाने और विद्या वा शिक्षा आदि दिलाने पर अपनी शक्ति से बढ़कर खर्च करता देखा जाता है। बेटी को "पराया धन" समझता है, और इसीलिए बहुत से घरों में उनकी जो दुर्दशा होती है, और जैसी बुरी तरह से वह पलती हैं, वह अत्यन्त लज्जा-जनक है। उन बेचारियों की कोई परवाह नहीं होती। वह एक प्रकार से भाई की नौकरानी बनी रहती हैं। उनको बराबर का खाना भी कम हि दिया जाता है, अच्छा कपड़ा भी पहिनने को कठिनता से मिलता है। बीमारी में उनके इलाज से लापरवाही की जाती है। नेचर के अपने हि प्रबन्ध में अगर वह जीवित रह जाएं तो रह जाएं, अन्यथा माता-पिता की ओर से तो साधारणतः

उनके इसी तरह ख़त्म हो जाने में किसी प्रकार की कमी नहीं रक्खी जाती। लड़के के पैदा होने पर बहुत हर्ष मनाया और घर में बाजे बजाए जाते हैं, रुपए बखेरे जाते हैं, चारों तरफ़ चेहरे, पोशाक और दिल, खुश दिखाई देते हैं। बाहर के जन भी आ आकर "बधाइयां" देते नज़र आते हैं। इसके विपरीत लड़की के पैदा होने पर सारे घर में मातम छा जाता है। ओह ! किस क़दर अन्याय और अत्याचार !!

(२) मनुष्य मिथ्या अभिमान और मिथ्या लोक लाज का इतना दास हो गया है, कि किसी को अपना दामाद कहने और अपने आप को ससुर कहलाने से घबराता है। इसलिए कई अवस्थाओं में अपने हि खून से जन्मी हुई कन्या को उसके पैदा होने के साथ हि गला घोंटकर ख़त्म कर देता है। कैसी महा दुष्टता !!

(३) मनुष्य धन का दास होकर अपनी सन्तान को कई वार अच्छा कपड़ा और खाना तक नहीं देता। विशेषतः लड़कियों की बीमारी में रुपया ख़र्च करना नहीं चाहता और इस तरह उनके लिए महा हानिकारक प्रमाणित होता है।

(४) वह धन का दास होकर लड़की के जवान होने पर उसे भेड़ बकरी की न्याई किसी बूढ़े वा रोगी के हाथ

उस बेचारी को सारी आयु के लिए दुख में डाल देता है। ओह! कैसा हृदय विदारक दृश्य !!

(५) वह उनके मोह और अपने नाम और वाह-वाह का दास होकर अपनी सन्तान को कई बार आवश्यकता से अधिक खिलाता है, उन्हें ज़ेवर पहिनाता है और उनकी आदतों को बिगाड़ने का कारण बनता है, कि जो बच्चों के लिए पीछे से अत्यन्त हानिकारक प्रमाणित होती हैं।

(६) कितने हि माता पिता अपने बच्चों को नहलाने और उनकी आंखों को प्रति दिन धोने की कोई परवाह नहीं करते, जिस से बच्चे रोगी रहते हैं। कई दशाओं में उनकी आंखें चली जाती हैं, और वह सारी आयु दुखी जीवन व्यतीत करते हैं।

(७) कितने हि माता पिता अपनी सन्तान को कोई सद् शिक्षा नहीं देते और उन्हें अपनी मान्सिक शक्तियां उन्नत करने का भी कोई अवसर नहीं देते। इसलिए वह बेचारे अबोधी और मूर्ख के मूर्ख हि रहकर इस दुनिया से चले जाते हैं।

(८) कितने हि माता पिता अपने बुरे अभ्यासों को अपने बच्चों में भी संचार कर देते हैं। कितने हि तो इतने दुष्ट होते हैं, कि जो पाप वह स्वयं करते हैं, वही पाप अपने बच्चों से भी ज़बरदस्ती करवाते हैं। ऐसे

खिलाता है, शराब पिलाता है, उसको हुक्का पीने का अभ्यासी बनाता है। माता पिता अपनी सन्तान को अफ़ीम खिलाते हैं।

जरायम पेशा लोग अपने बच्चो को चोरी की शिक्षा देते हैं। बहुत से साधारण जन भी जो ऐसी शिक्षा नहीं देते लालच के वशीभूत होकर अपने बेटे वा बेटी की चोरी की हुई वस्तु को खुशी २ घर में रख लेते हैं, और उन्हें उत्साह देते हैं, कि भविष्य में भी चोरी कर लाया करो। परिणाम यह होता है, कि इस प्रकार उत्साह पाकर बहुत से बच्चे पक्के चोर और लुटेरे बन जाते हैं, और फांसी की मौत मारे जाते हैं।

बहुत से दुकानदार अपने बेटों को कम तोलना, कम नापना और व्यापार में ठगी करना सिखाते हैं, और यदि किसी को अपने मतलब का नहीं पाते, तो ऐसे शब्द कहते हुए सुने जाते हैं, "यह भीख मांगेगा, इसे कमाना नहीं आता।" अर्थात् धोखे से किसी के माल को हर लेना हि कमाई करना है। ओह! किस कदर धृष्टता और धर्म के पथ से भ्रष्टता !!

(६) कितने हि माता पिता अपने बच्चों को मक्कारी और झूठ बोलना सिखाते हैं। घर में स्वयं मौजूद हैं, परन्तु बाहर से किसी की तरफ़ से बुलाए जाने पर यदि

के द्वारा कहलवा देते हैं, कि वह बाहर गए हुए हैं।

(१०) हज़ारों और लाखों माता पिता अपनी सन्तान के मोह बन्धन में ग्रस्त हो जाते हैं। यह वह महा भयानक रोग है, कि जिस के कारण उन्हें आप और उनकी सन्तान को नाना प्रकार के क्लेशों और मुसीबतों का भागी बनना पड़ता है।

पशु किसी ऐसे मोह में बन्धे हुए नहीं पाए जाते। अपने बच्चों की असहाय अवस्था में उनकी सहाय करते हुए और उन्हें पालते हुए अवश्य देखे जाते हैं, परन्तु ज्यूं हि वह चरने चुगने के योग्य हुए, फिर उन का पीछा करते हुए नहीं देखे जाते। इसके विपरीत मनुष्य सारी उमर-मरते दम तक-मोह के बन्धन में बन्धा हुआ अपनी सन्तान के हि पीछे मारा फिरता देखा जाता है, और उसका वियोग किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकता। कितनी हि माताएं अपने बच्चों से गालियां खाकर, मारे जाकर भी उनके हि पीछे मारी २ फिरती रहती हैं। कितनी हि स्त्रियां सन्तान के मोह के कारण अपने पतियों से भी विगड़ बैठती हैं, और उन में अन्मेल पैदा हो जाता है। मां से यह सहा हि नहीं जाता, कि उसके बेटे की अनुचित से अनुचित क्रिया पर बाप की ओर से भी कोई रोक टोक की जाय। एक तरफ़ बाप बराबर अपने बेटे से किसी विषय में हानि

होती हुई देख रहा है, और उसके रोके बिना रह नहीं सकता, दूसरी ओर मां मोह से अन्धी होने के कारण यह सहन नहीं कर सकती। परिणाम यह होता है, कि घर में क्लेश रहने लगता है। कितने हि माता पिता अपने जवान २ लड़कों से नाना प्रकार के दुर्व्यवहार सहकर और दुखी होकर भी उन्हें कुछ कह नहीं सकते और अपनी गाढ़ कमाई से उनके अनुचित खर्चों को पूरा करने के लिए विवश होते हैं। मोह में इतने ग्रस्त हैं, कि लड़के की इस प्रकार की धमकी से कि "मैं घर से निकल जाऊंगा" उनके सामने अन्धेरा छा जाता है। कितने हि माता पिता लड़कों के मर जाने पर सारी आयु के लिए रोगी बन जाते हैं। उनकी जुदाई का ग़म इस क़दर छा जाता है, कि वह काम काज करने के योग्य हि नहीं रहते, और रोज़गार से हाथ धो बैठते हैं। हां, कितने हि सिर फोड़ २ कर वा ग़म में घुल २ कर इस दुनिया से हि कूच कर जाते हैं। ओह! मोह का कैसा भयानक परिणाम !!

अब एक ओर जहां माता पिता अपना तन, मन, धन सब कुछ अपनी सन्तान के लिए अर्पण करते हुए दिखाई देते हैं, और उनके लिए हज़ारों मुसीबतें झेलते और दिक्कतें उठाते और सदमे खा २ कर भी उन्हीं के पीछे फिरते देखे जाते हैं, वहां दूसरी ओर सन्तान का

क्या हाल है ? उनके भीतर साधरणतः अपने माता पिता के लिए ऐसा कोई भाव नहीं पाया जाता । छोटे बच्चों का तो कहना हि क्या है, वह तो माता पिता की सुनते हि नहीं । माताएं चिल्लाती हि रह जाती हैं। परन्तु बड़े होकर भी क्या लड़के और क्या लड़कियां भी स्वार्थ के पुतले बने हुए देखे जाते हैं । अपनी रुचियों की तृप्ति के लिए माता पिता से जो कुछ भी मिल जाए उसे ऐंठ लेना चाहते हैं, और यदि उनकी किसी अनुचित क्रिया में कोई रोक टोक की जाए,तो शत्रु का रूप धारण कर लेते हैं । यहां तक कि माता पिता की हि धन सम्पत्ति पर अधिकार लाभ करने के लिए और माता पिता को बस में रोक देखकर कितने हि लड़के उनका घात तक कर देते हैं, और अपने हि जन्म दाता के रक्त में अपने हाथ रंग कर उसकी कमाई हुई सम्पत्ति पर अधिकार कर लेते हैं । ओह ! किस कदर दुष्टता और कैसा हृदय विदारक दृश्य !!!

अब जहां साधारणतः माता पिता और सन्तान का यह हाल हो, वहां भगवान् देवात्मा ने अपनी ओर से अपनी सन्तान को, सदैव ऐसे नीच बन्धनों और वासनाओं से ऊपर होने के कारण, जिस प्रकार से पाला और पोसा है, वह एक निराला दृश्य है । फिर पूजनीय भगवान् ने अपनी सन्तान की ओर संकेत करके फरमाया. कि :

से मे कोई यह नहीं कह सकता, कि उसको हमारी तरफ़ से कभी और किसी अवस्था में भी किसी बुराई की शिक्षा मिली वा बुरे प्रभाव डाले गए हों उसकी उचित पालना और शिक्षा आदि में जहां तक सम्भव था, कोई कमी रक्खी गई हो। किन्तु इसके विरुद्ध क्या तुम्हारी शारीरिक पालना में, क्या बीमारी आदि के समय सेवा करने में, क्या तुम्हारी मानसिक शिक्षा में, क्या तुम्हारी अन्य आवश्यकताओं को ठीक तौर से और समय पर पूरा करने में और क्या इन सब से बढ़कर तुम्हारे आत्माओं को नीच भावों से मोच देने और इन में उच्च भावों के संचार करने में जो कुछ उत्तम से उत्तम हो सकता था, उस के करने का हर समय संग्राम किया गया है। और यह सब कुछ मोह बन्धन से ऊपर वा वासना रहित होकर किया गया है, और हम ने कभी भी तुम से किसी प्रकार की कोई आशा नहीं रक्खी। इसलिए हमें हर समय यह तसल्ली रही है, कि हम ने अपनी ओर से जो कुछ हितकर हो सकता था, वह कर दिया है। हां, केवल सन्तान का हि क्या कहना है, हम ने अपनी देव शक्तियों से परिचालित होकर जो जन भी हमारे सम्बन्ध में आया है वा जिस २ तक भी हमारी पहुंच हुई है, हम ने सदा हि उसकी सब से बढ़िया भलाई के लिए संग्राम किया है, और इस संग्राम

में ऐसे जनों की ओर से नाना प्रकार के घोर दुख और असह्य क्लेश पाकर भी अपनी देव प्रकृति के अनुसार कभी उनकी भलाई की ओर से मुंह नहीं मोड़ा, जब तक कि ऐसा एक २ जन स्वयं हि अपनी एक वा दूसरी नीचता के कारण हमसे मुंह मोड़ नहीं बैठा। तब एक ओर हमारे इस सम्बन्ध की महिमा को सन्मुख लाओ और दूसरी ओर उसकी तुलना में तुम लोगों का हमारे साथ क्या सन्तान होने की अवस्था में और क्या सेवक होने की अवस्था में जैसा कुछ सम्बन्ध रहा है और है, उस पर भी विचार करो। हमारी सेहत वा बीमारी, हमारी आवश्यकताओं, हमारी चिन्ताओं वा हमारी तकलीफ़ों, हमारे दुखों वा संग्रामों की ओर से क्या हमारे पारिवारिक और क्या सामाजिक जन जिस प्रकार उदासीन रहे हैं, कि जिन में हम ने अपने आप को सदा अकेला अनुभव किया है; उन को छोड़कर, क्या यह सच नहीं, कि एक २ समय में जब हम ने तुम्हारे हि हित के लिए तुम्हें किसी नीचता से निकालने वा तुम में कोई उच्च भाव जाग्रत करने के लिए यत्न और संग्राम किया है, तो केवल यही नहीं, कि तुम ने हमारे संग्राम का साथ नहीं दिया, किन्तु हमें घृणा की है, हमारे विरुद्ध उलटी गति ग्रहण करके, बजाय हितकर्ता के रूप में देखने के, दुशमन के रूप में देखा है, और हम से फटे और दूर हुए हो।

तब तुम सोचो कि तुम हमारे सम्बन्ध में कहां हो ? यदि ऐसे विचार का कोई सिलसिला चल सके और तुम्हारे लिए हमारी ज्योति को पाकर अपनी असल अवस्था को सन्मुख लाने और उस अवस्था को बेहतर करने का कोई संग्राम जारी हो सकना सम्भव हो, तो हम हर प्रकार से इस में तुम्हारी सहायता करने के लिए तैयार हैं।

सूचना :—

[उक्त उपदेश के समय श्रीमान् जानकी दास जी ने जो नोट लिए थे, यह लेख उनके आधार पर लिखा हुआ है, परन्तु स्वयं भगवान् देवात्मा का देखा हुआ नहीं है।]

२—देव समाज के सम्बन्ध में।

१६ वें वार्षिक देवोत्सव के शुभ अवसर पर " दल बद्धता " के विषय में उपदेश।

[जीवन पथ चैत्र सन १६५६ वि०]

उक्त अवसर पर जीवन दाता भगवान् देवात्मा ने अपनी अपार कृपा से परिचालित होकर आत्माओं के कल्याण के निमित्त 'दल बद्धता' के विषय में एक अत्यन्त कल्याणकारी और ज्योति से परिपूर्ण तेजस्वी उपदेश दिया, जिस में उन्हों ने प्रगट किया, कि :—

बहुसंख्या में जब किसी जाति के पशु वा मनुष्य मिलकर रहते हैं, अथवा कहीं एकत्र होते हैं, तो उसे

समूह, समुदाय, मजमा वा जमायत कहते हैं; जैसे भेड़ों का समूह, बकरियों का समूह, कबूतरों का समूह, किसी मेले वा तमाशे में वर्तमान मनुष्यों का समूह वा मजमा, स्कूल के लड़कों की जमायत, इत्यादि। परन्तु यहां यह जानना आवश्यक है, कि 'दल बद्धता' केवल किसी समूह वा मजमे का नाम नहीं है। सैकड़ों भेड़ और बकरियों के एकत्र हो जाने का नाम गल्ला वा समूह अवश्य है, परन्तु उन में किसी प्रकार की दल बद्धता नहीं पाई जाती। फिर दल बद्धता क्या है ? किसी साधारण लक्ष्य को लेकर आपस में सहाय के भाव से बहुतों का जुड़ जाना, और दल में से प्रत्येक का प्रत्येक के बचाव वा भले में साथ देना। इस दल बद्धता से क्या होता है? प्रत्येक की शक्ति प्रत्येक के साथ जुड़ जाने से बहुत बड़ी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। और ऐसी महान शक्ति के उत्पन्न हो जाने से उस दल की रक्षा और उस के मकसद की उन्नति होती है। भेड़ और बकरियों का समूह तो होता है, परन्तु उन में दल बद्धता नहीं होती, इसीलिए उनके सैकड़ों और हज़ारों के समूह को एक लड़का जिधर चाहे, हांककर ले आता है, और वह उस के आगे दम नहीं मार सकतीं। एक २ पुराने मकान और किले में हज़ारों जंगली कबूतर मिलकर रहते हैं, परन्तु दल बद्धता के न होने से वह कोई शक्ति नहीं

रखते । वह हज़ारों की संख्या में होकर भी एक बिल्ली का मुक़ाबिला नहीं कर सकते । एक बिल्ली थोड़े २ करके उन्हें रोज़ चट कर सकती है, और वह उस से अपनी रक्षा नहीं कर सकते । परन्तु भेड़, बकरियों और कबूतरों आदि के मुक़ाबिले में एक नन्ही सी मधु मक्खी को देखो, वह भी एक २ छत्ते में हज़ारों मिलकर रहती हैं, परन्तु बेवकूफ़ भेड़ बकरियों की तरह केवल एकत्र निवास नहीं करतीं, किन्तु दलबद्ध होकर रहतीं हैं; अर्थात् नन्ही सी शकल रखकर भी दिल के विचार से एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई होती हैं । वह क्या शहद आदि बनाने के लक्ष्य को लेकर और क्या परस्पर में एक दूसरे की रक्षा के लक्ष्य को लेकर आपस में आन्तरिक सहाय सूत्र से बन्धी हुई होती हैं । और इसका प्रमाण यह है, कि यदि उनके छत्ते पर कोई हमला करे, तो फिर वह भेड़ बकरियों की न्याई एक दूसरे का मुंह नहीं तकतीं । किन्तु सैकड़ों मक्खियां कुपित होकर एक साथ छेड़ने वाले पर हमला करती हैं । यहां तक कि अपने से सैकड़ों गुणा बड़े डीलडौल के एक २ आदमी को यह बहुत सी छोटी २ मक्खियां अपने २ डंक मारकर बिलकुल जान से मार देती हैं । तब याद रक्खो ! कि किसी समूह की असल शक्ति बहुत तादाद या संख्या से नहीं, किन्तु दल बद्धता से

होती है। दल बद्धता के बिना चाहे उसकी कितनी हि संख्या क्यों न हो, सब अकारथ है।

इस दल बद्धता के न होने से हम हिन्दुओं की इतनी दुर्दशा है—ऐसी दुर्दशा कि जिस की कोई सीमा नहीं। प्रकृति के नियम अटल हैं। जो उन नियमों की परवाह नहीं करते, वह नष्ट हो जाते हैं, और जो करते हैं, वह लाभ उठाते हैं। प्रकृति का नियम पुकार २ कर और दृष्टान्त दे देकर कहता है, कि "हे मनुष्यों! तुम दल बद्ध हो, तब तुम्हारी शक्ति बढ़ेगी और ऐसी शक्ति से तुम्हारी औरों से रक्षा और तुम्हारे अपने अच्छे उद्देश्य की उन्नति होगी, अन्यथा तुम्हारी बहुत बड़ी दुर्दशा और तुम्हारा बहुत बड़ा अनिष्ट होगा।" जिन लोगों ने प्रकृति की इस महान शिक्षा को सुनकर दल बद्धता ग्रहण की, वह यूरोपियन और जापानी जनों की न्याईं बड़ी २ "शक्ति शाली जाति" बन गए, और जाति बनकर धन, धरती आदि के बड़े अधिपति बन गए। परन्तु हम हिन्दु लोग वेदान्त दर्शन के अनुसार ब्रह्म बनकर भी योग २ पुकार कर और त्रिकालदर्शी कहला-कर भी कोई शक्तिशाली जाति न बन सके। और हम में से एक२ब्रह्म कहलाने वाले पुरुष की एक२ विजातीय जन के सन्मुख जो २ बुरी गत होती है, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

हमारी अपेक्षा यूरोप के कई देशों के लोग संख्या में अधिक नहीं हैं, किन्तु बहुत हि थोड़े हैं, फिर भी वह हम से असंख्य गुना बढ़कर बलवान और हज़ारों गुना धनवान हैं। इसका कारण यही है, कि हम कई करोड़ होकर भी, भेड़ बकरियों की न्याईं समूह अवश्य हैं, परन्तु परस्पर किसी सहाय सूत्र से जुड़े हुए नहीं हैं, और वह थोड़ी संख्या में होकर भी मधुमक्खियों की न्याईं सहाय सूत्र से परस्पर जुड़े हुए हैं। हमारे देश के विविध मतों और मिथ्या छूतछात और कुल के भेद ने हम को फाड़ते २ इतना नीच बना दिया है, कि मानो हमारे भीतर से दल बद्धता के भाव को हि नष्ट कर दिया है। और हमारे लिए दलबद्ध होना हि अत्यन्त कठिन कर दिया है। हाय ! हमारी कैसी दुर्दशा ! कैसी दुर्गति !! कैसी भयानक अवस्था !!!

हमारे देश में फूट और अनमेल का इतना अधिकार हो चुका है, कि सारे जन तो कहीं रहे, कुछ जन भी किसी उच्च सूत्र में बन्धकर किसी उच्च लक्ष्य में साथ नहीं दे सकते। हां, किसी उच्च लक्ष्य में साथ देना तो कहीं रहा, उलटा उस में विघ्न डालने में प्रसन्नता लाभ करते हैं।

इस समय हमारे कथन का उद्देश्य अनमेल के [illegible] ... हम से बचने और उ–

लक्ष्य को सन्मुख रखकर और उच्च जीवन की रक्षा और उन्नति के लिए दलबद्ध होकर काम करने की आवश्यकता को प्रगट करना है। जब तक इस फूट अर्थात् अनमेल का नाश न हो, तब तक किसी प्रकृत धर्म्म समाज का संगठन करना और उसका उत्तम रीति से उन्नत होना असम्भव है। प्रकृति के अटल नियमों के अनुसार इस उच्च गति मूलक दल बद्धता के लाभ करने के बिना, चारों ओर के विनाशकारी सामानों के भीतर, तुम्हारी उच्च गति के महा शुभ कार्य्य का उन्नत होना अत्यन्त कठिन, हां प्रायः असम्भव है। इसलिए तुम सब सामाजिक जनों के लिए दल बद्धता के महा हितकर ज्ञान का लाभ करना और जीवन की उच्च गति के लक्ष्य को सन्मुख रखकर परस्पर सहाय सूत्र से जुड़ जाना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे एक शरीर में उसके विविध अंग जुड़े हुए होते हैं, कि जो सारे शरीर की रक्षा और भलाई में काम करते हैं, वैसे हि तुम अपनी समाज के सारे शरीर के अंग बनकर एक दूसरे से जुड़ जाओ; समाज के हित के लिए हर काम में उसका साथ दो; हर काम के करने के लिए तैयार हो; अपना तन, मन, धन समाज के लिए अर्पण करो; सामाजिक आज्ञा को सदा पालन करो; तभी समाज में दल बद्धता आ सकती है। तभी उसकी शक्ति बढ़ सकती है। तभी उस

के द्वारा न केवल इस देश का किन्तु सारी पृथिवी का हित हो सकता है, और तभी उसके स्थापन करने का उद्देश्य भी सिद्ध हो सकता है।

ऐसा हो, कि तुम्हारे भीतर यह उच्च लक्ष्य गत दल बद्धता का भाव उत्पन्न और वर्धित हो, और तुम उच्च जीवन की प्राप्ति और मनुष्य मात्र के सच्चे कल्याण के कार्य्य में भाग लेने के योग्य बन सको, और आगामी वर्ष में इस वर्ष की अपेक्षा और भी अधिक उन्नति लाभ कर सको।

---

१७ वें समाजोत्सव पर भगवान् देवात्मा का व्याख्यान।

(जीवन पथ, चैत्र १९६० वि०)

भगवान देवात्मा ने आज के विशेष दिन का विशेष उपदेश आरम्भ किया। जिस में सब से पहले उन्हों ने आज के दिन की विशेषता को प्रगट किया, और २० फ़रवरी सन १८८७ ई० के धर्म्म जीवन में से उस लेख का पाठ किया, जिस में देव धर्म्म की घोषणा और देव समाज स्थापन करने के विषय में सब से पहला समाचार दर्ज है। और फिर इन १७ वर्ष के भीतर उन्हें जिस २ प्रकार के महा कष्टों, महा संग्रामों, महा कठिनाइयों और महा विपदों में से अकेले और तन तनहा गुज़रना पड़ा है, उनका अति संचित रूप से

वर्णन किया। पूजनीय भगवान् का यह सारा बयान इतना दिल को छूने वाला और रिक्कत अंगेज़ था, कि जिसे सुनकर एक २ बार शरीर रोमांचित हो जाता था, और एक २ समय के महा दुखों और बाह्यक पदार्थों और साथियों के अभाव का दृश्य सामने आने से दिल टुकड़े २ होता था। किस प्रकार एक २ बार एक २ पुस्तक के छपवाने के लिए दामों की कठिनाई पड़ी थी। छोटे २ बच्चों को भली भांत पालने और सम्हालने का प्रबन्ध न था। एक २ बार घर के व्यवहार के लिए पानी लाकर देने के लिए भी कोई आदमी पास न था। एक २ बार शारीरिक रोग और कष्ट में कोई शुश्रूशा करने वाला न था, और किसी योग्य डाक्टर को बुलाने की सामर्थ्य न थी। एक ओर धन और मनुष्यों का अभाव, दूसरी ओर विरोधियों के आक्रमणों की भरमार और उनके हृदय भेदी मिथ्या अपवादों की लगातार बौछाड़। हाय! यह सारे दर्दनाक बयान सुन २ कर हृदय फटा जाता था। और हमारे और देवसमाज के हितके लिए परम हितकर्ता भगवान् ने जो अद्वितीय त्याग किए और असाधारण दुख सहे हैं, उन्हें सुन २ कर हृदय उनके सामने झुका जाता था! एक ओर भगवान् देवात्मा ने यह सारे दुख और अज़ाब अपनी छाती पर सहे और दूसरी ओर उन्हें अपने सर्व श्रेष्ट कार्य्य को दिनों दिन उन्नत करने और

बढ़ाने के लिए और उसे वर्तमान उन्नत अवस्था में पहुँचा देने के लिए जो २ संग्राम करने पड़े, अयोग्य और अधूरे अनुयाइयों के हाथ से; विरोधियों से भी बढ़कर, जो २ असह्य कष्ट सहने पड़े, यह सारे दृश्य दिलों में जैसी काट कर रहे थे, उसे वर्णन नहीं किया जा सकता। विशेष करके जिस समय पूजनीय भगवान् ने फ़रमाया, कि जिस प्रकार चने का बीज पहले अपने आप को नष्ट करता है, तब उस से और बहुत से चने उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार हम ने अपने आप को खोकर तुम्हें पैदा किया है, अपना खूने जिगर देकर और उसके द्वारा तुम्हारे आत्मा की ज़मीन को उर्वरा करके तुम्हारे भीतर के धर्म्म बीजों को अंकुरित और विकसित किया है; उस समय विशेष रूप से त्याग विषयक उनकी अद्वितीय महिमा को उपलब्ध करके हृदय पिघल रहे थे; और भीतर हि भीतर ऐसा आन्दोलन हो रहा था, कि किसी प्रकार हम भी अपने ऐसे जीवन दाता के जीवन में अपनी अपनत्व को नष्ट करके उनके जीवन व्रत के लिए अपने आप को पूर्ण रूप से भेंट कर सकें।

---

१८ वें देवोत्सव पर देव समाज की उन्नति के विषय में भगवान् देवात्मा का उपदेश।

(जीवन पथ, फाल्गुन १९६१ वि०)

१—परम पूजनीय भगवान् देवात्मा ने खड़े होकर अपना

व्याख्यान आरम्भ किया। यद्यपि उनका शरीर वृद्ध-अवस्था में प्रवेश कर चुका है, और वह बहुत दुर्बल और रोगी था, तो भी उनका अद्वितीय आत्मा इस शरीर मन्दिर के भीतर से एक २ सत्य को ऐसे ज़ोर और बल के साथ प्रकाश करता था, कि सुनने वालों के हृदय हिल जाते थे, और वह उनकी महिमा के सन्मुख झुकने के बिना नहीं रह सकते थे। उनका यह व्याख्यान इतना युक्ति और विज्ञान मूलक, सिलसिलेवार, तेजस्वी और दिल के गहरे भावों से भरा हुआ था, कि उसका पूरा २ वर्णन नहीं हो सकता। भगवान् देवात्मा ने इस व्याख्यान में आज से १८ वर्ष पहले देव समाज की उत्पत्ति का ज़िकर किया, और इस देव समाज का उसके स्थापक के जीवन के साथ जो सम्बन्ध है, उसका इशारा करके उसका सिलसिला जो नेचर के विकास क्रम में लाखों वर्ष पहले से है, उसका संक्षिप्त रूप से वर्णन किया। इसके भिन्न उन्हें अपने जीवन व्रत को पूरा करने के लिए क्या अपने विरोधियों की ओर से और क्या कृतघ्न "अनुयाइयों" की ओर से जिन घोर से घोर दुखों और उत्पीड़नों के भीतर से गुज़रना पड़ा है, उसका भी वर्णन किया और देव समाज ने उनकी शक्ति के सहारे इन सब तूफ़ानों के आने पर भी जो आश्चर्य जनक उन्नति की है, उसे भी प्रकाशित किया। इसी बयान के सिलसिले में उन्हों ने यह भी

प्रगट किया, कि वह पहले जिस ईश्वर दर्शन, ईश्वर के साथ योग और उसका आनन्द आदि कहा करते थे, उसकी हक़ीक़त क्या थी ? समझदार जनों के लिए यह बयान ईश्वर के कल्पित विश्वास की हक़ीक़त को बहुत हि साफ़ करने वाला था। अन्त में पूजनीय भगवान् ने अपने काम के सम्बन्ध में चार प्रकार के मनुष्यों का वर्णन किया। उन्हों ने फ़रमाया कि उन में से पहली श्रेणी उन जनों की है, कि जो अपनी नीच प्रकृति के विचार से हि ऐसे हैं, कि जिन के लिए अपनी प्रकृति के विरोधी होने के कारण उनके शुभकर और हमारे देश के लिए अत्यन्त हितकर कार्य्य का और उन की समाज का विरोधी रहना वैसे हि स्वभाविक है, जैसे कि एक हिंसक पशु को एक हितकारी गौ का। दूसरी श्रेणी ऐसे लोगों की उन्हों ने बताई, कि जो हमारे काम से बिलकुल उदासीन रहते हैं। न वह उसके मित्र हैं, न शत्रु हैं। तीसरी प्रकार के वह जन हैं, कि जो हमारे काम में कुछ न कुछ भलाई अनुभव करके उसके लिए कुछ न कुछ प्रशंसा और सहायता करने का भाव रखते हैं, और जो समय २ पर सचाई की बिना पर हमारे विरोधियों के विरुद्ध हमारे न्यूनाधिक साथी रहते हैं। चौथी श्रेणी में वह जन हैं, जिन के भीतर उनकी धर्म्म शक्ति घुसकर उन में परिवर्तन उत्पन्न करती है, और

उन्हें नीच अवस्था से निकाल कर उच्च अवस्था की ओर लाती है, और यह वह जन हैं, कि जो देव समाज में आकर ऐसे धर्म्म शक्तियों के अवतार से सच्चा आत्म हित और आत्म प्रसाद लाभ करने के अधिकारी बनते हैं। अन्त में भगवान् देवात्मा ने क्या देव समाज भुक्त जनों और क्या साधारण जनों से ज़ोरदार अपील की, कि वह ऐसे उच्च अधिकार को कि जो उन्हें प्राप्त हुआ है सुफल कर सकें, और जिस उच्च ज्योति को उन तक पहुंचाकर उनकी सेवा की गई है, उस से वह सचमुच लाभ उठा सकें।

२—इस उपदेश के दूसरे भाग में जीवन दाता भगवान् देवात्मा के सम्बन्ध में सेवकों के भीतर अपने उद्धार और कल्याण के लिए श्रद्धा, कृतज्ञता, अनुराग, और विश्वास आदि भावों के उत्पन्न होने की जो आवश्यकता है, उसका वर्णन किया, और अभी जो कितने हि पुराने और नए सेवकों में इन भावों की सख़्त कमी है, उसे प्रगट किया। उन्हों ने फ़रमाया कि यह सच है, कि देव समाज में जितने नर नारी प्रविष्ट हो चुके हैं, वह मोटे २ दस पापों से बच चुके हैं, और उन से बचने से उनका अपना और उनके पारिवारिक जनों का बहुत हित हुआ है, और उनके इन पापों में फंसे रहने की अवस्था में उनके जाति जनों और देश वासियों

को उनके द्वारा जो हानि पहुंचती थी, उस से उन्हें बचने का अवसर मिला है । और इन सेवकों और सेवकाओं को दस पापों से बचा हुआ देखकर कई लोग उन्हें "देवता" तक के शब्दों से याद करते हैं, परन्तु हम अपने सेवकों को केवल दस पापों से हि बचा हुआ देखना नहीं चाहते, किन्तु उनके भीतर जो अभी और बहुत सी विनाशकारी नीच गतियां वर्तमान हैं, उन से उन्हें बचाने के लिए उनके भीतर नीच गति विनाशक बोध अथवा विराग शक्तियों को उत्पन्न करना चाहते हैं। इसी प्रकार उन्हें विविध सम्बन्धियों से जीवन रस अथवा सच्चा अमृत लाभ करने का अधिकारी बनाने के निमित्त हम उनके भीतर नाना उच्च गति विकासक अनुराग शक्तियां उत्पन्न करना चाहते हैं, और यह सब शक्तियां तभी उनके भीतर उत्पन्न हो सकती हैं, जबकि एक ओर उनके भीतर उनके उत्पन्न होने की कुछ योग्यता वर्तमान हो, और दूसरी ओर वह उस आविर्भाव के साथ कि जिस के भीतर उन सब नीच गति विनाशक उच्च घृणा और उच्च गति विकासक अनुराग शक्तियों का प्रकाश हुआ है, उच्च सूत्रों के द्वारा जुड़ सकें । इस उपदेश से कई सेवकों ने भगवान देवात्मा के सम्बन्ध में अपनी २ हीनताओं के देखने का अवसर लाभ किया । यह उपदेश प्रायः सवा घण्टे तक रहा कि

३—पति पत्नी के सम्बन्ध में।

पाठ और विचार के शेष दिन के अवसर पर १२ चैत्र सं० १९५८ वि० को भगवान् देवात्मा का अति कल्याणकारी उपदेश :—

देव शास्त्र में नेचर गत जितने सम्बन्धों के विषय में यज्ञों के साधन के लिए विधान किया गया है, और आदेश दिए गए हैं, उन में से एक पति पत्नी यज्ञ भी है। यह सब यज्ञ उस२सम्बन्ध में धर्म्म भावों के उत्पन्न अथवा उन्नत और विकसित करने के लिए हैं। इसीलिए जिस२ सम्बन्धी के सम्बन्ध में किसी यज्ञ का साधन करना आवश्यक है, उस २ सम्बन्धी के सम्बन्ध में साधन करने वाले के लिए एक वा दूसरे धर्म्म भावों अथवा उच्च गति मूलक सूत्रों के द्वारा जुड़ा होना भी आवश्यक है। साधक यदि किसी सम्बन्धी के साथ एक वा दूसरे प्रकार के धर्म्म सूत्रों अथवा धर्म्म भावों से जुड़ा हुआ न हो, तो फिर केवल यही नहीं, कि वह जो २ साधन करता है, वह धर्म्म मूलक नहीं हो सकते, क्योंकि धर्म्म भाव उसके भीतर वर्तमान नहीं, किन्तु अनेक वार यदि वह दिखलावे के लिए किसी एक वा दूसरी नीच वासना को लक्ष्य रखकर ऐसे किसी साधन की नक़ल भी करे, ऐसे किसी साधन का अनुकरण भी करे, तो इस से केवल उसकी गति नीच हि होती है। जहां बीज है और वह

अंकुर निकाल रहा है, कुछ वृक्ष की शकल बन गई है, वहां पानी डालने का साधन होने से निश्चय वृक्ष बढ़ता है; परन्तु जहां बीज अथवा वृक्ष हि नहीं, वहां केवल भूमि पर पानी डालने से किसी वृक्ष की उत्पत्ति नहीं होती, और न वहां कोई वृक्ष उगता वा लहलहाता हि दिखाई देता है। इसीलिए देव शास्त्र में प्रत्येक यज्ञ के साथ उसके साधन के विषय में यह शिक्षा दी गई है, कि साधन कर्ता अपने किसी ऐसे सम्बन्धी के सम्बन्ध में एक वा दूसरे प्रकार के उच्च गति मूलक भावों से जुड़ा हुआ हो; एक वा दूसरे उच्च भावों को उन्नत करने के लिए आकांक्षा रखता हो; और ऐसे सम्बन्ध में एक वा दूसरे प्रकार की जो नीच गति हो, उसका बोध रखने अथवा लाभ करने पर उसको त्याग करने की आकांक्षा रखता हो। क्योंकि प्रत्येक नीच गति प्रत्येक साधक के लिए केवल यही नहीं, कि उसके आत्मा के जीवन का कल्याण साधन नहीं करती, किन्तु उसके विनाश का अवश्य हेतु होती है। पति पत्नी यज्ञ भी इस नियम से बाहर नहीं। इसीलिए पति पत्नी यज्ञ के साधन में धर्म्म पति और धर्म्म पत्नी का विधान किया गया है, अर्थात् पति पत्नी यज्ञ, धर्म्म पति और धर्म्म पत्नी को लेकर सम्पादित होता है। धर्म्म के नाम से जो कुछ जगत् में विश्वास किया जाता है, अथवा समझा जाता

है, वह सब कुछ प्रकृत धर्म्म नहीं। इसलिए जब तक प्रकृत धर्म्म का रूप सन्मुख न आवे तब तक किसी आत्मा में एक वा दूसरा धर्म्म भाव, जाग्रत हुआ है अथवा नहीं, यह भी समझ में नहीं आ सकता। और कौन आत्मा पति होकर कुछ न कुछ धर्म्म भाव रखता है, और कौनसा आत्मा पत्नी बनकर धर्म्म भाव रखता है, इसका निरूपण भी नहीं हो सकता। प्रकृत धर्म्म वा असल धर्म्म वह है, कि जो आत्मा के जीवन के लिए कल्याणकारी हो, अर्थात् एक ओर वह जहां आत्मा के जीवन का उच्च गति मूलक विकास साधन करता हो, वहां दूसरी ओर यह उच्च गति मूलक विकास जिन धर्म्म भावों की बिना पर और केवल धर्म्म भावों की बिना पर अन्य अस्तित्वों के साथ सम्बन्ध स्थापन करने के द्वारा होता है, वह धर्म्म भाव उत्पन्न और उन्नत करता हो। इस प्रकार जब सम्बन्ध स्थापन हो, तो जैसे एक ओर प्रत्येक सम्बन्ध स्थापन कर्ता का जीवन उन्नत और विकासित होता है, वैसे ही दूसरी ओर वह सम्बन्ध कल्याणकारी होने के अतिरिक्त उच्च सुख दायक और आनन्द दायक भी होता है। ऐसे ही उच्च गति मूलक धर्म्म भावों अथवा धर्म्म सूत्रों के साथ जुड़ने से एक २ आत्मा को जो सुख प्राप्त होता है, जो आनन्द मिलता है, वह सुख अथवा आनन्द जैसे

एक ओर नीच नहीं होता, आत्मा के लिए नीच गति अथवा किसी पाप वा अपराध का कारण नहीं बनता, वहां दूसरी ओर विकार रहित और शुद्ध होता है। इस सुख की, इस आनन्द की आकांक्षा के उत्पन्न होने अथवा बढ़ने से जहां एक ओर आत्मा का अनिष्ट नहीं होता, वहां दूसरी ओर यह आनन्द अपने स्वभाव के विचार से हितकर हि होता है, हितकर हि रहता है। इसलिए प्रकृत धर्म्म के लाभ होने के बिना जैसे एक ओर जीवन का शुभ अथवा कल्याण साधन नहीं होता, वैसे हि दूसरी ओर वह प्रकृत सुख और आनन्द भी लाभ नहीं होता, जो विकार रहित हो, नीचता से रहित हो, जिस का लालसी अथवा आकांक्षी बनकर आत्मा को कभी शोक न करना पड़ता हो। इस प्रकृत धर्म्म का जैसे ज्ञान बहुत दुर्लभ है, वैसे इस ज्ञान की अपेक्षा उसका लाभ और भी दुर्लभ है। प्रकृत धर्म्म का प्रकृत ज्ञान अथवा बोध हो जाने से प्रत्येक जन समझ सकता है, कि उस को न जानकर और उसका आकांक्षी न बनकर साधारणतः समाज में जो कुछ विवाह की रीति है, और जिस २ वासना को लेकर विवाह होते हैं, वह नाम मात्र के लिए कोई पति और कोई पत्नी, कोई शौहर और कोई बीवी कहे जा सकते हैं, परन्तु जहां कहीं यह प्रकृत धर्म्म वर्तमान नहीं, वहां पति पत्नी के

सम्बन्ध से उनके आत्मा का उच्च गति मूलक जो कुछ कल्याण साधन हो सकता है, वह भी साधन नहीं होता। और पति और पत्नी बन कर भी यदि वह कभी प्रकृत धर्म्म के विचार से अपने जीवन की परीक्षा कर सकें, अथवा कोई और उन के जीवन की परीक्षा कर सके, तो पता लग सकता है, कि उनका यह सम्बन्ध चाहे कैसी हि धूमधाम के साथ क़ायम किया गया हो, तो भी वह सचमुच दोनों के लिए हि क्या उनके शरीरों और क्या उनके आत्माओं के सम्बन्ध में विनाश का हेतु बना है। साधारण प्रकार से विवाह की रीति क्या है? एक परिवार में एक लड़की है। लड़की का विवाह करने की माता पिता के भीतर इच्छा है। इस इच्छा को पूरा करने के लिए कहीं तो माता पिता आप कुछ भी नहीं हिलते। किसी और ब्राह्मण या नाई को बुलाकर केवल यह कह देना हि काफ़ी समझते हैं, कि हमें अपनी लड़की का विवाह करना है, तुम हमारी कहलाने वाली बिरादरी में से वर खोज दो। इस वर का खोजना भी माता पिता अपने ऊपर नहीं लेते। उसका भार किसी और जन वा जनों पर हि डाल देते हैं, कि जो उनकी बिरादरी में भी इस बात के लिए विख्यात नहीं होते, कि वह अपने स्वार्थ की तुलना में जिस के लिए काम करने जाते

हैं, उस के सांसारिक भले को भी मुख्य समझेंगे। फिर जहां कहीं आप भी लड़की वालों की ओर से वर की तलाश होती है, वहां क्या होता है ? कितनों के भीतर यह लक्ष्य होता है, कि वह लड़की अपनी बिरादरी से बाहर नहीं देते, वा किसी और बस्ती की लड़की ले तो लेते हैं, परन्तु अपनी लड़की का अपनी बस्ती में हि विवाह करते हैं। अपनी बस्ती में विवाह करने का जब उस के भीतर ध्यान हो, तो यह समझा जा सकता है, कि कितनी हि सूरतों में संसार के अथवा उन के अपने विचार से भी कोई अच्छा वर नहीं मिल सकता, और नहीं मिलता। क्योंकि बस्ती के भीतर सीमाबद्ध कर देने से (जहां उन लोगों की संख्या बहुत थोड़ी है, जिन में विवाह करना है) स्वभावतः वर अच्छा नहीं मिलता। उनके अपने विचार से भी यदि उनकी लड़की के लिए जैसा वर चाहिए वैसा न मिले, अर्थात् जैसा उसका शरीर होना चाहिए वैसा न हो, किन्तु रद्दी हो, कमज़ोर हो, किसी एक वा दूसरे रोग से रोगी हो, आयु में छोटा हो, बलिष्ट न हो, कमाने खाने के भी योग्य न हो, आचरण के विचार से भी दुष्ट हो, तो भी ऐसे एक वा दूसरे लड़के के साथ एक वा दूसरी लड़की की सगाई होती रहती है, विवाह भी होते हैं। कहीं यदि

किसी के भीतर ऐसा खयाल हो, कि लड़का शकल में अच्छा हो, बलिष्ट हो और मानलो कि ऐसा हो, तो कितनों के भीतर यह ख्याल नहीं रहता, कि उनकी लड़की उसके लिए कैसी होगी। लड़के वाले को भी पता नहीं होता, कि लड़की कैसी है। शरीर उसका दुर्बल, कमज़ोर और रद्दी हो, किसी रोग में फंसी हुई हो, सूरत शकल के विचार से भी बदसूरत हो, तो भी किसी के गले मढ़ दी जाती है। एक २ कुरते के लिए, कोट के लिए कपड़ा खरीदना हो, तो आदमी सोचता है, कि यह कपड़ा मुझे पसन्द है, और यह कपड़ा मुझे पसन्द नहीं है। एक २ लड़का खिलौना लेने के लिए अपनी पसन्द का प्रकाश करता है, कहता है यह लेना है और यह नहीं लेना। परन्तु विवाह की सूरत में ऐसी साधारण पसन्द का भी विचार नहीं किया जाता। लड़के को कुछ पता नहीं, कि लड़की कैसी है? रोगी है? शरीर के विचार से रद्दी है? यह भी पता नहीं, कैसी उसकी सूरत, कैसी उसकी शकल, कैसा उसका मुंह और चेहरा है। आयु भर के लिए सम्बन्ध स्थापन करने की आकांक्षा परन्तु और तो और शारीरिक सूरत का भी पता नहीं। इस सब कुछ को छोड़कर ऐसे विवाहों का लक्ष्य क्या होता है? कितने लोग केवल यही सोचते हैं, कि यह रुपए वाले हैं और बस। कितनों हि के लिए रुपया इतनी बड़ी वस्तु है, कि उस

की तुलना में और सब कुछ तुच्छ हो जाता है। ऐसे लोगों के निकट जो रुपए वाला है वही बड़ा है, वही पूजनीय है। .... जी जब यहां थे, उन्हों ने बयान किया था, कि उनके बड़े लड़के का जब नाता हुआ था, तब उस लड़की के माता पिता बड़े धनवान थे। जब यह नाता आया तो उन के घर वाले फड़क उठे और कहने लगे इनका नाता नहीं छोड़ना। परन्तु क्या लड़की के माता पिता और क्या उन से ऊपर तक बहुत खराब आदमी थे। उसकी कुछ परवाह नहीं की केवल यही देखा, कि उनके पास रुपया है। रुपए का इस पृथिवी में इस समय तक इतना बड़ा बल है, कि और सब वस्तुएं उसकी ओट में अन्धेरे में चली जाती हैं। इसका वर्णन करते समय हमें एक बात याद आती है, कलकत्ते में एक जन रहते थे जो पहले ग़रीब थे, तिजारत के द्वारा बहुत धनवान हो गए थे, लाखों रुपए उनके पास हो गए थे, परन्तु वह बहुत बिगड़ी तबीयत के आदमी थे। रुपए के घमंड में किसी की परवाह नहीं करते थे। न केवल कुछ हिन्दू बिरादरियों में बल्कि सारे हि हिन्दुओं में गौ का मांस खाने से इतनी गहरी घृणा है, कि यदि उन्हें यह मालूम हो जाए, कि कोई हिन्दू ऐसा करता है, तो लाखों हिन्दू उस से फट जाएंगे। यह हमारे हीरो बाबू खुल्लम खुल्ला गौ का मांस खाते थे, और रुपए की

शक्ति मे बिरादरी भी ठीक चलती थी। एक समय का वर्णन है, कि किसी विशेष अवसर पर उन्हों ने ब्राह्मणों के यहां भाजी भेजी। ब्राह्मणों ने कहा कि हम नहीं लेते। नौकर भाजी लेकर वापिस आगया। परन्तु वह मालूम होता है, कि अपने ज़माने के नेपोलियन थे, जिस ने कहा है, "आदमी की खूराक सोना है, सोना दो और उससे कुछ भी काम करालो।" जिस समय नौकरों ने आकर कहा कि ब्राह्मण भाजी नहीं लेते, तो वह हंसे और कहने लगे कि हमारी भूल हुई। उसी समय नौकर को बुलाया और कहा कि हमारा सन्दूक लाओ। सन्दूक खोलकर किसी भाजी के साथ बीस, किसी के साथ पच्चीस, किसी के साथ पचास और किसी भाजी के साथ सौ रुपया रख दिए, और कहा कि अब ले जाओ। जिस समय एक २ थाली में इतने २ रुपए रक्खे हुए नज़र आए, तो ब्राह्मणों के मुंह में पानी भर आया और उन्हों ने न केवल भाजी लेली, किन्तु उन्हीं में से एक २ यह भी कहने लगा, कि यह तो महाराज एक हि भाजी है, हमारे यहां तो चार जन हैं। बाबू जी ने नौकरों को कह दिया था, कि जितनी भाजियां कोई मांगे उतनी हि देदो। इस प्रकार भाजी बट गई और विवाह में कोई दिक्कत न हुई। मन्त्र पढ़ने वाले ब्राह्मण भी मौजूद और बिरादरी भी मौजूद हो गई।

संक्षिप्त यह कि रुपए में बहुत बड़ी शक्ति है। यदि किसी को अपनी लड़की का विवाह देना होता है, और लड़के वाले बहुत रुपए वाले हों, तो वह इसी से तृप्त हो जाता है, जैसे एक २ ब्राह्मण के आगे खीर रख देने से वह तृप्त हो जाता है। यहां तक कि लड़की यदि आठ-दस वर्ष की है, और पुरुष साठ-सत्तर वर्ष का है, उसके दांत गिर चुके हैं, गाल अन्दर को गए हुए हैं, लाठी लेकर चलता है, परन्तु विवाह की इच्छा रखता है, तो भी रुपयों के लालच में वह लड़की उसकी सखी बना दी जाती है। कोई और चीज़ सन्मुख नहीं, न उस लड़की का भला हि सन्मुख होता है।

कहीं धन की अपेक्षा 'कुल' बढ़कर सन्मुख होता है। कैसा हि निर्धन हो, भीख मांगता हो, पर कुलीन हो, बस काफ़ी है। पंजाब में भी शायद क्षत्रियों में ऐसे हों। संयुक्त प्रान्त में भी हैं। परन्तु बंगाल में विशेष कर इस कुल की इतनी प्रथा है, कि कुलीनों में (ऐसे हि कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में जिन में हमारा जन्म हुआ है) जब लड़का पैदा हो गया, तो मानो बड़ी जायदाद आ गई और यदि लड़की पैदा हो गई, तो नर्क आ गया। जब लड़का पैदा हो गया, तो सैकड़ों रुपए खनकते नज़र आते हैं। बंगाल में एक २ कुलीन जवान या बूढ़े की सौ-सौ स्त्रियां मौजूद हैं। इस में कुछ भी सन्देह

नहीं। जिन की १०,१५,२०वा २५ स्त्रियां हैं, ऐसों की तो गिनती बहुत है। क्या ऐसा एक २ जन सब पत्नियों को अपने पास रखता है ? कदापि नहीं। उसे आप रोटी भी नहीं मिलती। एक सड़ी हुई धोती रखता है। परन्तु उसके पास एक २ पिता आता है, और कहता है महाराज मेरी लड़की विवाह लो। जिन लोगों के पास रुपया बहुत होता है,वह तो उनके पास एक और प्रकार की सिफ़ारिश होती है। इसके पास एक और सिफ़ारिश है, कि मैं कुलीन हूं,परन्तु यह पता नहीं उसकी कौनसी वस्तु कुलीन है?केवल यही कि कुलीन कहा जाता है।ऐसे कई जन कई अवस्थाओं में इस योग्य भी नहीं होते,कि अपनी पत्नी को रोटी खिला सकें। इसलिए यह प्रथा है, कि लड़की विवाही जाती है और सदा अपने माता पिता के यहां रहती है। केवल पत्नी कहलाती है, और उन में से एक २ लड़की ऐसी भी मौजूद है,कि जिस ने विवाह के समय तो अपने पती का मुंह देख हि लिया होगा,परन्तु फिर उस ने कभी भी उसे नहीं देखा। क्या वह सब मर जाते हैं ? नहीं; मुंह देखने का यह अर्थ है, कि पति तो अपने घर में रहता है ; केवल विवाह करके चला जाता है। जिस लड़की का पिता रुपए वाला हो और वह लड़के के पास रुपया भेजे तो वह आठ दस दिन के लिए सुसराल में आ जाता है।इसी प्रकार कभी दूसरे सुसराल

में चला जाता है, कभी तीसरे में। कई लड़कियों के माता पिता इतने निर्धन भी होते हैं, कि वह धन नहीं दे सकते, इसलिए उनके पति वहां नहीं पहुंचते। कई अवस्थाओं में उन्हें याद भी नहीं रहता, कि वहां विवाह हुआ था, क्योंकि केवल एक दिन विवाह के लिए उस बस्ती में गया था ; फिर किस प्रकार याद रहे ? विवाह हुआ हो और पति फिर कभी उसके पास न गया हो, परन्तु पत्नी वह फिर भी कहलाती है। कितने लोग विचारे ऐसे निर्धन हैं, कि वह अपनी लड़की को विवाह नहीं सकते। लड़की वैसे हि बैठी रहती है । ब्राह्मणों के इस श्लोक के कारण, कि यदि लड़की रजस्वला हो जाए और उसका विवाह न हो, तो भारी पाप है, कितनी हि लड़कियां बूढ़ों के साथ विवाही जाती हैं । यदि कोई देखता है, कि कोई कुलीन गंगा के किनारे मरने के लिए पहुंचाया गया है, (बंगाल में ऐसी प्रथा है, कि कितने लोगों को मरने से पहले गंगा के किनारे ले जाते हैं । किसी को एक दिन पहले किसी को कुछ घण्टे पहले, ताकि वह गंगा के दर्शन करते २, उसका जल पान करते २ शरीर त्याग करे) तो उस समय लड़की का पिता वहां पहुंचता है, और उस मरने वाले कुलीन के आगे हाथ जोड़ता है, कि मेरी लड़की के साथ विवाह करलो । इस समय रुपए का ख़याल नहीं होता । वह दयालु होकर कह देता है, कि

ले आओ। इधर फेरे हुए उधर उस पति के श्वास अन्त हुए। फिर लड़की को कहते हैं तेरे खोटे भाग! उनका ख़याल है, कि अब अविवाहित होकर न मरेगी, अब विधवा होकर रहेगी। वह भी समझती है, कि मैं किसी की वहु हूं। यह भी एक रीति है।

फिर जहां कहीं सूरत शकल देखने का ख़याल है, यथा योरूप आदि में, वहां क्या होता है? मनुष्य जो कुछ है, अर्थात् जो कुछ उसकी वासनाएं हैं, वही कुछ उससे प्रकाश पाता है। मनुष्य के भीतर धन की वासना है। इसलिए योरूप में भी जहां शकल सूरत देखी जाती है, उधर भी देखी जाती है; वहां भी यदि लड़की है, तो सोचती है, कि लड़के के पास क्या है? लड़का है, तो सोचता है कि लड़की के पास क्या है? हैरान न होना। योरूप में माता पिता लड़कियों को भी अपनी जायदाद का हिस्सा दे जाते हैं। इसलिए लड़कों को यह ख़्याल होता है, कि यदि किसी ऐसी लड़की को क़ाबू में ला सकें, तो फिर उसकी जायदाद के भी वह मालिक बन सकते हैं। इसीलिए विलायत में विवाह के विषय में यद्यपि नौजवानों को बहुत कुछ सिखाया जाता है, कि सोच समझ कर चलना, तथापि केवल समझाने से क्या होता है? इसलिए वहां भी बहुत बार ऐसा हि होता है, कि यद्यपि लड़के को लड़की की शकल भी पसन्द नहीं है, परन्तु एक लाख रुपया लड़की

के पास मौजूद है; उस एक लाख का लालच हर समय मुख्य रहता है। उसके लिए उस लड़की को क़ाबू में लाने के लिए नाना प्रकार के उचित और अनुचित उपाय किए जाते हैं। उसके प्रति झूठमूठ प्रेम का प्रकाश होता है, उसकी झूठी प्रशंसा और चापलूसी होती है। इसी प्रकार की चिट्ठियां लिखी जाती हैं। बावजूद इसके कि इन लड़कियों को यह सिखाया भी जाता है, कि इस प्रकार की चिट्ठियों में बहुत धोका होता है, तो भी कुछ पेश नहीं जाती। मनुष्य के भीतर यह भारी दुर्बलता है, कि जब उस की स्तुति करो, फ़ौरन उस के हृदय पर असर होता है। चुड़ैल को भी कहो कि तू परी है, तो हृदय में समझती है, कि मैं सचमुच परी हि हूं। इसी से ख़ुशामदी लोग अपना काम निकालते हैं। किसी के साथ दोस्ती उत्पन्न करने का यह सब से अच्छा उपाय है, परन्तु ख़बरदार, उसको किसी प्रकार भी बुरे काम में लाना उचित नहीं है। तुमने हमारे जीवन में देखा है, कि हमारी स्तुति करके, हमारी तारीफ़ करके कभी भी कोई हम पर इस प्रकार का असर नहीं डाल सकता। हां हमें यदि यह मालूम हो जाय, कि किसी ने जान बूझ कर ऐसा किया है, तो झट उसका उलटा असर होता है। सचाई के प्यार का ख़ास्सा हि यह है, कि झूठ के प्रति घृणा उत्पन्न करता है।

ख़ैर इस प्रकार वह बिचारी लड़की विवाह के लिए तैयार हो जाती है। लड़का इस प्रकार की बातें करके कि ऐसा खुश रक्खूंगा, तमाशे दिखाऊंगा, बहुत अच्छे खाने खिलाऊंगा, अपने काबू में ले आता है, और पीछे ऐसी दोस्तियों के जो भयानक फल उत्पन्न होते हैं, उनका वर्णन नहीं हो सकता। योरूप में जो विवाह बड़ी आयु में होता है, वह अवश्य प्रशंसनीय है, परन्तु हर जगह मनुष्य, मनुष्य हि है। उसके भीतर वही नीच वासनाएं हैं, और उनके द्वारा परिचालित होकर वह उनकी तृप्ति चाहता है। कहीं केवल बाहक खूबसूरती को सन्मुख रखकर विवाह होता है, कहीं केवल धन सन्मुख होता है और कहीं केवल पद वा विद्या होती है। एक २ लड़की धन वाले के साथ इसलिए विवाह करना चाहती है, कि रोटी न पकानी पड़ेगी। नौकर काम करने वाले होंगे, मैं कौच पर बैठी हुई हुक्म चलाऊंगी, गाड़ी मिलेगी, मोटर मिलेगी, अच्छी सजी हुई कोठी वा बड़ा मकान होगा, परन्तु आगे होता क्या है?

"मक्खी बैठी शहद पर, पंख गए लिपटाय;
हाथ मले और सिर धुने, लालच बुरी बलाय।"

सचमुच कितनों की अवस्था में 'शहद पर बैठी मक्खी' की मिसाल हि पूरी होती है, जो मीठे के लालच में उस

पर बैठ जाती है और वहीं फंसकर ख़त्म हो जाती है। सैकड़ों पुरुषों और स्त्रियों का यही हाल होता है। कईयों के आत्म घात तक होते हैं। एक दूसरे को गोलियां मारते वा ज़हर देदें वा किसी और प्रकार से घायल करते हैं। यह अवस्था क्यों आती है ? इसलिए कि दोनों में विरोध बहुत बढ़ जाता है, एक दूसरे की शकल देखनी भी पसन्द नहीं रहती, इसलिए नौबत एक दूसरे को ख़त्म कर देने तक पहुंच जाती है। ऐसा करने में बहुत बड़ी बदनामी भी होती है, और सामने फांसी भी दिखाई देती है, तो भी बेबस ऐसी क्रिया हो जाती है। इस प्रकार कई पुरुष अपनी स्त्रियों को मार देते हैं। जहां ऐसा अवसर नहीं होता, वहां वह उन के अत्याचार से घुल २ कर मर जाती हैं। जहां केवल दुनिया के सुख सामने हों, और केवल नीच वासनाओं की तृप्ति को लेकर सम्बन्ध हो, वहां और हो भी क्या सकता है ? और तो कोई बात खटकती नहीं, कि ज़ुल्म करना पाप है, क्योंकि पाप का कोई बोध नहीं ; हां यह प्रतिज्ञा करके भी कि सति रहूंगी, सच्चा रहूंगा, हज़ारों पुरुष हैं जो व्यभिचार करते हैं, और स्त्रियों में भी इस पाप की कमी नहीं। बाज़ारों में कितनी बैठी हुई हैं, कि जिन के अब तक भी पति वर्तमान हैं। फिर एक पत्नी के होते हुए हज़ारों पुरुष दूसरा, तीसरी और

फिर चौथा विवाह तक करते हैं। यह कोई ख्याल नहीं होता है, कि पहली पत्नी पर क्या गुज़रेगा। केवल अपनी तृप्ति को देखा जाता है, कि मेरी प्रवृति क्या चाहती है, वह किस प्रकार चरितार्थ हो सकती है। जब चोर चोरी करता है, डाकू डाका डालता है, तब उसकी तह में क्या होता है ? मुझे धन की आवश्यकता है। धन की वासना अपनी तृप्ति चाहती है, कि मुझे कुछ मिले, बहुत कुछ मिले, और उसके सम्बन्ध में पाप का कोई बोध नहीं होता। छोटा बच्चा भी जिस में खाने की प्रवृति होती है, वस्तुएं चुरा २ कर खा जाता है। आत्मा तो एक ओर रहा, विकास क्रम में हज़ारों लाखों जन इस अवस्था में भी नहीं पहुंचे, कि उन्हें दुनिया के विचार से भी अपने असल भले बुरे का बोध हो। एक रोगी को कहो कि अमुक चीज़ खाने से तुम्हारा रोग बढ़ेगा, न खाओ। परन्तु वह चुपचाप उसे खा लेता है। रोग को वह कष्टकर भी समझता है, और उसे बता भी दिया जाता है, कि उस वस्तु के खाने से उसका रोग बढ़ेगा, तो भी उसकी स्वाद की प्रवृति अपनी तृप्ति चाहती है। इसलिए यह जानकर भी कि उसके शरीर की हानि होती है, रुक नहीं सकता। एक २ नशा पीने वाला जानता है, कि उससे उसकी हानि होती है, परन्तु उसके पीने से रुक नहीं सकता। कितने हि मनुष्य कामोत्तेजना के वश होकर ऐसी नीच क्रियाएं करते हैं,

कि जिन से आयु भर के लिए रोगी हो जाते हैं, कि जिनका विष उनकी सन्तान और उसके अगली सन्तान तक पहुंचता है, फिर भी वह रह नहीं सकते ! एक २ नीच अनुराग जो अपनी तृप्ति चाहता है, जब मनुष्य पर उस का अधिकार हो जाता है, तब वह विवश हो जाता है। लाखों मनुष्य पशुओं से भी नीचे चले गए हैं। जैसे एक २ पशु के भीतर जब भूख होती है, और खेत उस के सन्मुख होता है, तो वह स्वभावतः उसकी ओर चला जाता है, और उसे चरने लग जाता है, वैसे हि मनुष्य भी एक वा दूसरी प्रवृत्ति और उत्तेजना के वश होकर उसके विषय की ओर बहा जाता है। इसलिए बड़े मूर्ख हैं वह लोग जो यह कहते हैं, कि हमारी धर्म्म पुस्तक में लिखा हुआ है, यह न करो, वह न करो और उस से मनुष्य धर्म्मवान बन जाएगा। किसी नलके का मुंह यदि खुला है, और जिस तालाब से वह पीछे जुड़ा हुआ है, उस में पानी वर्तमान है, तो उस नलके में से पानी अवश्य गिरेगा। इसी प्रकार मनुष्य की प्रवृत्तियों और वासनाओं आदि का हाल है। एक २ जन के भीतर जो प्रवृत्ति है, वासना है, उसका मुख कौन बन्द करेगा ? घोड़ा जो बन्धा हुआ नहीं और उस में भागने की शक्ति है और वह उसे भागने के लिए प्रेरणा करती है, वह अवश्य भागेगा। फ़र्ज़ करो घोड़ा भागने लगा, परन्तु

इसकी बाग तुम्हारे हाथ में है, वह तुम ने खैंची तो वह रुक जाएगा। यदि तुम बाग न खैंचो, या न खैंच सको, तो घोड़ा अवश्य भागेगा। इस तत्व को भली प्रकार से समझो। मनुष्य अपनी नीच वासनाओं और प्रवृत्तियों आदि को लेकर जिन सम्बन्धों में बन्धा हुआ है, उन से वह केवल नीच हि बन सकता है, उच्च नहीं बन सकता। नीच प्रवृति अथवा वासना जिधर चाहेगी उधर ले जाएगी; इस से कोई इन्कार नहीं कर सकता। मनुष्य अभी तक इस अवस्था में है, कि वह क्या शरीर के विचार से और क्या धन के विचार से अपनी हानि को देखकर भी उस से बच नहीं सकता। एक जन है जो धन लुटा रहा है, हम उसे कहते हैं, कि इतना खर्च न करो, तुम्हारी आमदनी की तुलना में इतना खर्च उचित नहीं, परन्तु उस से रहा नहीं जाता। बुद्धि से समझ लेता है, कि बात तो ठीक है; यदि रुपया बचाऊं तो मेरा हि लाभ है, पर नहीं बचा सकता। वह वस्तुएं जिन के खरीदने के लिए बहुत प्रबल आकांक्षा है, जब सामने आती हैं, तब झट लेने को तैयार हो जाता है। वह बुद्धि से समझा हुआ कुछ काम नहीं देता। कितने अमीर एक २ वासना के वश होकर पीछे से भीख मांगते हैं। जब ऐय्याशी आरम्भ होती है, तो किसी की नहीं सुनते और यहां तक पहुंच जाते हैं, कि कुछ बाकी

नहीं रहता। वह यहां तक पहुंच जाते हैं, कि मानिक विचार से भी अपनी हानि और लाभ को उपलब्ध नहीं करते। इसी प्रकार कितने बद चलन लोग बदनामी की भी परवाह नहीं करते; उन्हें अपनी इज़्ज़त का भी कुछ ख़्याल नहीं होता, वह किसी की नहीं सुनते। यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ी हुई होती है, कि उन्हें खैंचकर ले जाती है। वह जो आज़ादी-आज़ादी पुकारते हैं, स्वाधीनता-स्वाधीनता (Liberty, Liberty) पुकारते हैं, कहां है उनकी स्वाधीनता! वह तो एक २ प्रवृत्ति और वासना के दास हैं। अपने आत्मिक जीवन की रक्षा करना तो कहीं रहा, वह संसार के विचार से भी अपना नाश करने से रह नहीं सकते। अब तुम समझ सकते हो, कि धर्म्म तो इस से ऊपर की वस्तु है। जीवन के विषय में हित और अहित का विवेक जाग्रत हो (विवेक-विवेचना शक्ति को कहते हैं, और मत वालों की न्याई ईश्वर वा खुदा की बोली को नहीं), आत्मा के विचार से यह बोध हो, कि यह शुभ है और यह अशुभ है। आत्मा का जीवन तो एक ओर रहा, शरीर के सम्बन्ध में भी, सांसारिक मान और यश के सम्बन्ध में भी लाखों और करोड़ों जनों पर जब शुभ और अशुभ की कोई अपील काम नहीं करती, तो आत्मा की हानि और लाभ का बोध तो बहुत दूर की वस्तु है। शारी-

रिक रोग में जो एक २ रोगी औषधि फेंक देता है, उस की तह में क्या होता है? केवल जिह्वा का स्वाद। अर्थात जिह्वा को छू जाने से औषधि का स्वाद पसन्द नहीं। वह जिह्वा को छूने से कड़वी अनुभव होती है। आधा मिंट भी पीने में नहीं लगता, पर यही काफ़ी है, कि वह दवाई न पी जाए और अपना शरीर रोग में फंसा रहे। एक २ मां को कहो, कि तेरा लड़का स्कूल क्यों नहीं जाता? कहती है, कि शिक्षक ने मारा था इसलिए नहीं जाता। मां के हृदय पर अपने बच्चे को उस्ताद के मारने की चोट लगती है; इसलिए यह कहती है, कि बेशक वह स्कूल न जाए और मूर्ख रहे। उसे यदि यह अपील करें, कि तुम आप भी तो बच्चे को मारती हो, यदि उस्ताद ने एक आध लगादी तो क्या बात है, बच्चे के स्कूल न जाने से उसकी हानि बहुत है, पढ़ने से शायद नौकरी लग जाए, मूर्ख रहकर शायद टोकरी ढोनी पड़े; तो भी वह नहीं सुनती। इस प्रकार के कितने हि दृष्टान्त दिए जा सकते हैं, कि जिन से प्रगट होता है कि बाह्मक विचार से भी लोगों को हानि और लाभ का बोध नहीं। अब आत्मा का ज्ञान कहां से हो?

जीवन क्या? जीवन का तत्व क्या? जीवन का बोध क्या? जीवन के हित और अहित के विषय में कोई बोध जाग्रत हो, तो तुम्हारा भला हो सकता है। हानि

और लाभ के केवल शब्द न सुनो, किन्तु यह बोध हो, कि हानि और लाभ दोनों एक वस्तु नहीं। चांदी के रुपए और ताम्बे के पैसे जैसे अलग २ दिखाई देते हैं, वैसे हि जीवन के विकास और विनाश में कुछ अन्तर मालूम हो, तब कुछ भले का भाव पैदा होसकता हैं। यह नहीं कि कोई लड़का हो, और कोई लड़की हो, उनका विवाह कर दिया और वह धर्म्म का विवाह हो गया; वह चाहे किसी रीति से किया जाए और कोई कराने वाला हो। धर्म्म भावों के बिना कोई शक्ति ऐसी नहीं, कि जो उनके दिलों को मिला सके। हां, प्रवृत्तियां और वासनाएं उन्हें अवश्य एक दूसरे से जोड़ देती हैं। उनकी तृप्ति को लेकर वह एक दूसरे के साथ जुड़ जाते हैं, परन्तु धर्म्म के भाव उन में कुछ नहीं होते, इसलिए दोनों हि स्वार्थी होकर रहते हैं। सैकड़ों स्त्रियों को अपने पतियों के दुख का पता नहीं होता; सैकड़ों पुरुषों को अपनी पत्नियों के दुख का बोध नहीं होता। धर्म्म क्या है? उच्च गति मूलक सूत्रों के साथ जुड़ना क्या है? यह कि जिस में एक दूसरे के सच्चे सुख और कल्याण की चाह हो। परन्तु साधारण रूप से हित की चाहना भी नहीं। किसी पति के दिल में यह चाहना हो सकती है, कि उसकी पत्नी अच्छे कपड़े पहने, परन्तु उस में पत्नी के हित का किंचित मात्र भी ख्याल न हो। वह बीमारी में उसका

इलाज कर सकता है, परन्तु उस से यह नहीं कहा जा सकता, कि सचमुच उसके भीतर उस के हित का भाव जाग्रत हुआ है। हां सकता है, कि उसका इलाज केवल इसलिए करता हो, कि उसके मरने के साथ उसे अपनी हानि बोध होती है। एक दूसरे के लिए यह सेवा उन के लिए लाभ दायक हो सकती है, परन्तु यह धर्म्म का बन्धन नहीं। धर्म्म का बन्धन तब तक असम्भव है, जब तक ऐसा बोध जाग्रत न हो, कि जो धर्म्म रूप के लिए आकृष्ट करे। धर्म्म के विविध भाव जब तक किसी जन के भीतर उत्पन्न और विकसित न हों, तब तक वह क्या पति पत्नी और क्या अन्य नाना सम्बन्धों में स्वार्थ से ऊपर धर्म्म जीवन की कोई सच्ची लीला प्रदर्शन नहीं कर सकता। ऐसे धर्म्म भावों को लाभ करने के लिए तुम्हें सब से बढ़कर देवात्मा के देवरूप के साथ जुड़ने की आवश्यकता है। क्या वह तुम्हें आकृष्ट करता है? क्या वहां तुम्हारा प्यार जाता है? क्या तुम धर्म्म रूप की ओर आकृष्ट होते हो? उसके साथ जोड़ने वाला कोई सूत्र तुम्हारे भीतर उत्पन्न हुआ है? यह धर्म्म सूत्र हि है, कि जिस के द्वारा एक धर्म्म आकांक्षी हृदय उच्च जीवन दाता के देवरूप पर बेल की न्याईं चढ़ता है। यहां से हि उसकी आत्मिक उन्नति आरम्भ होती है। यह देखो (दोनों हाथों को जोड़कर) दोनों हाथ आपस में

जुड़े हुए हैं, अब और भी जुड़े हुए हैं। यह हमारे चाहने से जुड़े हुए हैं। इसी प्रकार धर्म्म के जीवन की आकांक्षा को लेकर जब एक २ अधिकारी आत्मा हम से जुड़ता वा हमारे निकट होता है, तब वह जीवन के प्रत्येक सम्बन्ध में बेहतरी लाभ करता है। यही मेल आत्माओं को उच्च करता है। प्रत्येक सम्बन्ध में नीचता का बोध और उसके त्याग की आकांक्षा और उस में उच्च वा हितकर बनाने की अभिलाषा धर्म्म दाता से मिलाती है। यहां से सच्चा सुख आरम्भ होता है, यहां से हि धर्म्म जीवन आरम्भ होता है। तुम्हारे भीतर क्या कोई ऐसा भाव जागा है, कि जिससे तुम में धर्म्म की उत्पत्ति हो। क्या हृदय उसके लिए लोचता है? धर्म्म यदि सार वस्तु हो, विकास का जीवन यदि सचमुच कोई उच्च वस्तु हो, आत्मा के उच्च बोध सचमुच कोई अमूल्य वस्तु हों, केवल स्तोत्र में गाने की वस्तु न हों, सचमुच उच्च वा देव बोध देवात्मा में प्रकाश पाए हों, जैसा कि तुम साक्षात् देख रहे हो, तो क्या वह देवात्मा तुम्हारे लिए आकर्षण की वस्तु बना है, क्या तुम्हारे भीतर उसके लिए अनुराग उत्पन्न हुआ है? हम किसी अच्छी वस्तु को देखकर उसकी प्रशंसा कर सकते हैं, वाह वाह कर सकते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसके अनुरागी हो जाएं।

ऐसा हो कि तुम लोग इस तत्व को अधिक से अधिक उपलब्ध कर सको और देवात्मा के प्रति अपने भीतर आकर्षण उत्पन्न करके धर्म्म जीवन में उन्नत हो सको।

[सूचना :— उक्त उपदेश लिखा हुआ पूजनीय भगवान् के कागजात में से मिला है। परन्तु यह उनका देखा हुआ नहीं है।]

देवाश्रम में पति पत्नी व्रत का साधन।

(जीवन पथ, चैत्र १६६४ वि०)

फाल्गुण शुदि पूर्णिमा सम्वत् १९६४ वि० अर्थात् १७ मार्च १६०८ ई० को होली के दिन देवाश्रम लाहौर में पति पत्नी यज्ञ सम्बन्धी व्रत का साधन हुआ। व्रत साधन से पहले जब सेवक गण परम पूजनीय भगवान् देवात्मा के श्री चरणों में उनका अर्च्चन करने और उन से पवित्र आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए पहुंचे, तब जीवन दाता भगवान् देवात्मा ने—जिन का ज्योतिर्मय मुख पहले से हि ऐसे उच्च भावों के उद्वेग से चमक रहा था—अर्च्चनादि के अनन्तर सब सेवक जनों को अपने सन्मुख बैठने की आज्ञा दी, और प्रायः पौने घण्टे तक अत्यन्त हितकर उपदेश प्रदान किया जिस का अत्यन्त संक्षिप्त सार मैं अपने शब्दों में नीचे देता हूं :—

देव धर्म्म की शिक्षा विज्ञान-मूलक सत्य शिक्षा है। क्यों ? अधिकारी जन उस की विशेषता और उस के

महत्व को उपलब्ध करेंगे, त्यों २ वह उस पर मोहित और बलिहार होंगे। इस धर्म्म की विज्ञान-मूलक शिक्षा के अनुसार मनुष्य इस नेचर का एक अंश है और वह प्रति मुहूर्त और प्रत्येक स्थान में इस नेचर के नाना अस्तित्वों से घिरा हुआ है। वह इस नेचर के प्रत्येक विभाग से बहुत गहरे तौर से जुड़ा हुआ है।

इन विभागों के सम्बन्ध में वह नाना प्रकार की गतियां ग्रहण करके या तो धीरे २ विनष्ट हो जाता है, या विकास लाभ करता है। इस मूल सत्य को भली भांत उपलब्ध करने में हि उसका प्रकृत कल्याण है।

पति पत्नी के सम्बन्ध की हकीकत क्या है? इस विशेष सम्बन्ध में बन्धने से पहले, उन में से एक साधारण कन्या वा स्त्री होती है, और दूसरा एक साधारण बालक वा पुरुष। परन्तु एक विशेष अनुष्ठान के द्वारा पति और पत्नी बनकर भी वह साधारणतः किस सूत्र को लेकर जुड़ते हैं? मुख्यतः काम वासना की तृप्ति के लिए। वह एक दूसरे के साथ प्रधानतः इसी वासना की तृप्ति के लिए विवाह करते हैं। कुछ थोड़ी सी और बातों के भिन्न उनकी अधिकतर बातचीत और एक वा दूसरी क्रिया इसी वासना की प्रेरणा से होती है। उन्हें कोई पता नहीं होता, कि वह अपनी ऐसी गति से एक दूसरे को क्या बनाते और आप क्या बनते हैं।

धर्म्म अर्थात् आत्मा की उच्च वा नीच गति के विषय को लेकर उनकी आपस में प्रायः कोई बातचीत नहीं होती। अपने किसी दोष वा अपराध वा पाप से उद्धार लाभ करने के विषय में उनकी कोई बातचीत नहीं होती। अपने परिवार और अपने परस्पर के सम्बन्धों को धर्म्मगत सम्बन्ध बनाने के विषय को लेकर वह कोई परामर्श नहीं करते। फिर पति और पत्नी का ऐसा सम्बन्ध कहां से पवित्र हो, क्योंकि साधारणतः पुरुष स्त्रियों की ओर और स्त्रियां पुरुषों की ओर केवल एक हि वासना को लेकर देखते और चिन्ता करते हों, और इसी वासना को खुल्लम खुल्ला प्रकाश करने के लिए नाना प्रकार की परस्पर अश्लील बातचीत और गन्दी बकवास करते हों। सैकड़ों पढ़ लिखे और तालीमयाफ़ता आपस में बैठकर जब तक प्रति दिन गन्दी हंसी मखौल न करलें, तब तक उन्हें चैन नहीं आता। हमारे देश में होली का त्योहार हि इसी जोश को लेकर मनाया जाता है, कि जिस में एक २ स्त्री को चाहे वह किसी की मां वा बहू वा बेटी हो, रास्ते में से गुज़रना तक मुशकिल हो जाता है, और बहुत से पुरुष खूब दिल खोलकर अश्लील गीत गाते और "कबीर" आदि बोलते हैं। जैसे एक २ निर्दयी मनुष्य एक २ पशु को अपनी स्वाद वासना के लिए बध करने वा कराने में

उसके प्रति कोई दर्द वा दया नहीं अनुभव करता, और दया और न्याय की कोई अपील उसके दिल को नहीं छूती; उसी प्रकार कामी पुरुष स्त्री को देखने के साथ हि विवश नीच चिन्ता और अपनी नीच वासना की अभिलाषा से भरकर अन्धा हो जाता है। उसकी निगाह किसी स्त्री के किसी सद्गुण की ओर नहीं जाती। उसकी चिन्ता उसके किसी अच्छे भाव को लेकर नहीं होती। किन्तु केवल यही एक चिन्ता उसके दिल और दिमाग़ पर अधिकार कर लेती है। ओह ! कितनी शोचनीय अवस्था !! काम वासना वेशक कोई स्वयं बुरी वासना नहीं। इस के बिना पति पत्नी विषयक प्रणय और सन्तान् की उत्पत्ति और मनुष्य जाति की रक्षा हि नहीं हो सकती। परन्तु इस वासना का अनुचित अधिकार होने से एक २ जवान पेशतर इसके, कि वह जवान हो अपनी शारीरिक और मान्सिक शक्तियों को नष्ट कर लेता है। और जिस्म और दिमाग़ और दिल के विचार से बिलकुल खोखला और रद्दी हो जाता है। और इसीलिए हमारे देश में बहुधा क्या स्त्रियां और क्या पुरुष जवानी की प्रकृत अवस्था को बहुत थोड़े काल तक भोगते हैं। हमारे देश के ऐसे बालकों और कन्याओं, पुरुषों और स्त्रियों की यह अवस्था किस कृदर शोचनीय !! क्या ऐसी हि रद्दी नसलों से हमारा देश

उभर सकता है, और उस में बल और वीर्य्य आ सकता है? कदापि नहीं। सच्चे ब्रह्मचर्य्य की बहुत बड़ी ज़रूरत है। अविवाहितों के भिन्न विवाहितों को भी ज़रूरत है। काम वासना के भयानक अधिकार से हृदयों को पवित्र करने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। बिना इस अधिकार के घटने के नर और नारियों, पति और पत्नियों का सम्बन्ध पवित्र नहीं हो सकता, और पुरुषों में स्त्री जाति के लिए विशुद्ध सन्मान का भाव पैदा नहीं हो सकता, और पुरुषों और स्त्रियों का परस्पर सम्बन्ध भी उच्च नहीं हो सकता।

किसी विचार शील ने कहा है, कि किसी देश की सभ्यता का इस बात से अन्दाज़ा हो सकता है, कि उस के पुरुषों में स्त्रियों के लिए कहां तक सन्मान का भाव पाया जाता है, और उनके परस्पर के सम्बन्ध कहां तक पवित्र और हितकर बातों को लेकर स्थापन हुए हैं। ऐसा हो, कि सत्य धर्म्म विषयक जीवन के प्रचार से यह सब दुरावस्था दूर हो; और पति पत्नियों और नर नारियों के परस्पर के सम्बन्ध पवित्र और उच्च हों।

एक सेवक।

४—उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में।

हमारा नवं वर्ष।

(जीवन पथ, आषाढ़ १९६० वि०)

आज वैशाखी है, आज से हम हिन्दुओं का नया वर्ष आरम्भ होता है, इसलिए आज का दिन वर्ष का पहला दिन है। वर्ष के इस नए दिन में प्रवेश करके आज लाखों हिन्दू एक वा दूसरी नदी में स्नान कर रहे हैं। देश की प्रथा के अनुसार एक वा दूसरी प्रकार का दान कर रहे हैं। हज़ारों हिन्दू इस समय गंगा में स्नान के लिए हरिद्वार में पहुंचे हुए हैं। यह यात्री बहुत दूर२ से, बहुत सा धन ख़र्च करके और सफ़र का बहुत सा कष्ट उठाके वहां पहुंचे हैं। यह सब किस लिए? इस लिए, कि किसी प्रकार आज के शुभ दिन में जब कि कुम्भ राशि में सूर्य्य प्रवेश करता है, उन्हें गंगा में स्नान करने का अवसर मिल जावे। लाहौर के भी हज़ारों हिन्दू इस समय रावी में नहा रहे हैं। हज़ारों इस समय अमृतसर पहुंचकर उस तालाब में स्नान कर रहे हैं, कि जिस का नाम उन्हों ने अमृतसर अथवा अमृत का तालाब रक्खा है। इस प्रकार विविध तीर्थों और नदियों पर हज़ारों और लाखों का समूह वर्तमान है। यह सब हिन्दू हैं, इन में सैकड़ों विद्वान भी हैं, कोई कम कोई अधिक परन्तु माता पिता और वंश परम्परा से उन्हों ने यह

संस्कार लाभ किया है, कि आज के शुभ दिन में यदि गंगा स्नान हो, तो सब से बढ़कर पुण्य लाभ होता है। और यदि वह न हो, तो किसी और नदी का स्नान भी अवश्य पुण्य दायक है। इसी संस्कार के वश होकर लाखों हिन्दू एक वा दूसरी नदी वा तीर्थ पर पहुंचकर आज स्नान और दान कर रहे हैं। अपने तौर पर इतने हिन्दुओं का एक स्थान में एकत्र होना अच्छा दृश्य है, परन्तु यदि विचार करके देखा जावे, तो पता लग सकता है, कि यद्यपि इस वा उस नदी के स्नान से केवल गात्र की तो कुछ शुद्धि हो सकती है, परन्तु नीच वा पाप जीवन से कुछ शुद्धि नहीं होती। मनु ने भी कहा है:— "अद्भिर्गात्राणि शुद्धन्ति।" अर्थात् जल से केवल गात्र शुद्ध होता है। वह भी यदि भली भांत स्नान हो, परन्तु आत्मा का प्रकृत हित कुछ भी नहीं होता। दूसरी अवस्था में बहुत सा धन नष्ट होता है, सफ़र की तकलीफ़ अलग होती है, और यदि कोई संक्रामक महामारी उत्पन्न हो जावे, तो हज़ारों लोग मर भी जाते हैं, जिस से अनेक स्त्रियां विधवा हो जाती हैं, पुरुष रंडवे और बच्चे यतीम हो जाते हैं। केवल गात्र के शुद्ध करने के लिए यह सब त्याग सर्वथा वृथा है। परन्तु शोक कि साधारण लोग संस्कार-ग्रस्त और कल्पना-प्रिय होकर और जीवन तत्व विषयक ज्योति से अन्ध रहकर अपने आत्मा के प्रकृत

छिद्र से वंचित रहते हैं।

उद्भिद् जगत् और उसके साथ मनुष्य का शारीरिक और आत्मिक सम्बन्ध।

आज जहां उन सब का विशेष दिन है, वहां हमारा भी उद्भिद् यज्ञ सम्बन्धी " पुष्प पत्र व्रत " है। उद्भिद् यज्ञ क्या ? जो यज्ञ उद्भिद् जगत् से सम्बन्ध रखता हो। उद्भिद् क्या जो उद्भूत हुआ हो, अर्थात् भूमि वा मट्टी से उगा हो। कोई पौदा, चाहे वह किसी श्रेणी का हो, वह उद्भिद् जगत् से सम्बन्ध रखता है। तुम ने कई बार किसी परनाले पर कुछ हरी २ सी वस्तु चिमटी हुई देखी होगी; वह भी एक प्रकार के बहुत से पौदे हैं, कि जो बहुत छोटे २ होते हैं। उस से ऊपर घास और दूब आदि, और फिर झाड़ियां आदि, फिर बड़े २ वृक्ष, पीपल और बड़ आदि कि जिन के नीचे सैकड़ां जन बैठ सकते हैं, उद्भिद् जगत् के हि पदार्थ हैं। परनाले के के बहुत सूक्ष्म और नन्हें २ पौदों से लेकर पीपल और बड़ आदि वृक्षों तक जितने पेड़ हैं, वह सब इस उद्भिद् जगत् से हि सम्बन्ध रखते हैं।

इस जगत के साथ हमारा बहुत गाढ़ सम्बन्ध है, हां, जीवन और मृत्यु का सम्बन्ध है। साक्षात् और असाक्षात् रूप से क्या मनुष्य जगत् और क्या पशु जगत् उद्भिद् जगत् का सेवन करके हि जीता है। जिस

जगत् से हमें नाना प्रकार के अनाज मिलते हैं, दालें और भाजियां मिलती हैं, कपड़ों आदि के लिए सूत्र मिलता है, चीनी और मिठाई मिलती है, नाना प्रकार की औषधियां मिलती हैं, नाना प्रकार के सुन्दर और सुगन्धि दायक फूल मिलते हैं, नाना प्रकार के फल मिलते हैं, नाना प्रकार की लकड़ियां मिलती हैं, धूप और वर्षा के समय छाया और रक्षा मिलती है, इत्यादि २, इस जगत् के साथ हमारे जीवन का जो अति गाढ़ सम्बन्ध है, उस में किसी को क्या सन्देह हो सकता है ? पूछा जा सकता है, कि इस प्रकार का सम्बन्ध तो और लोग भी जानते हैं ? अन्न न मिले, वस्त्र न मिले, तो मनुष्य की बहुत दुर्दशा हो जाती है। दुर्भिक्ष के दिनों में अन्न के न मिलने से लाखों जन मर जाते हैं, अथवा दर २ भीख मांगते फिरते हैं। सच है, इस जगत् के साथ अपने शारीरिक सम्बन्ध को साधारण जन भी अनुभव करते हैं, परन्तु इस प्रकार का सम्बन्ध तो हज़ारों पशु भी उसके साथ अनुभव करते हैं। शरीर की रक्षा करना बेशक हम सब के लिए आवश्यक है। परन्तु केवल शरीर की रक्षा करने से आत्मा की रक्षा नहीं होती। शरीर की रक्षा कुछ और है, और आत्मा की रक्षा कुछ और। केवल शरीर की रक्षा से आत्मा की रक्षा उसी प्रकार नहीं होती, जिस प्रकार केवल शरीर

की उन्नति से विद्या की उन्नति नहीं होती। यदि किसी जन के शरीर की रक्षा हो, उसकी मानसिक शक्तियों की भी उन्नति हो, परन्तु उस के हृदय में नीच गति नाशक बोध और उच्च गति उत्पादक भाव उत्पन्न न हों, तो यही नहीं, कि उसके आत्मा की कोई रक्षा और उन्नति नहीं हो सकती, किन्तु वह अपनी वासनाओं और उत्तेजनाओं का दास होकर विविध सम्बन्धों में नाना प्रकार के मोह और पाप की उत्पत्ति करता है, और नीच और पापी बनकर उलटा अपने आत्मा की जीवनी शक्ति को नष्ट करता है। जीवन के सम्बन्ध में विनाश और विकास तत्व के न जानने से, प्रकृत पाप और पुण्य और उनके फलों आदि के विषय में चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ है। जीवन तत्व को दुनिया ने अब तक नहीं जाना। बड़े २ विद्वानों और पण्डितों ने नहीं जाना। बड़े २ वैज्ञानिक जनों और धर्म्म सम्प्रदायों के नेताओं ने नहीं जाना। इसीलिए विविध धर्म्म सम्प्रदायों में नाना प्रकार की मिथ्या कल्पनाएं फैली हुई हैं। जीवन तत्व की ज्योति यह भली भांत दिखलाती है, कि कब और किस प्रकार किसी का जीवन नीच और कब और किस प्रकार उच्च बनता है। जैसे मूर्ख और विद्वान का भेद इसी पृथिवी में दिखाया जा सकता है, इसी प्रकार उच्च गति और नीच गति रखने वालों के जीवन

का भेद भी यहीं इसी लोक में दिखाया जा सकता है। विनाश और विकास का नियम जैसे और जगतों में काम कर रहा है, वैसे हि मनुष्य जगत् में भी।

नियम अटल होता है, नियम विश्वव्यापी होता है। जब आम टूटता है, तो ज़मीन उसे अपनी ओर खैंच लेती है, यह नियम जैसे लाहौर के लिए है, वैसे हि अमृतसर के लिए। जैसे भारत वर्ष के लिए, वैसे हि इंगलैंड और एमरीका के लिए। ऐसा नहीं, कि हमारे देश के लिए एक नियम है, और दूसरे देश के लिए दूसरा नियम है। किन्तु इसी प्रकार सारे भौतिक जगतों में एक हि नियम है। इसी प्रकार सारी नेचर में हि विनाश का नियम सर्व्वव्यापी और अटल है। उस के अधीन होकर मनुष्यात्मा भी उसी तरह विनष्ट हो जाता है, जिस तरह कोई और अस्तित्व।

तब प्रश्न यह है, कि उद्भिद् जगत् के साथ तुम्हारा सम्बन्ध कैसा है? क्या साधारण जनों की न्याई केवल शरीर को लेकर है, और आत्मा के सम्बन्ध में तुम्हें उस के शुभ और अशुभ कार्य्य का कोई बोध नहीं? यदि आत्मा के उच्च जीवन को लक्ष्य बनाकर तुम उस के साथ अब तक कोई नीच गति विनाशक और उच्च गति विकासक सम्बन्ध स्थापन नहीं कर सके, तो तुम्हारे आत्मा की ऐसी अवस्था में एक ओर जैसे विनाश के

रचा नहीं हो सकती, वैसे हि दूसरे और उसका इस सम्बन्ध के द्वारा कोई विकास साधन भी नहीं हो सकता।

मूल सम्बन्धी के द्वारा उद्भिद् जगत् के साथ सात्विक सम्बन्ध।

उद्भिद् जगत् के साथ जैसे मनुष्य अपने शारीरिक जीवन का गाढ़ सम्बन्ध अनुभव करता है, वैसे हि नाना प्रकार के पशु भी। परन्तु केवल शारीरिक सम्बन्ध रखकर और आत्मिक सम्बन्ध से विहीन रहकर मनुष्य इस जगत् के द्वारा केवल एक सीमा तक अपने शरीर की हि रचा कर सकता है, और उस से अधिक और कुछ नहीं; किन्तु शारीरिक इन्द्रियों और सुखों का दास बनकर इस जगत् के पदार्थों के द्वारा अपने आत्मा के जीवन की हानि के भिन्न अपने शरीर की भी बहुत हानि करता है। सुस्वादु वस्तुओं के भोजन का दास अथवा भंग, गांजा, चरस, अफ़ीम और मद (शराब) आदि विविध प्रकार के नशों का अमली बनकर वह जिस प्रकार से अपने आत्मा और शरीर दोनों की हानि करता है, कितने हि प्रकार के नीच गति दायक पाप कर्म्मों में लिप्त होकर अपना नाश करता है, उसका कुछ न कुछ भेद तुम पर भी खुल चुका है। इसी भांत और कितने हि प्रकार से मनुष्यात्माओं का अनिष्ट होता है। इसीलिए उद्भिद् जगत् के साथ तुम जब तक अपने

आत्माओं का उच्च गति अथवा जीवन दायक सम्बन्ध स्थापन करने के योग्य न बन सको, और उसके साथ केवल खानपान और शारीरिक स्वाद और और सुखों का हि सम्बन्ध रक्खो, तो उस से तुम अपने आत्माओं को जैसे नीच गतियों से बचा नहीं सकते, वैसे हि अपना कोई उच्च विकास भी साधन नहीं कर सकते। देव धर्म शिक्षक की ज्योति पाकर तुम नेचर के इस बड़े भाग अर्थात् उद्भिद् जगत् के साथ जीवन दायक सम्बन्ध स्थापन करने की ओर से उदासीन नहीं रह सकते। परन्तु केवल ऐसी ज्योति क्या करेगी? यदि नीच गति नाशक बोधों और उच्च गति दायक अनुरागों के दाता मूल सम्बन्धी के साथ तुम अभी अनुराग सूत्र में नहीं बन्धे, और इतने गाढ़ रूप से नहीं बन्धे, कि जिस से वह जिस के प्रति अनुराग वा घृणा रखते हों, तुम भी उस के प्रति अनुराग वा घृणा अनुभव कर सको, तब तक तुम उद्भिद् जगत् के साथ जैसे किसी जीवन्त सम्बन्ध स्थापन करने की आकांक्षा अनुभव नहीं कर सकते, वैसे हि इस सम्बन्ध विषयक विविध नीच गति दायक बोध और जीवन विकासक कल्याणकारी भाव भी लाभ नहीं कर सकते।

सात्विक अनुराग की आवश्यकता।

सात्विक अनुराग के उत्पन्न होने के बिना नेचर के

किसी विभाग के साथ उच्च गति दायक सम्बन्ध स्थापन नहीं होता, और आत्मा में धर्म्म कोष की उत्पत्ति और उन्नति नहीं होती। जब तक किसी इन्द्रिय सुख वा वासना या उत्तेजना की तृप्ति के लिए हि किसी के साथ कोई मनुष्य सम्बन्ध रखता है, तब तक उसका सम्बन्ध उच्च गति दायक अथवा प्रकृत धर्म्म का सम्बन्ध नहीं होता। अब तुम परीक्षा करके देखो, कि तुम्हारा हृदय किसी वासना और उत्तेजना की तृप्ति को छोड़कर इस नेचर के विविध विभागों के सम्बन्ध में किसी हितकारी से हितकारी सम्बन्धी के प्रति भी कोई आकर्षण अनुभव करता है? क्या जिन्हें तुम जीवन दाता वा धर्म्म दाता और अपने जीवन के परम हितकर सम्बन्धी आदि जान कर श्रद्धा प्रदर्शन करते हो, उनके प्रति भी तुम्हारे हृदय में कोई आकर्षण वा अनुराग पाया जाता है? यदि किसी ऐसे परम हितकारी के लिए भी जो आत्मा का हित साधन करते हैं, किसी के भीतर अनुराग उत्पन्न न हुआ हो, तो क्या उद्भिद् जगत् के लिए उस के भीतर कोई उच्च गति दायक अनुराग पाया जा सकता है? कदापि नहीं। धर्म्म जीवन की प्रकृत और गाढ़ आकांक्षा के उत्पन्न हो जाने पर जब उच्च जीवन दाता मूल सम्बन्धी के लिए आकर्षण और अनुराग उत्पन्न हो, तभी यह अनुराग धीरे २ उसे उन सम्बन्धियों के साथ

भी बान्ध सकता है, कि जिन के साथ उस के मूल सम्बन्धी उच्च गति दायक विविध प्रकार के सम्बन्ध रखते हैं।

सात्विक अनुराग विषयक लक्षण और साधन।

और लक्षणों को छोड़कर सात्विक अनुराग जिन चार मोटे २ लक्षणों से पहचाना जाता है, वह यह हैं:—
(१) जिस के प्रति ऐसा अनुराग उत्पन्न हुआ हो, उस के सम्बन्ध में अनुभव और चिन्ता का उत्पन्न होना, (२) उस के विषय में अधिक से अधिक जानने की आकांक्षा होना, (३) उस के सम्बन्ध में कुछ न कुछ हित करने की इच्छा का उत्पन्न होना (४) उसकी किसी आवश्यकता का निवारण अथवा उसकी कोई सेवा करने से हृदय में सुख वा तृप्ति लाभ होना।

अब प्रश्न यह है, कि क्या उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में तुम्हारे भीतर कोई ऐसा सात्विक अनुराग पाया जाता है? क्या उन के विषय में तुम्हारे भीतर कोई चिन्ता वा भावना उठती है? क्या उस के विषय में तुम्हारा कुछ ज्ञान बढ़ा है? क्या वह किसी प्रकार तुम्हें अपना प्रतीत होता है? क्या तुम ने कुछ पौदों की निष्काम भाव से पिछले एक वर्ष तक उसी प्रकार सेवा की है, जिस प्रकार एक स्त्री स्वार्थ भाव से अपने किसी पुत्र की सेवा करती है? यदि उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध

में तुम में से किसी का इस प्रकार कुछ साधन हुआ हो, तो वह अवश्य उद्भिद् यज्ञ का साधन कहा जा सकता है, अन्यथा नहीं। तुम में से जिन का कुछ भी ऐसा साधन हुआ हो, वह आज उसे सन्मुख लाकर अपने आप को कृतार्थ अनुभव कर सकते हैं। और इस प्रकार से कृतार्थ अनुभव करके इस यज्ञ के स्थापन कर्ता के हितों को स्मरण करके एक वा दूसरे उच्च भावों को उद्दीपन कर सकते हैं। परन्तु जिन का इस प्रकार कोई साधन न हुआ हो, उन्हें इस समय के उपदेश से ज्योति पाकर सात्विक अनुराग के उत्पन्न करने के लिए आवश्यक उपाय और यत्न करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। अनु-राग और सेवा में परस्पर अकाट्य सम्बन्ध है। ऐसा होता है, कि जिन के भीतर सात्विक अनुराग का कोई बीज वर्तमान हो, वह सेवा के साधन से प्रस्फुटित हो जाता है, जैसा कि एक संगीत में कहा गया है, कि "बिन सेवा नहीं प्रीति जागे" अर्थात् सेवा के बिना प्रीति नहीं जागती, और अनुराग वा प्रीति से पर सेवा उत्पन्न होती है। अतएव आगामी वर्ष के लिए यदि तुम में से प्रत्येक जन एक वा उस से अधिक कुछ पौदों की लगातार सेवा का व्रत ले सके, तो इस नियमित साधन से उसके कल्याण की बहुत कुछ आशा हो सकती है। इसके भिन्न तुम ऐसे व्रत को पूरा करके जहां इस समंब

में उपदेश के अभिप्राय को सुफल कर सकते हों, वहां उद्भिद् यज्ञ स्थापक की प्रसन्नता लाभ करके उनके साथ अपने सम्बन्ध को भी अपने लिए कुछ हितकर बना सकते हो। ऐसा हो, कि तुम इस प्रकार का साधन ग्रहण करके अपने जीवन का प्रकृत हित और कल्याण करो।

देवाश्रम में उद्भिद यज्ञ और पुष्प पत्र व्रत का साधन।

(जीवन पथ, वैशाख १९६३ वि०)

भगवान् देवात्मा धन्य हैं, कि जो एक २ जगत् के सम्बन्ध में अपनी अद्वितीय ज्योति और शक्ति का दान देकर उस जगत् के सम्बन्ध में एक २ अधिकारी आत्मा के भीतर नीच गति विनाशक उच्च बोध और उच्च गति विकासक उच्च अनुराग उत्पन्न करना चाहते हैं, और इस प्रकार उस जगत् के सम्बन्ध को उस आत्मा के लिए और उस आत्मा के सम्बन्ध को उस जगत् के लिए कल्याणकारी बनाना चाहते हैं। इसी महान उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए उन्हों ने सोलह यज्ञ और उनके सम्बन्ध में सोलह व्रत स्थापन किए हैं। इन्हीं सोलह यज्ञों में से एक यज्ञ उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में है, कि जिस का नाम "उद्भिद् यज्ञ" है। १३ मार्च से यह उद्भिद् यज्ञ आरम्भ हुआ, और तब से भगवान् देवात्मा की शुभ प्रेरणा से देवाश्रम वासी कितने हि सेवकों और

सेवकाओं ने उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में सेवा सम्बन्धी विशेष साधन करने आरम्भ किए। इन सब साधनों में से कुछ साधन इस प्रकार के हैं :—

(१) पौदों की पहली मट्टी बदल कर उन में नई मट्टी डालना।

(२) पौदों की पहली मट्टी या नई मट्टी में खाद मिलाना।

(३) पौदों को गोड़ना और उन के सूखे २ पत्ते निकालना।

(४) पौदों के हरे पत्तों को पानी से साफ़ करना।

(५) पौदों को छोटे गमलों में से निकाल कर बड़े गमलों में लगाना।

(६) पौदों को प्रति दिन पानी देना।

(७) बेलों की शाखों को ठीक करना और उनके बढ़ने का प्रबन्ध करना।

(८) नए फूलदार पौदे ख़रीदना।

(९) साधन स्थान को सुन्दर पत्तों और फूलों वाले पौदों से सजाना।

(१०) भगवान् देवात्मा की छवि को पुष्पहार से सुसज्जित करना।

(११) परम पूजनीय भगवान् देवात्मा का पुष्पहार से अर्चन करना।

(१२) अपने हितकर्ता अथवा प्रिय सम्बन्धियों को पुष्प, पुष्पहार और गुलदस्ते आदि उपहार में देना, इत्यादि २।

इसके भिन्न इन्हीं दिनों में कई सभाएं इस जगत् की महिमा और मनुष्यों और पशुओं के सम्बन्ध में उस के उपकारों को सन्मुख लाने के लिए की गईं।

पहली वैशाख अर्थात् १२ अप्रैल को इस जगत् के सम्बन्ध में पुष्पपत्र व्रत का साधन था। दो तीन दिन पहले से इस व्रत के सम्बन्ध में विशेष तैयारियां की गईं। देव धर्म्म प्रचार हाल की दीवारों और फ़र्श को साफ़ करके उस के एक भाग में उद्भिद् जगत् प्रदत्त वस्तुओं की प्रदर्शनी सजाई गई। बहुत सी मेज़ों आदि पर साफ़ वस्त्र बिछाकर उन पर भान्त २ की वस्तुएं सजाईं गईं। यथा :—

(१) एक मेज़ पर दाने, उनका आटा और दालों की क़िस्म की ५६ वस्तुएं रक्खी हुई थीं।

(२) एक मेज़ पर मसालह की क़िस्म की १६ वस्तुएं।

(३) एक मेज़ पर गुड़, शक्कर, चीनी और उन से बनी हुई १८ प्रकार की वस्तुएं।

(४) एक मेज़ पर २२ प्रकार के अचार अथवा मुरब्बे और ७ प्रकार की बेसन आदि की बनी हुई वस्तुएं।

(५) एक मेज़ पर १० प्रकार के ख़ुश्क मेवे।

(६) एक मेज़ पर २२ प्रकार के हरे मेवे और तरकारियां।

(७) एक मेज़ पर तिल, सरसों, तेल और अतर की क़िस्म की १२ वस्तुएँ।

(८) एक मेज़ पर लकड़ी, रेशे, सूत, गोंद और रंग आदि की क़िस्म की ३२ वस्तुएं।

(९) एक मेज़ पर बीज और औषधि की क़िस्म की ४८ वस्तुएं।

(१०) इन में से कई मेज़ों पर विविध प्रकार के फूलों के भिन्न उद्भिद् जगत् प्रसूत रूई से बने हुए नाना प्रकार के सुन्दर २ वस्त्र सजाए गए थे।

यह सारी तरतीब बहुत हि सुन्दर और उच्च प्रभावों के डालने वाली थी, और जहां एक ओर उद्भिद् जगत् की कितनी हि भिन्न २ चीज़ों और उनके नाना उपकारों को प्रकाशित करती थी, वहां दूसरी ओर यह भी प्रगट करती थी कि मनुष्य ने अपनी बुद्धि शक्ति के द्वारा उद्भिद् जगत् की एक २ वस्तु से क्या २ और वस्तुएं तैयार की हैं।

हाल के शेष भाग में सुन्दर पत्रों और फूलों वाले बीसियों गमले विविध आकारों में सजाए गए थे। यह सजावट भी बहुत आकर्षणीय थी। इसके भिन्न बहुत से गमले देवाश्रम के आंगन और पूजनीय भगवान् के

गृह में परिपाटी के साथ रक्खे गए थे। और इस सब से बढ़कर भगवान् देवात्मा के निवास स्थान अर्थात् देव मन्दिर (जहां पर इस व्रत का साधन होने वाला था) सुन्दर पुष्पों, पत्तों, डालियों, फलों और फूलदार गमलों आदि से विशेष रूप से सजाया गया था। यह सजावट श्रीमान् पण्डित कान्तिनारायण अग्निहोत्री जी ने पूरी की थी, और उनके साथ कई और जनों ने भी काम किया था। इस सारी सजावट के हो चुकने पर पहली वैशाख को प्रातः काल साढ़े सात बजे के समय देवाश्रम वासी सेवक और सेवका और बाहर से आए हुए सेवक और सेवका (जो इसी व्रत में शामिल होने के लिए देवाश्रम में पहुंचे हुए थे) स्नान करके और स्वच्छ वस्त्र पहन के उद्भिद् यज्ञ स्थापन कर्ता भगवान् देवात्मा के श्री चरणों में उपस्थित हुए। और सब ने उनका पुष्प हारों और चंदन से अर्चन किया। फिर सब सेवकों और सेवकाओं ने खड़े होकर देवस्तोत्र का गान किया, और श्रीमान् ... ... जी ने इस व्रत की सुफलता के लिए आशीर्वाद प्रार्थना की और पूजनीय भगवान् ने अपना शुभकर आशीर्वाद दान दिया। जिस के पीछे उन्हों ने एक अति कल्याणकारी और तेजस्वी उपदेश दिया, इस उपदेश में उन्हों ने

(१) समय को नापने के लिए मनुष्य ने जो दिन,

सप्ताह, मास और वर्ष के पैमाने बनाए हैं, उसकी हक़ी-
क़त प्रगट की।

(२) हिन्दू जाति के नव वर्ष के नव दिन की महिमा को वर्णन किया।

(३) यह बताया, कि आज के दिन हिन्दुओं में इस नव वर्ष की ख़ुशी में जगह २ त्योहार मनाया जाता है। हिन्दू जाति के अंग होकर हम लोग भी उस ख़ुशी में योग देने के भिन्न उद्भिद् जगत् जैसे अति कल्याणकारी जगत् के साथ अति हितकर व्रत का साधन भी करते हैं।

(४) यह सत्य प्रगट किया, कि उद्भिद् जगत में जहां विकास के क्रम में ऐसे वृक्ष पैदा हो चुके हैं, जो कि एक ओर किसी के लिए कुछ भी हानिकारक नहीं, और दूसरी ओर सब प्रकार से हितकर प्रमाणित हो रहे हैं, यथा, आम, अंगूर, सेब, गेहूं आदि, वहां इसी जगत् में नीच गति के सिलसिले में ऐसे पौदे और जीवाणु भी वर्तमान हैं, कि जो औरों के लिए हितकर होने के स्थान में महा हानिकारक बन गए हैं; यथा, बिच्छूकंडा, प्लेग, हैज़े और चई रोग आदि के उत्पादक विविध प्रकार के सांघातिक जीवाणु (बैसीलस)।

(५) उन्हों ने फ़रमाया, कि जैसे उद्भिद् जगत् के विविध प्रकार के बुरे और भयानक जीवाणु और जीवों की महा हानि करते हैं, अमृत के स्थान में केवल विष

दान करते हैं, वैसे हि मनुष्य जगत् में जो जन अपने किसी कुसंस्कार, अहंकार और अपनी एक वा दूसरी वासना और उत्तेजना के दास होकर औरों के सम्बन्ध में नीच गति परायण बनते हैं, तब वह अपने विविध सम्बन्धियों के लिए विविध प्रकार से महा हानिकारक प्रमाणित होते हैं, और अमृत के स्थान में विष उत्पन्न करते हैं।

(६) उन्हों ने पूर्वोक्त दोनों प्रकार की छवियों को पेश करके अपने सेवकों और सेवकाओं से पूछा, कि तुम इन दोनों में से अपने हृदय में किस छबि के लिए आकर्षण मालूम करते हो? क्या तुम नीच गति परायण रहकर प्लेग और हैज़े आदि के जीवाणुओं की न्याई केवल विनाशकारी जीव बनना चाहते हो, या अपने उच्च जीवन दाता सतगुरु के साथ जुड़कर नीच गतियों से मोक्ष और उच्च जीवन लाभ करके उद्भिद् जगत् के हितकर पौदों और वृक्षों से भी लाखों गुना बढ़कर हितकर अस्तित्व बनना चाहते हो? क्या तुम अमृत स्वरूप के अनुरागी बनकर और उन से अमृत लाभ करके अमृत रूप ग्रहण करना चाहते हो, या अपनी मनमुखी चाल चलकर और नीच गति परायण रहकर अपने और औरों के लिए विष उत्पन्न करके अपना और औरों का विनाश करना चाहते हो?

परम पूजनीय भगवान् देवात्मा के इस तेजस्वी उपदेश के उच्च प्रभावों से सारा देव मन्दिर भरा हुआ था। इन प्रभावों में अपनी २ नीचताओं को देखकर कितने हि आत्मा फूट पड़े, और उन्हों ने अपनी विनाशकारी और विष-उत्पादक अवस्था से उद्धार पाने के लिए बहुत व्याकुलता के साथ रो २ कर प्रार्थनाएं कीं। इसके बाद पूजनीय भगवान् ने अपना शुभ आशीर्वाद दान दिया। फिर उद्भिद्-जगत् के सम्बन्ध में भगवान् देवात्मा का रचा हुआ एक अति हितकर संगीत गाया गया, कि जो इस प्रकार आरम्भ होता है :—

"उद्भिद् जगत् के संग हमारा, है सम्बन्ध बहुत हि गाढ़ा;
जितना उच्च बोध हो उसका, उतना बने वह हितकर प्यारा।"

फिर सत्य वाक्य का उच्चारण किया गया, जिस के बाद भगवान् देवात्मा ने (कि जिन का हृदय इस जगत् के सम्बन्ध में उच्च भावों से भरकर उछल रहा था) कुछ देर तक अपने सेवकों को उनके दायित्व के सम्बन्ध में उपदेश दिया। इसके अनन्तर साधकों ने कुछ नक़दी का दान किया, कि जिस में से एक भाग के फल खरीद कर ग़रीबों को दान में दिए गए, और एक भाग देव धर्म्म प्रचार कोष में जमा किया गया। इस के भिन्न भगवान् देवात्मा ने पहले वर्षों की न्याईं इस दफ़ा भी फलों और फूलों की टोकरियां यहां के कई भद्र जनों को

उपहार के तौर पर भेजीं।

सायं काल आठ बजे एक और सभा इसी व्रत के सम्बन्ध में की गई। यह सभा देव धर्म्म प्रचार हाल में की गई थी। और उस के परिचालक श्रीमान् पण्डित हरनारायण अग्निहोत्री जी थे। पहले श्रीमान् परमेश्वर-दत्त जी ने उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में पूजनीय भगवान् के कुछ लेखों का पाठ किया, कि जो उन्हों ने इन्हीं उद्भिद् यज्ञ के दिनों में लिखे थे। यह लेख बहुत हि हितकर थे, और उन से भगवान् देवात्मा के भीतर इस जगत् के सम्बन्ध में जो उच्च गति मूलक अद्वितीय अनुराग वर्तमान है, उसका उज्जवल रूप में परिचय मिलता था, और उसे सुनकर श्रोता गणों के भीतर भी यह उमंग उत्पन्न होती थी, कि किसी प्रकार हम भी अपने भीतर यह हितकर अनुराग लाभ करें। इन लेखों के पाठ के बाद उपस्थित जनों ने आगामी वर्ष में इस जगत् की सेवा के सम्बन्ध में बहुत से साधन ग्रहण किए। फिर उद्भिद् यज्ञ के दिनों में देवाश्रम वासी जो २ सेवक सेविका गण इस जगत् के सम्बन्ध में औरों की अपेक्षा कुछ बढ़कर सेवा का साधन करते रहे थे, उन्हें पूजनीय भगवान् की आज्ञानुसार पुष्पहार दिए गए। इस के बाद जो कर्म्मचारी अपनी समस्त शक्तियां देव समाज की सेवा में खर्च करते हैं, उन्हें भगवान् देवात्मा की

ओर से नव वर्ष की खुशी में कपड़े, मिठाई, फल और मेवे आदि की किस्म की वस्तुएं दी गईं। जिस के बाद महा वाक्य का उच्चारण करके यह दूसरी सभा भी समाप्त की गई।

आहा! आज का सारा दिन हि पूजनीय भगवान् के शुभाशीर्वाद और उनके बहुत बड़े परिश्रम से (कि जिस से उन की स्वास्थ्य को भी बहुत हानि पहुंची) क्या देवाश्रम वासियों और क्या बाहर से आए हुए जनों के लिए जिस क़दर कल्याणकारी प्रमाणित हुआ, उसका वर्णन नहीं हो सकता। भगवान् देवात्मा धन्य हैं, कि जो अपने ऊपर नाना प्रकार के दुख उठाकर भी अपने सेवकों और सेवकाओं की नाना प्रकार का हित साधन करते हैं। ऐसा हो, कि हम लोग उनके परम हितकर रूप को अधिक से अधिक पहचानें, और उन्हें अपने ऊपर अधिकार देकर अपने भीतर उनके हितकर प्रभावों लाभ करें, और उन्हीं को चारों ओर फैलाकर उनकी मंगल इच्छा को अपने जीवन में पूरा करें।

नव वर्ष अर्थात् उद्धिदु व्रत के अवसर पर पूजनीय भगवान् का उपदेश।

(जीवन पथ, ज्येष्ठ १९६५ वि०)

आज का दिन हमारे नए साल का प्रथम दिन है। आज के दिन से हम अपने नए साल अर्थात् १९६५ वि०

में प्रवेश करते हैं। नव वर्ष का यह पहला दिन हम सब के लिए आज विशेष दिन है। मनुष्यों के समूह में और बातों के भिन्न प्रत्येक साधारण त्योहार भी उनके भीतर जातीय भाव के उत्पन्न और रक्षा करने में सहायकारी होता है। इसलिए आज के नव वर्ष का त्योहार हमारे हिन्दू जनों में जहां २ तक मनाया जा रहा है, वहां तक हम उसके द्वारा मानो एक प्रकार के सम्बन्ध सूत्र से बंधे हुए हैं। इस साधारण बन्धन सूत्र के भिन्न आज का यह दिन देव समाज में उद्भिद् जगत् सम्बन्धी व्रत होने के कारण भी अपनी विशेषता रखता है, और इसलिए हम आज के इस दिन को क्या जातीय त्योहार होने के विचार से और क्या उस से भी बढ़कर उद्भिद् अथवा पुष्प पत्र व्रत होने के विचार से विशेष आदर की दृष्टि से देखते हैं। जातीय त्योहार होने के कारण जहां तक आज के इस दिन में हर्ष मनाना हमारे लिए वांछनीय हो सकता है, उस से भी बढ़कर यदि हम ने उद्भिद् यज्ञ के साधनों के द्वारा कुछ सच्चा हित लाभ किया हो, तो उसके विचार से और भी यह दिन हमारे लिए हर्ष मनाने का दिन हो जाता है। अतएव तुम इस समय मेरे पास आकर आज के दिन के सम्बन्ध में जातीय त्योहार के भाव के भिन्न उद्भिद् यज्ञ के सम्बन्ध में आज जो व्रत है, उसके लक्ष्य पर विचार करो। इस यज्ञ

के साधन के निमित्त तुम में जिन उच्च भावों के वर्तमान होने की आवश्यकता है, वह सब या उन में से जो कोई तुम में उत्पन्न हुआ हो, और उस उच्च भाव के उन्नत होने के निमित्त तुम ने इस यज्ञ के सम्बन्ध में एक या दूसरे प्रकार का जो २ साधन किया हो, तुम उस के कल्याण को सन्मुख लाकर निश्चय अपने आप को धन्य २ अनुभव कर सकते हो, और जिस जगत् के द्वारा तुम्हारा यह हित हुआ है, और लगातार प्रति दिन होता रहा है, उसे भी धन्य २ कह सकते हो; और तुम्हारे आत्मा के कल्याण के लिए जिस ने इस यज्ञ और व्रत को स्थापन किया है, उसे भी अपने परम हितकर्ता रूप में उपलब्ध करके अवश्य धन्य २ कह सकते हो।

उद्भिद् जगत् के साथ हमारा जितना गाढ़ सम्बन्ध है, उसका हम उसके प्रति दिन के उपकारों को सन्मुख लाकर अनुमान कर सकते हैं। हमारे आत्मा का यह जीवन्त खोल या शरीर जिस में वह वास करता है, बिना उद्भिद् जगत् के एक दिन भी सबल और सतेज नहीं रह सकता। उद्भिद् जगत् हमें प्रति दिन आहार की सामग्री देता है। गेहूं या जौ या मक्‍की या बाजरे या किसी और अनाज की रोटी हमें इसी उद्भिद् जगत् से मिलती है। रोटी के साथ खाने के लिए हमारी सब प्रकार की दालें इसी जगत से; भाजियां इसी से; मसाले इसी से; खाने के

योग्य नाना प्रकार के फल इसी से; नाना प्रकार के सुन्दर वा सुगंधी देने वाले फूल जो हमारी सजावट के लिए या हमें सुगंधी देने में काम आते हैं, वह सब इसी से; जिस गुड़ या चीनी को मिलाकर हम हलवा, पूड़े, गुलगुले और चिलड़े बनाते हैं और नाना प्रकार की अन्य मिठाइयां तैयार करते हैं, वह सब गुड़ वा चीनी हमें इसी जगत् से प्राप्त होती हैं। कई प्रकार के इतर और फुलेल और जलाने और अन्य काम में लाने के लिए विविध तेल हमें इसी जगत् से मिलते हैं। हमारे पहनने के लिए नाना प्रकार के जिन वस्त्रों की आवश्यकता है, और पहनने के भिन्न ओढ़ने, बिछाने और अन्य विविध प्रकार की चीज़ें इसी उद्भिद् जगत से मिलती हैं। हमारे मकानों में चौखटें, दरवाज़े, खिड़कियां और छतों आदि के भिन्न, हमारी मेज़ों, हमारे सन्दूकों, हमारी चौकियों आदि नाना प्रकार के असबाब के लिए जिस काष्ट की आवश्यकता है, वह काष्ट या काठ इसी जगत् से प्राप्त होता है। और केवल यही नहीं, कि हमारी शारीरिक पालना और उसकी रक्षा के लिए यह जगत् आवश्यक है, किन्तु इस से बढ़कर हमारे दुख और क्लेश के समय में भी, विशेषतः शारीरिक रोग और पीड़ा के समय में यह जगत् हमें औषधियां देकर जिस क़दर हमारा हित साधन करता है, वह उसका और भी बड़ा दान है। इस तौर

पर हम देखते हैं, कि हमारे अस्तित्व के सम्बन्ध में उद्भिद् जगत् के हित का दायरा दूर २ तक फैला हुआ है। तब यह उद्भिद् जगत् जो हमें प्रति दिन आहार देता है, वस्त्र देता है, फूल देता है, फल देता है, मीठा देता है, काष्ट देता है, औषधियां देता है, और इन सब के भिन्न और भी कई प्रकार से हित साधन करता है, उनको हम अपने सन्मुख लाएं और सोचें, कि इसका जो विभाग हमारे लिए इतना हितकर्ता, इतना उपकारी, जिस के हित वा उपकार के बिना हम अपना निर्वाह हि नहीं कर सकते, उस के साथ हम अपने आत्मा में किस २ प्रकार का सम्बन्ध अनुभव करते हैं। क्या हमारे हृदय में कोई ऐसे उच्च भाव जाग्रत हुए हैं, कि जो हमारे आत्मा को इस जगत् के इस विभाग के सम्बन्ध में एक वा दूसरे प्रकार से सेवाकारी बनने के लिए प्रेरणा करते हों? क्या हम में हित परिशोध का कोई भाव मौजूद है? क्या हम ने हित परिशोध वा कृतज्ञ भाव के जाग्रत या उन्नत करने के लिए किसी साधन की कोई आवश्यकता समझी है? क्या हम ने इस प्रकार के कुछ साधन किए हैं? क्या किसी हितकारी के हितरूप को सन्मुख लाने की योग्यता हम में वर्तमान है? क्या अपने किसी हितकारी के हितरूप को सन्मुख लाकर हम अपने भीतर उसके सौन्दर्य्य को देखते वा अनुभव करते हैं?

क्या हमारे किसी हितकर्ता का हितरूप हमारे सन्मुख अपने सौन्दर्य्य का प्रकाश करता है? क्या हमें किसी ऐसे सौन्दर्य्य के देखने के लिए जिस उच्च बोध की आवश्यकता है, वह हम में वर्तमान है? क्या हम अपने किसी हितकारी के हितरूप के सौन्दर्य्य को देखकर उसके प्रति आकृष्ट होते हैं? और उसकी ओर आकृष्ट होकर और उसके साथ योग करके अपने भीतर उच्च रस लाभ करने के भिन्न खुद उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार सेवाकारी बनने की प्रेरणा या आकांक्षा अनुभव करते हैं? याद रक्खो, कि जिन मनुष्यों में बाहर के एक या दूसरे सुन्दर आकार के देखने और पहचानने का बोध पैदा हो गया है, वह एक २ सुन्दर वस्तु और एक २ सुन्दर प्राकृतिक दृश्य अथवा सुन्दर पौदे और फूल को देखकर अपने भीतर एक प्रकार का रस ज़रूर लाभ करते हैं, परन्तु क्या यह सच नहीं, कि ऐसे जनों में करोड़ों जन किसी सुन्दर आकार को देखकर केवल अपनी तृप्ति और अपना सुख अवश्य ढूंढते हैं, परन्तु जो आकार उनके लिए इस प्रकार सुखकर और प्रीतिकर और तृप्तिकर प्रमाणित होता है, उसके बनने या बिगड़ने, उसके भले या बुरे से कोई वास्ता नहीं रखते और वह पूर्णतः स्वार्थ परायण होते हैं?

याद रक्खो, कि जब तक किसी और अस्तित्व के

सम्बन्ध में विशेषता अपने हितकर्ता अस्तित्व के सम्बन्ध में हमारे हृदय में आप सेवाकारी बनने का कोई भाव उत्पन्न न हो, तब तक आत्मा में किसी उच्च गति दायक अंग का विकास नहीं होता। इसलिए अपने आत्मा में उच्च गति-दायक अंगों के उत्पन्न करने अथवा प्रकृत धर्म जगत् में प्रवेश करने के लिए यह आवश्यक है, कि हमारे भीतर वह उच्च भाव जाग्रत और उन्नत हो, कि जो औरों के सम्बन्ध में, हां प्रत्येक जगत् के सम्बन्ध में, और प्रत्येक जगत् में भी उस के हितकारी विभाग के सम्बन्ध में विशेष रूप से हमें सेवाकारी बना सके। किसी हितकर्ता के हितरूप के सौन्दर्य्य के देखने और उसके प्रति आकृष्ट होने और उसे देखकर अपने हृदय की तृप्ति साधन करने के भिन्न, हमें सब से बढ़कर जिस प्रकार के अंगों के उत्पन्न करने की आवश्यकता है, वह वह अंग हैं, कि जिन के द्वारा परिचालित होकर हम खुद भी निष्काम भाव से उनके लिए सेवाकारी बनते हैं, और बन सकते हैं। विचार करके देखो, कि उद्भिद् जगत् के जिस हितकारी विभाग ने तुम्हारा नाना प्रकार से प्रति दिन हित साधन किया है, प्रति दिन तुम्हारी नाना प्रकार से सेवा की है, उसके सम्बन्ध में सेवाकारी बनने के लिए कहां तक तुम्हारे भीतर कोई उच्च आकांक्षा पैदा हुई है? कहां तक तुम अपने किसी हितकारी

सम्बन्धी के हितों की छवि को सन्मुख लाने और उसके सौन्दर्य्य को देखने के योग्य हुए हो ? कहां तक तुम इस सौन्दर्य्य के द्वारा आकृष्ट होकर नाना पुष्पधारी और अन्य वृक्षों और पौदों के पास पहुंचने और उनकी निकटता ढूंढने के अभिलाषी बने हो ? कहां तक तुम्हें ऐसे वृक्षों के पास जाना, उनके पास खड़े होना, उनके सौन्दर्य्य को देखना सुख दायक प्रतीत होता है ? और कहां तक तुम्हारे हृदय में उनकी कोई दुखदाई अवस्था किसी प्रकार का क्लेश उत्पन्न करती है ? कहां तक वह तुम्हें अपना समझ सकते हैं ? कहां तक यदि यह मुरझाए हुए हों, सूख रहे हों, अपने जीवन को खो रहे हों, तो तुम उन के इस प्रकार के आकार को देखकर उनके लिए सहानुभूति वा हमदर्दी अनुभव करते हो ? क्या इस प्रकार की सहानुभूति का उच्च भाव तुम में वर्तमान है ? अगर तुम उनकी सुन्दर अवस्था से सुख अनुभव करते हो, तो क्या उनकी ख़राब वा अधोगति की हालत से कभी कुछ दुख भी मालूम करते हो ? क्या दिन में इधर उधर चलते फिरते ऐसा नहीं होता, कि तुम्हारे इस जगत् के कितने हि हितकर सम्बन्धी तुम्हारे अपने आश्रम या वास स्थान में अथवा कहीं और एक वा दूसरी प्रकार की हानि उठा रहे हैं, मुरझा रहे हैं, परन्तु उन तक तुम्हारी निगाह नहीं पहुंचती; अर्थात्

अनेक बार या तो तुम्हें उनकी यह बुरी अवस्था दिखाई हि नहीं देती, या कई बार जब दिखाई भी देती है, तो तुम्हारे भीतर उनके प्रति कोई सहानुभूति उत्पन्न नहीं होती, और ऐसी किसी सहानुभूति से प्रेरित होकर तुम उनके सम्बन्ध में अपने हालात के विचार से जहां तक सहाय वा सेवाकारी हो सकते हो, वहां तक अपने आप तुम उनके लिए सेवाकारी नहीं होते, और नहीं होना चाहते ? इस प्रकार के कठोर हृदयों में धर्म्म विषयक विविध उच्च अंग क्योंकर पैदा हो सकते हैं ? जो अपने उपकारी के लिए हि सेवाकारी बनना नहीं चाहता, वह किसी और के लिए कहां सेवाकारी हो सकता है ? इस लिए आज इस विशेष व्रत के दिन उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में तुम अपने २ आत्मा की असल अवस्था पर विचार करो। कहां तक तुम्हारा उस के साथ कोई जीवन्त सम्बन्ध स्थापन हुआ है, अर्थात् कहां तक उच्च गति दायक सूत्रों को लेकर कोई सम्बन्ध पैदा हुआ है ? और कहां तक ऐसे सूत्रों से परिचालित होकर तुम ने ऐसे महा हितकारी जगत् के सम्बन्ध में उसकी एक या दूसरे प्रकार से कोई निष्काम सेवा की है ? उस पर चिन्तन करो, और यह स्मरण रक्खो, कि इस या किसी और यज्ञ के सम्बन्ध में जहां तक कोई आत्मा एक ओर उच्च गति दायक जीवन ग्रहण करने के योग्य होता है, और

दूसरी ओर अपनी उदासीनता, अपने किसी पाप वा अपराध को देखने, उसके प्रति घृणा और दुख अनुभव और उसके विकार को दूर करने के योग्य बनता है, वहीं तक वह किसी ऐसे यज्ञ और व्रत के साधनों को अपने लिए सुफल करता है। मेरी यह एकान्त आकांक्षा है, कि ऐसे अधिकारी आत्मा पैदा हों, कि जो अपने आत्मा की गठन, उसके बनने और बिगड़ने, वा उसके विकास और विनाश के सम्बन्ध में सच्चे बोधों के उत्पन्न करने के लिए ऐसे बोध उत्पन्न और विकसित कर्ता मूल सम्बन्धी को पहचानें और उसके साथ अनुराग सूत्र में बन्धकर उन सब आत्मिक उच्च अंगों को धीरे २ अपने भीतर से विकसित करने के योग्य हों, कि जिन के विकसित होने से नेचर के प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में मनुष्यात्मा विनाश से रक्षा वा मोक्ष और विकास वा धर्म्म जीवन के लाभ करने के योग्य हो सकता है।

उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में भाव प्रकाश।

हे उद्भिद् जगत्! तेरे अहित कर विभाग को छोड़कर तेरे हितकर विभाग को जब हम अपने सन्मुख लाते हैं, और तेरे साथ हमारा जो प्रति दिन का गाढ़ सम्बन्ध है, उस पर विचार करना आरम्भ करते हैं, तब यदि हम में ऐसी योग्यता वर्तमान हो, कि जिस से हम तेरे नाना अंगों के हितकर रूप में जो सौन्दर्य्य है उसे उपलब्ध कर सकें,

और उसे देखकर तेरे प्रति न केवल आकृष्ट हो सकें, किन्तु तेरे ऋण से अपने आप को ऋणी अनुभव कर सकें, और तेरे नाना प्रकार के दैनिक उपकारों के बोझ से अपने आप को लदा हुआ अनुभव कर सकें, और तुझ से विविध प्रकार की सेवाएं पाकर तेरे प्रति उदासीनता के साथ देखने की बजाए, तेरे लिए एक वा दूसरे प्रकार से सेवाकारी बनने के लिए हम अपने भीतर आकांक्षा और प्रेरणा अनुभव कर सकें, और तेरे प्रति सहानुभूति विहीन और उदासीन दृष्टि से देखने की बजाए तेरे प्रति सहानुभूति और कृतज्ञ भाव की धर्म्म दृष्टि से देख सकें, तो हम इस पृथिवी में तेरे साथ रहकर तेरे साथ वह उच्च सम्बन्ध स्थापन करते हैं, कि जिस से एक ओर जहां हमारे आत्माओं की तेरे सम्बन्ध मे नीच गति और स्वार्थ परता दूर होती है, वहां हम अपने भीतर नए उच्च अंग उत्पन्न करके जैसे एक ओर तेरे लिए सेवाकारी होते हैं, और ऋण परिशोध करते हैं, और तेरे लिए कल्याणकारी सम्बन्धी और तेरे लिए बरकत की चीज़ बन जाते हैं, वहां दूसरी ओर अपने आत्मा का भी उच्च विकास साधन करते हैं, और नेचर के हम सब एक २ अंश वा अंग होकर एक गठनप्राप्त शरीर के अंगों की न्याईं एक दूसरे के लिए सेवाकारी और सहायकारी बन जाते हैं। ऐसे उच्च सम्बन्ध

सूत्रों से जुड़कर तू हमारा बन जाता है, जैसा तू हमारा सचमुच का और है; और हम भी तेरे सेवाकारी होकर तेरे हो जाते हैं। हां, तेरे लिए सहानुभूति अनुभव करके और तेरे लिए सेवाकारी बन कर हि हम तेरे हो सकते हैं। और तेरे होकर हि हम तेरे साथ अपने धर्म्म गत सम्बन्ध का प्रमाण दे सकते हैं। हाय! तू हमारा हो, और हम अपनी ओर से तेरे न हों! तू हमारे लिए प्रति दिन सेवाकारी हो, और हम तेरी ओर से उदासीन रहें! तू बनता हो चाहे बिगड़ता हो, पर हमें तेरी परवाह न हो! ओह! हमारी कैसी नीच और शोकप्रद अवस्था! हे उद्भिद् जगत् के हित-कर विभाग! मैं तेरे बाहर और भीतर के सौन्दर्य्य को देखने के योग्य बनूं! मैं तेरी ओर आकृष्ट हूं। मैं तुझे सहानुभूति और कृतज्ञ भाव की शुभ दृष्टि से देखूं! मैं तेरा सच्चा साथी और सेवक बनूं! जैसे तू अब तक मेरा रहा है, और आइंदा भी मेरा रहना चाहता है, वैसे हि मैं भी अपनी ओर से तेरा बनूं और तेरा रहूं! मैं अपने प्रति दिन के साधन में, निज के एकान्त साधन में तुझे स्मरण करूं, और मेरे हृदय के भीतर से तेरे प्रति इस प्रकार की शुभ कामना उत्पन्न हो, कि मेरी आज तक जिस २ पौदे ने अपने अनाज के द्वारा पालना की है; जिस २ पौदे ने अपनी रूई आदि के द्वारा मुझे

वस्त्र पहुंचाए हैं, जिस २ पौंदे ने मसाला देकर, फल देकर मेरा हित किया है, जिस २ पौदे ने फूल देकर, अपना सौन्दर्य्य दिखाकर मेरा सुख वा हित सम्पादन किया है, जिस २ पौदे ने तेल देकर, इतर देकर मेरा कल्याण किया है, जिस २ पौद ने एक या दूसरे प्रकार का मीठा देकर मेरे एक वा दूसरे आहार को रसदायक बनाया है; जिस २ पौद ने मुझे अपने विविध प्रकार के सूत्र देकर मुझे नाना प्रकार की मुफ़ीद चीज़ें प्रदान की हैं, जिस २ पौद ने मेरे घर के लिए, मेरे लिखने के लिए, मेरे पढ़ने के लिए, बैठने के लिए, सोने के लिए एक वा दूसरे प्रकार की चीज़ दी है; जिस २ पौदे ने एक २ समय में अपनी छाया के नीचे मेरी धूप और वृष्टि से रक्षा की है; जिस २ पौद ने औषधि आदि देकर मेरी एक वा दूसरी शारीरिक पीड़ा में मेरी सहाय की है; हां जिस २ पौदे ने कभी और किसी प्रकार से भी मेरी कोई सेवा की है; उन सब का शुभ हो, उनका हित हो; वह जहां कहीं हों, वहां तक मेरी मंगल जनक शक्ति पहुंच कर उसके एक वा दूसरे प्रकार के शुभ साधन में सहाय हो ! इस शुभ कामना के भिन्न जहां तक सम्भव हो, मैं एक वा दूसरे रूप में उनके लिए एक वा दूसरे प्रकार से सेवाकारी और सहायकारी बन सकूं । ऐसा हो कि आज से जिस नए वर्ष का आरम्भ होता है, वह दिन

उद्भिद् जगत के सम्बन्ध में मेरे लिए भी नए उत्साह के आरम्भ का दिन हो। मैं उसके साथ अपना धर्म्मगत सम्बन्ध स्थापन करने के लिए अपने प्रत्येक दिन के एकान्त साधनों में उस के लिए शुभ कामनाएं कर सकूं। हितकारी उद्भिद् जगत्! तेरा सब प्रकार से शुभ हो। तेरे साथ अपने सम्बन्ध को पहचान कर जो जन तेरे प्रति प्यार वा सेवा का भाव अनुभव करते हैं, उनका भी शुभ हो। उनका भी हित हो।

पर्वताश्रम में पुष्पपत्र व्रत के अवसर पर परम पूजनीय भगवान् देवात्मा के उपदेश का सारांश।

प्रथम वैशाख सम्वत १९६६ वि०

[जीवन पथ ज्येष्ठ १९६६ वि०]

उद्भिद् जगत् के साथ हमारा बहुत गाढ़ सम्बन्ध है—इतना गाढ़ कि इसके बिना हमारा शरीर जीवित नहीं रह सकता। हमारे भिन्न पशु जगत् का भी इसके साथ ऐसा हि सम्बन्ध है, यहां तक कि जो मांस खाने वाले पशु हैं, वह भी इसके बिना नहीं जी सकते, क्योंकि वह जिन पशुओं का मांस खाते हैं, वह उद्भिद् जगत् की वस्तुओं को खाकर हि जीते हैं। अब यदि उद्भिद् जगत् न हो, तो न पशु जगत् रह सकता है, और न मनुष्य जगत्। यह दोनों हि जगत् लुप्त हो जाते हैं। अब सोचो कि उद्भिद् जगत् के साथ हमारा कितना गहरा

सम्बन्ध है !! उद्भिद् जगत् जैसे इस दुनिया के विकास में पशु जगत् का आहार बनकर सेवाकारी प्रमाणित हुआ है, वैसे हि पशु जगत् से मनुष्य जगत के विकास के बाद हमारी रक्षा और पालना करके सेवाकारी बन रहा हैं। यह उद्भिद् जगत् हमारी नाना प्रकार की आवेश्यकताओं को निवारण करता है—उसकी बदौलत हमें रोटी मिलती है, दाल मिलती है, भाजी मिलती है, मसाले मिलते हैं, मीठा मिलता है, वस्त्र मिलते हैं, नाना प्रकार के फल और फूल मिलते हैं, कई प्रकार के तेल और अतर मिलते हैं, भांत २ की लकड़ी मिलती है। और इस के भिन्न वह हमारी और नाना प्रकार की ज़रूरतों को पूरा करता है। उद्भिद् जगत् केवल हमारी सेहत में हि हमारा साथी नहीं, किन्तु हमारी एक २ बीमारी में भी अपनी नाना प्रकार की औषधियों के द्वारा हमारा कल्याण करता है।

उद्भिद् जगत् हमारी नाना प्रकार से रक्षा और पालना के भिन्न अपने भीतर जो और विशेषता रखता है, वह उसके कई प्रकार के वृक्षों, लताओं, पुष्पों और पत्तों का मनोहर सौन्दर्य्य है। जिस प्रकार मनुष्य जगत में कितने हि सुन्दर स्त्री पुरुष परस्पर को देखकर और किसी अनुचित वासना से उत्तेजित होकर नर नारी विषयक पवित्र सम्बन्ध को हानि पहुंचाते हैं, उस प्रकार

उद्भिद् जगत् के सुन्दर पुष्प वा वृक्ष, वा लता आदि किसी को हानि नहीं पहुंचाते; किन्तु अपने दर्शकों पर अपनी ओर से अच्छे प्रभाव डालते हैं। उद्भिद् जगत् के कितने हि पौदे वर्ण २ के फूलों और पत्तों के विचार से जिस पवित्र सौन्दर्य्य का प्रकाश करते हैं, उसकी ओर जिन के हृदय आकृष्ट होने की योग्यता रखते हैं, वह उन्हें बहुत प्यार और आदर की दृष्टि से देखते हैं, और उनकी विशुद्ध सेवा करके शुभ लाभ करते हैं। इस नेचर में जो जीवन्त अस्तित्व औरों के प्रति जितना निष्काम रूप से अधिक सेवाकारी और जितना कम हानिकारक हो, वह उतना हि उच्च जीवन रखता है। इसी लिए उद्भिद् जगत् का एक सुन्दर और हितकर वृक्ष अन्य हानिकारक वृक्षों और पशुओं और मनुष्यों की तुलना में बहुत श्रेष्ठ जीवन रखता है।

अब प्रश्न यह है, कि उद्भिद् जगत् का जो भाग हमारा इतना उपकारी है, जिस का हमारी रग २ में वास है, जिस का हमारे शरीर की रक्षा और पालना में इतना बड़ा हाथ है, वह अपने इस हित स्वरूप के द्वारा तुम्हारे हृदयों को कुछ आकृष्ट भी करता है या नहीं? यदि नहीं करता, तो सोचो कि तुम्हारे हृदयों की अवस्था कैसी है। वह आत्मा निश्चय बहुत नीच है, कि जो अपने उपकारियों के उपकारों की मनोहर छवि को देखने

के लिए कोई बोध शक्ति नहीं रखता और उसकी ओर आकृष्ट नहीं हो सकता। यदि किसी हितकारी का हित रूप सुन्दर हो, तो फिर स्वार्थ परायण जनों का हृदय जैसा कुछ कुत्सित और कृपापात्र हो सकता है, उसका अनुमान किया जा सकता है। जब तुम किसी उपकारी के उपकारों की सुन्दर छवि को देख हि नहीं सकते, तब तुम खुद उपकारी कैसे बन सकते हो? जो जन चक्षु विहीन होकर किसी सुन्दर चहरे को देख हि नहीं सकता, वह उसका सुन्दर चित्र क्योंकर अंकित कर सकता है? पूर्ण हित स्वरूप के परम सौन्दर्य्य को जो जन देख नहीं सकता और इसीलिए उसके प्रति आकृष्ट होकर उसका अनुरागी नहीं बन सकता, वह अपने अंकित रूप अथवा नीच जीवन से मोक्ष और धर्म्म जीवन में विकास की आशा क्योंकर कर सकता है? नहीं कर सकता। ऐसे जन अवश्य मिलते हैं, जो दया वा उपकार विषयक कोई सात्विक भाव रखते हैं, और किसी ऐसे भाव से परिचालित होकर औरों की एक वा दूसरी सहाय वा सेवा भी करते हैं। परन्तु प्रकृत हित और अहित के विषय में उनके भीतर वह विवेक और वह बोध नहीं होता, कि जिस से वह किसी और के प्रति कोई पाप न करें। जहां दया या उपकार का भाव कभी २ उन से कुछ शुभ कार्य्य करा लेता है, वहां उनके हृदय की और नाना

नीच शक्तियां उन्हें नाना पाप कार्यों की ओर ले जाती हैं, और वह कुछ उपकारी बनकर भी अन्य नीच गतियों के कारण दिनों दिन विनाश को प्राप्त होते रहते हैं। अतएव जब तक किसी आत्मा में हित विषयक पूर्णाङ्ग अनुराग और अहित विषयक पूर्णाङ्ग घृणा जाग्रत न हो, तब तक वह अपनी नाना गतियों में सदा शुभ का साथी नहीं बनता, और नाना प्रकार के पापों से विरत नहीं हो सकता। आत्मा में हित अनुराग के साथ २ सत्य अनुराग के उत्पन्न होने की भी आवश्यकता है, और इसके विरुद्ध असत्य से घृणा पैदा होने की ज़रूरत है। 'मैं हूं', जैसा यह सत्य है, वैसे हि मेरे भिन्न नेचर के और नाना जगत् हैं, यह भी सत्य है। मैं उन जगतों के साथ जुड़ा हुआ हूं, यह भी सत्य है। उनके साथ जुड़कर मेरे बनने और बिगड़ने के कुछ अटल नियम हैं, यह भी सत्य है। अब यदि यह सब अटल सत्य मुझे दिखाई न दें, तो फिर मेरे जीवन का पथ शुभ पर क्योंकर प्रगट हो सकता है? इस पृथिवी में बाहर से ईश्वर और धर्म्म की बहुत बड़ी पुकार है। परन्तु भीतर से करोड़ों मनुष्यों के हृदय असत्य और अहित के अनुरागों से पूर्ण हैं। और वह मुंह से सत्य २ कहकर भी अपने जीवन के विनाश और विकास सम्बन्धी किसी प्रकृत सत्य वा तत्व को नहीं देखते—उनके हृदय उस ज्योति

से विहीन हैं, कि जिस के प्राप्त होने पर यह सब सत्य अपने असल रूप में दिखाई दे सकते हैं। ऐसे जनों की कैसी भयानक अवस्था! ऐसे जनों का कितना बड़ा दुर्भाग्य!!

आज के इस विशेष दिन में तुम्हें दृश्यद् जगत् के साथ अपने सम्बन्ध की अवस्था पर विचार करने के भिन्न इस सत्य को भी भली भांत अपने सन्मुख लाने की चेष्टा करनी चाहिए, कि यदि देवात्मा का इस देश में आविर्भाव न होता, तो जीवन विषयक इन महा मूल्यवान तत्वों की तुम्हें क्योंकर शिक्षा मिलती? निश्चय न मिलती। इसलिए इस पृथिवी में देवात्मा का आविर्भाव तुम्हारे लिए विकासकारी नेचर का कितना अमूल्य और कितना महान् दान है! ऐसा हो, कि तुम अपने जीवन दाता सत्य देव की अपूर्व ज्योति को पा सको और उस में अपने जीवन के सम्बन्ध में एक २ महा मूल्यवान सत्य को देख और पहचान सको। सत्य देव के देव जीवन में असत्य और अहित सम्बन्धी घृणा शक्तियों और सत्य और हित सम्बन्धी अनुराग शक्तियों के देव प्रभावों का जो अत्यन्त क़ीमती ख़ज़ाना विद्यमान है, उस में से यदि तुम उनके सेवक कहलाकर कुछ अपने जीवन के लिए लाभ न कर सको, तो तुम्हारा कितना बड़ा दुर्भाग्य!! ज़रूरत है कि उपरोक्त सर्वोच्च, सर्व श्रेष्ट और परम

कल्याणकारी शक्तियों के लाभ के निमित्त तुम्हारे प्रभावों के भीतर उनके प्रति सात्विक श्रद्धा और उससे ऊपर सात्विक प्रेम की उत्पत्ति हो। उसके प्रति तुम्हारे हृदय में सच्चा प्रेम जाग्रत हो। उनका परम सुन्दर और परम कल्याणकारी देवरूप तुम्हारे हृदय को आकृष्ट करे। तुम उनकी ज्योति लाभ करो। तुम उनकी ज्योति में अपने २ आत्मा की अवस्था को पहचान सको। और अपनी नाना नीच गतियों को पहचान कर उन से मोक्ष के सच्चे अभिलाषी बन सको। याद रक्खो कि तुम उनकी रौशनी और उन के देव तेज को पाकर हि और जगतों के साथ अपने सम्बन्ध को विकार रहित और कल्याणकारी बनाने के योग्य बन सकते हो, और किसी जगत् के अस्तित्वों का उपकारी रूप तुम्हारे हृदय को मोहित कर सकता है। हम अनेक बार देखते हैं, हमारे आश्रम में एक २ पौदा मुरझा रहा है, अथवा कोई और हानि पा रहा है; परन्तु हमारे कितने हि सेवकों को जो उसके पास से गुज़रते हों, उसकी यह कृपापात्र और शोचनीय अवस्था दिखाई नहीं देती। और वह उसकी रक्षा के लिए कोई हाथ पांव नहीं हिलाते। क्यों? इसलिए कि हृदय की जिन आंखों से उसकी कोई हानि दिखाई दे सकती है, वह आंखें उन में मौजूद नहीं। फिर इस से आगे हैं जिन्हें उसकी कोई कृपा पात्र अवस्था दिखाई भी

देती है, उन में भी ऐसे जन होते हैं, कि जो उस के सम्बन्ध में सहानुभव भाव न रखने के कारण, उसके बचाने वा शुभ के लिए कोई प्रेरणा अपने भीतर अनुभव नहीं करते, और इसीलिए उस के भले के लिए कोई यत्न भी नहीं करते। उद्भिद् जगत् के जिन २ पौदों और वृक्षों ने हमारा किसी प्रकार से कुछ भी हित किया है, और अब तक करते वा कर रहे हैं, वह सब हमें अपने उपकारी सम्बन्धी अनुभव होते हैं और इसीलिए हम अपनी मंगल कामनाओं में और सम्बन्धियों के भिन्न उन पौदों और वृक्षों को भी स्मरण करते हैं। हम इस पर्वताश्रम और देवाश्रम के अनेक पौदों को तो विशेष रूप से स्मरण करते हि हैं, परन्तु यह जान कर तुम्हें और भी हैरानी होगी, कि हम अपने जन्म स्थान अर्थात् अकबरपुर में अपने सदर दरवाज़े के आगे जिस बड़ के वृक्ष के नीचे और कभी २ उसकी शाखों पर चढ़कर बाल्यकाल में खेला करते थे, वह वृक्ष भी अनेक बार हमें याद आता है, और हम उसके लिए भी शुभ कामना करते हैं। यद्यपि वह वृक्ष अब वहां नहीं है, तथापि हम उसके साथ अपना सम्बन्ध अनुभव करते हैं। और यदि सौभाग्य वशात: वह वृक्ष हमें दिखाई दे जाए, तो हमारा हृदय उसे देखकर निश्चय उछल पड़े और बहुत गुदाज़ से भर जाए। इसलिए ऐसे

देवात्मा के सेवक बनकर तुम्हारे लिए कितना आवश्यक है, कि तुम भी उद्भिद् जगत् को उसी निगाह से देखो, कि जिस निगाह से मैं देखता हूं। मैंने तुम्हारे लिए "सेवक" का जो नाम चुना है, वह बहुत श्रेष्ठ नाम है। इस नाम की सफलता इसी में है, कि तुम जहां कहीं रहो, नाना जगतों के नाना अस्तित्वों के लिए सेवाकारी प्रमाणित हो। निश्चय विशुद्ध सेवा विषयक साधन बहुत कल्याणकारी है। कल्याणकारी है तुम्हारे आत्मा के लिए, और कल्याणकारी है, उसके लिए कि जिस की तुम सेवा करो। ऐसा हो, कि तुम सत्य देव के सच्चे और उन्नत शील अनुरागी बन सको, और तुम्हें नाना जगतों के सम्बन्ध में जिस २ सत्य के उपलब्ध करने और साधन विषयक जिन २ उच्च भावों के लाभ करने की आवश्यकता है, उन्हें लाभ कर सको, और आज के व्रत के साधन में योग देकर जो कुछ शुभ लाभ कर सकते हो, वह शुभ तुम्हें प्राप्त हो।

उद्भिद् व्रत पर भगवान् देवात्मा का उपदेश।

(सेवक, वैशाख १९९८ वि०)

सभा में वर्तमान कई सेवक सेविकाओं के भाव प्रकाश के अनन्तर स्वयं भगवान् देवात्मा ने पहले पद्मपुराण में से लिखा हुआ वैशाख मास में स्नान और और दान आदि का महात्म्य पाठ करके सुनाया, कि

जिस में यह बताया हुआ था, कि वैशाख के महीने में स्नान और दान करने से मनुष्य के चार प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं, और सब प्रकार के पुण्य प्राप्त होते हैं। उसे पाठ करके पूजनीय भगवान् ने बताया, कि जहां अब भी इस पृथिवी में लाखों ऐसे जन वर्तमान हैं, कि जो ऐसी झूठी कहानियों पर विश्वास करते हैं, और उन्हें सच जानकर सुनते और उनके अनुसार चलते हैं, वहां जिन लोगों के भीतर जीवन विषयक सत्य ज्योति लाभ करके इन झूठी गप्पों की हक़ीक़त के देखने की आंख पैदा हो चुकी है, उनके जैसे धन्य भाग्य हैं। ऐसे जनों को आज के विशेष दिन में यह विचार करना चाहिए, कि जैसे फूलदार पौदे अपने भीतर से फूल प्रसव करके अपने से बहुत ऊपर के जगत् अर्थात् मनुष्य जगत् की नाना प्रकार की सेवा करते हैं, हानि किसी की नहीं करते, केवल सेवा करते हैं। आज के दिन जैसे गेहूं के खेत जो गेहूं के पौदों से भरे हुए दिखाई देते हैं, उन में सब पौदे जैसे अपनी बालों में दाने पका रहे हैं, कि उन दानों को तैयार करके मनुष्य जगत् को उपहार दें, वह उन में से कोई दाना अपने काम में नहीं लाते, केवल दूसरों के लिए तैयार कर रहे हैं, इसी प्रकार तुम लोगों को भी अपने २ जीवन को दूसरों की सेवा के लिए तयार करना चाहिए। तुम लोगों ने जो अपने २

बयान में एक वा दूसरे प्रकार की सेवा करने का भाव प्रकाश किया है, उसे जानकर हमें बहुत खुशी मिली है। और हमारी यह कामना है, कि तुम्हारे यह भाव पूरे हो सकें।

इस सारे बयान से सब शामिल होने वालों को बहुत लाभ हुआ और सब हि धन्य २ होकर उस सभा से उठे।

उद्भिद् व्रत के अवसर पर उपदेश।

(सेवक, श्रावण १९७३ वि०)

(देवालय ३—४—१६)

पहले पूजनीय भगवान् ने अपने जीवन संगीत का यह पद गाया।

"जीवन तत्व की ज्योति फैले,
जीवन बल चहुं दिश वितरन हो ;
अधिकारी जन हों परिवर्तित }
अधिकारी जन उच्च बनें सब } ,
सत्य धरम का बोध उत्पन्न हो।"

फिर साधन से पहले प्रत्येक साधक को अपना २ हृदय जिस प्रकार से तैयार करने की आवश्यकता है, उसके विषय में बयान किया, जिस के अनन्तर उन्हों ने उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में जो उपदेश दिया, उसका निहायत संक्षिप्त वृत्तान्त यह है :—

जो जन जितना जंगली, असभ्य वा अशिष्ट होता है, उतना हि वह कई प्रकार के उच्च बोधों से खाली होता है। जब हम कहते हैं, कि अमुक जन वा अमुक जाति, अमुक जन वा अमुक जाति की अपेक्षा अधिक सुसभ्य है, तब उसका अर्थ यह है, कि उस में उसकी अपेक्षा कई गुण अधिक हैं। साधारणत: अंग्रेज़ों के भीतर सुन्दर पौदों और फूलों के लिए जितना प्यार है, वह हमारे देश वासियों में पाया नहीं जाता। फूलों का सौन्दर्य्य देखने और उन्हें देखकर उनके प्रति आकर्षण अनुभव करने की जो खूबी एक २ यूरोपियन में पाई जाती है और वह इस आकर्षण भाव से उनकी पालना और रक्षा करता है, वह अवस्था हमारे देश वासियों में पाई नहीं जाती। इसी तरह उन में इलमी तहकीक़ात और किसी अच्छे उद्देश में आपस में मिलकर काम करने और एकाकार होने और किसी बड़े काम के सम्बन्ध में काम करने वालों के किसी उचित और आवश्यक गठन में बधने और किसी ऐसी गठन में बंधकर उसके लिए आज्ञाकारी बनने आदि की जो कितनी हि अच्छी खूबियां विकसित हुई हैं, वह हमारे देश वासियों में नहीं हैं। इसीलिए वह हमारी अपेक्षा कई प्रकार के उच्च गुणों के कारण एक श्रेष्ट और सुसभ्य जाति बन गए हैं। वह भारत वासियों की अपेक्षा इसलिए श्रेष्ट

और सुसभ्य नहीं हैं, कि उनकी पोशाक और हमारी पोशाक की बनावट में अन्तर है, वा वह कालर नेकटाइ पहनते हैं और हम नहीं पहनते, किन्तु इसलिए, कि उन में उपरोक्त प्रकार के जो कई गुण वर्तमान हैं, वह भारत वासियों में अब तक नहीं हैं। अभी तक हमारे देश के लोगों में साधारणतः किसी जाति के उच्च गुणों के पहचानने के लिए भी जिस आंख और ज्योति की आवश्यकता है, वह भी विकसित नहीं हुई। फिर इस से ऊपर मनुष्यात्माओं को नीच गति वा विनाश की ओर ले जाने वाली वा उन्हें उच्च और श्रेष्ट बनाने वाली जिन शक्तियों और उनके कार्य्यों की हक़ीक़त के देखने के लिए जिस आंख और ज्योति की आवश्यकता है, उस से तो वह प्रायः पूर्णतः वंचित हैं।

देवात्मा का जीवन व्रत इसी निहायत आवश्यक और अद्वितीय ज्योति के द्वारा क्या सुसभ्य और क्या सब प्रकार के अधिकारी लोगों को ज्योतिर्मान करने के लिए है। यह वह ज्योति है, जिस के मिलने से आत्मा की हक़ीक़त दिखाई देती है और आत्मा के जीवन का लक्ष्य नज़र आता है और उसके बनने और बिगड़ने का पता लगता है। यह अद्वितीय ज्योति जितनी क़ीमती है, उसका उन्हीं लोगों पर कुछ भेद खुला है, कि जिन्हें वह किसी दर्जे में प्राप्त हुई है। वह उस ज्योति में इस

सत्य को अनुभव करते हैं, कि वह नेचर का एक अंश है, अर्थात् वह उसके अगणित अस्तित्वों में से एक है और उन पर नेचर का वह अटल नियम रात दिन काम कर रहा है, कि जिस का नाम परिवर्तन वा तबदीली का अटल नियम है और जिस के अधिकार में रहकर उनके शरीर की न्याईं उनके आत्मा भी हर समय और प्रति मुहूरत बदल रहे हैं, और यदि उनके आत्मा विनाश की ओर लगातार बदलते रहें, तो उनका एक दिन पूर्णतः नष्ट हो जाना एक अवश्यम्भावी बात है। देवात्मा एक २ अधिकारी आत्मा तक अपनी देव शक्तियों के देव प्रभावों को पहुंचाकर उसके भीतर नेचर के चारों जगतों के सम्बन्ध में ऐसी उच्च जाग्रति पैदा करते हैं, कि जिस के पैदा होने से वह

(१) नेचर के किसी एक वा दूसरे जगत् के अस्तित्वों के सम्बन्ध में अपनी २ योग्यता के अनुसार अपनी थोड़ी वा बहुत अनुचित वा हानिकारक चिन्ताओं और क्रियाओं को अनुचित वा हानिकारक रूप में देखता और अनुभव करता है।

(२) अपने भीतर एक वा दूसरी प्रकार के ऐसे उच्च भावों को विकसित करने के योग्य बनता है, कि जिन के द्वारा वह किसी एक वा दूसरे जगत् के सम्बन्ध में एक वा दूसरी सीमा तक सेवाकारी

बनता है।

यह दोनों हि प्रकार के बोध मनुष्य के लिए निहायत ज़रूरी हैं। ऐसे उच्च बोधों से विहीन मनुष्य की आंखों पर चाहे सोने की ऐनक लगी हुई हो, या उसके कपड़े किसी खास फ़ैशन के हों और वह किसी आलीशान मकान में रहता हो, और मोटरकार या फ़िटन पर सवार होता हो, और चाहे वह किसी यूनीवरस्टी की डिगरियां रखता हो, फ़िर भी वह मनुष्य बहुत कृपा पात्र अवस्था में है। नेचर की पुकार यह है, कि यदि तुम्हारे भीतर यह दोनों प्रकार के उच्च बोध उत्पन्न न होंगे और उन से परिचालित होकर तुम अपनी नीच और हानिकारक गतियों से उद्धार लाभ न करोगे, और हितकर ज्ञान और गतियां ग्रहण न कर सकोगे, तो तुम बुरे परिवर्तन के चक्र में पड़कर केवल यही नहीं, कि उच्च न बनोगे, किन्तु उसके उलट गिरते २ और बिगड़ते २ एक दिन पूर्णतः नष्ट हो जाओगे।

निसन्देह तुम ऐसी बेसुधि की अवस्था रख सकते हो, कि जिस में तुम जब अपनी किसी तृप्ति के लिए किसी और की कोई हानि करो, तब तुम उसकी कुछ परवाह न करो और स्वार्थ परायण रहकर किसी के लिए सेवाकारी न बनो, परन्तु नेचर अपने अटल नियम के अनुसार साफ़ २ यह कहती है, कि ऐसी अवस्था

रखकर अवश्य मिट जाएंगे और याद रक्खो, कि जितना कोई जन इस प्रकार के बांधों से वंचित है, उतना हि वह मुरदा है।

देव शास्त्र में सोलह सम्बन्धों में से मनुष्य को प्रत्येक सम्बन्ध में अनुचित हानि से बचाने और हितकर बनाने के लिए जो आदेश हैं, उन में से प्रत्येक सम्बन्ध में सम्बन्ध बोध विषयक आदेश सब से पहले दिए गए हैं, क्योंकि किसी सम्बन्धी के सम्बन्ध से यज्ञ वा व्रत का साधन करने से पहले यह ज़रूरी है, कि उसके साथ हमें अपना सम्बन्ध अनुभव हो। इसलिए उद्भिद् यज्ञ के आदेशों के आरम्भ में हि सम्बन्ध बोध के विषय में यह चार अति हितकर और अति आवश्यक आदेश्य दिए गए हैं :—

"(१) उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद् जगत् के साथ अपने अति घनिष्ट सम्बन्ध को भली भांत अनुभव करे।

(२) उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और उपलब्ध करे, कि किसी जीवित मनुष्य वा पशु की न्याईं उद्भिद् जगत् के पौदे भी एक सीमा तक अपने प्रति किसी के भले वा बुरे आचरण से हित वा हानि लाभ करते हैं।

(३) उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह इस सत्य को जाने और उपलब्ध करे, कि कोई मनुष्य जैसे किसी मनुष्य वा पशु के सम्बन्ध में कोई अनुचित क्रिया करके अपने आत्मिक जीवन की हानि करता है, वैसे हि किसी पौदे वा वृक्ष के सम्बन्ध में भी कोई अनुचित क्रिया करके अपने आत्मिक जीवन की हानि करता है।

(४) उद्भिद् यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है, कि वह उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में अपने आप को प्रत्येक नीच भाव से मुक्त करने और मुक्त रखने और प्रत्येक उच्च भाव के जाग्रत वा उन्नत करने की आवश्यकता को भली भान्त अनुभव करे।"

उद्भिद् जगत् के साथ मनुष्य के सम्बन्ध के विषय में देवात्मा ने अपनी देव ज्योति में उपरोक्त जो सत्य देखे और प्रगट किए हैं, उन से पहले इन सत्यों को किसी और ने नहीं देखा और नहीं प्रगट किया था। तुम उद्भिद् जगत् के साथ अपने निहायत गहरे सम्बन्ध को और उसके सम्बन्ध में अपने आप को प्रत्येक नीच गति से बचाने और उच्च भाव को अपने भीतर जाग्रत और उन्नत करने की आवश्यकता को जिस क़दर अनु-

भव कर सकोगे, उसी क़दर तुम इस जगत् के सम्बन्ध में यज्ञ और व्रत का साधन करने और उस से लाभ उठाने के योग्य हो सकोगे। परन्तु जब तक किसी के भीतर इस जगत् की हानि और सेवा विषयक कोई उच्च बोध जाग्रत न हो, तब तक वह इस जगत् के सम्बन्ध में यज्ञ और व्रत के साधनों के करने के योग्य नहीं हो सकता।

तुम सोचो और देखो कि तुम्हारा जीवन उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में कैसा है? क्या तुम्हारे भीतर इस के सम्बन्ध में हानि से बचने और उसके लिए सेवाकारी बनने के लिए कोई उच्च भाव पैदा हुआ है? यदि हुआ है, तो किस २ में और कहां २ तक? नहीं तो तुम खुद हि सोचो, कि तुम इस जगत् के सम्बन्ध में किस क़दर परले दर्जे के स्वार्थ परायण और बेसुध हो। जिस उद्भिद् जगत् के विविध अच्छे और हितकर अस्तित्वों से तुम प्रति दिन अपने जीवन का आहार प्राप्त करते हो, जिस से आहार के भिन्न अपने पहनने के कपड़ों के लिए सूत और एक वा दूसरी बीमारी के दूर करने के लिए विविध प्रकार की औषधियां लाभ करते हो, उस से यह प्रति दिन और निहायत हितकर सेवा पाकर यदि तुम उसके साथ कोई सम्बन्ध अनुभव न करो और उसके लिए खुद कुछ भी सेवाकारी न बनो

और इस से भी बढ़कर यदि उसके साथ कोई बुरा सलूक करो, तो तुम कितने बुरे और रद्दी मनुष्य हो !!

तुम यदि किसी ऊंट को अपने पास रखकर कई वर्ष तक खाना खिलाते और पानी पिलाते रहो और उसको गरमी और सरदी से रक्षा और उसके साथ प्यार करते रहो, परन्तु यह सब कुछ करने के अनन्तर और तुम से यह सब उपकार पाकर भी वह तुम्हारे साथ कोई सम्बन्ध अनुभव न करेगा और यदि तुम उसे छोड़दो, तो वह तुम्हारे घर वापिस न आएगा। वह तुम्हारी सेवा वा भलाई का असर अनुभव करने के अयोग्य है। परन्तु यदि तुम किसी कुत्ते को एक महीना भी अपने पास रक्खो और उसे खाना खिलाओ और उसे प्यार करो, तो वह तुम्हारी सेवा को अनुभव करेगा, तुम्हारे लिए अपने भीतर कृतज्ञता का भाव महसूस करेगा, तुम्हारे पीछे२ फिरेगा और वह तुम्हारे घर की रखवाली करेगा। देखो ! इन दोनों पशुओं में कितना अन्तर ! यह अन्तर क्यों ? इसलिए कि इन दोनों के जीव एक प्रकार के नहीं, किन्तु वह जुदा२ स्वभाव के जीव हैं। कुत्ते के भीतर एक ऐसी वस्तु है, कि यदि उसके साथ कोई भला बर्ताव करे, तो उस भलाई का उस पर असर होता है, और उसके भीतर से अपने हितकर्ता के लिए सेवाकारी बनने की प्रेरणा होती है; परन्तु ऊंट के

भीतर ऐसी कोई वस्तु नहीं है। तुम अपने भीतर विचार कर देखो, कि तुम्हारी प्रकृति इन दोनों प्रकार के पशुओं में से किस के साथ मिलती है ? तुम जो उद्भिद् जगत् से सेवा पाते हो, उसके अनाज की रोटी खाते हो, उस की भाजियां खाते हो, उसके फल खाते हो और रोग की अवस्था में भी उस से कई प्रकार की औषधियां, लकड़ी और विविध प्रकार की और काम की वस्तुएं लाभ करते हो, उन सब उपकारों को पाकर उसके सम्बन्ध में तुम्हारे भीतर उसके लिए कुछ सेवाकारी बनने का भाव पाया जाता है ? यदि नहीं, तो तुम खुद हि समझलो, कि तुम्हारी अवस्था क्या है ? इसके भिन्न उद्भिद् जगत् के किसी अच्छे अस्तित्व को जो कोई जन एक वा दूसरी प्रकार की अकारण हानि करता है, वा तुम ने भी उस की कोई ऐसी हानि की है, उसका क्या तुम्हें कोई बोध होता है ? आज कल शहतूत के पौदे फलों से लदे हुए हैं। कितने हि लोग इनके यह फल खाते हैं। परन्तु कई लोग उनके फलों को लेते समय उनकी शाखों और इन के पत्तों को भी जिस निर्दयता से तोड़ते हैं, वह उनके बहुत बुरे स्वभाव को प्रगट करता है। कई बार ऐसा अत्याचार देखकर मुझे ऐसा दुख होता है, जैसे कोई मेरे सिर के बाल पकड़ कर खैंच रहा है। क्या तुम्हें भी उद्भिद् जगत् की कोई हानि बोध होती है ? क्या

तुम्हें किसी पौदे को मुरझाया हुआ देखकर तकलीफ़ होती है और दिल में आता है, कि वह मुरझाया हुआ न रहे? क्या तुम्हें किसी पौदे की बुरी शकल दुखी करती है, और वह अपने जिन पत्तों वा शाखों आदि के सूख जाने वा उन पर मट्टी आदि के पड़ जाने वा किसी और कारण से कदर्य्य बन रहा है, उसके कदर्य्य को मिटाकर तुम उसे सुन्दर बना देना चाहते हो? क्या ऐसा नहीं, कि यदि तुम्हें किसी पौदे की सेवा करने पर लगा दिया जावे, तो तुम उसे प्रसन्नता पूर्वक करने के स्थान में तकलीफ़ वा बेगार मालूम करोगे? आज उद्भिद् व्रत के दिन तुम अपनी आत्मिक अवस्था पर विचार करो और देखो, कि तुम उसके सम्बन्ध में क्या अवस्था रखते हो।

इस देश के लोगों में यह विश्वास निहायत मिथ्या, हानिकारक और भयानक है, कि सब सम्बन्धों से कट कर और किसी के लिए सेवाकारी और हितकर न बन कर और किसी ख़याली सुख को सामने रखकर जीवन व्यतीत किया जावे।

देवात्मा का यह मंन्त्र

"ओं उच्च गति, उच्च गति,

एकता एकता परम एकता।"

जिस भेद को प्रगट करता है, जब तक वह भेद

किसी पर प्रगट न हो, तब तक उसे सत्य-धर्म्म का बोध नहीं हो सकता। लाखों और करोड़ों मनुष्य सत्य धर्म्म के विचार से निहायत गहरे अन्धकार में भटक रहे हैं। उन तक देवात्मा की देव-ज्योति नहीं पहुंची और उन्हें यह महा सत्य दिखाई नहीं दिया, कि नीच गतियों से मोक्ष पाने और उच्च शक्तियों को लाभ करके विविध जगतों के सम्बन्ध में अधिक से अधिक सेवा-कारी बनने के विना आत्मा की रक्षा हि नहीं हो सकती और जो जन जितना विविध सम्बन्धों में अनुचित रूप से हानिकारक बनता है, वह उतना हि धर्म्म विहीन वा धर्म्म जीवन से ख़ाली होता है, और जिस क़दर हितकर और सेवाकारी बनता है, उसी क़दर धर्म्मवान होता है। हमारी यह हृदय गत कामना है, कि तुम्हारे भीतर सत्य धर्म्म के बोध जाग्रत हों और अधिक से अधिक जाग्रत हों। और तुम नेचर के विविध जगतों के सम्बन्ध में अपनी नाना हानिकारक गतियों से उद्धार पा सको और उच्च शक्तियों को प्राप्त होकर उस के सम्बन्ध में सेवाकारी बन सको।

५—मनुष्य जगत् सम्बन्धी भृत्य स्वामी व्रत के अवसर पर शुभ कामना।

[नरसिंह चौदश सम्वत् १६५४वि०]

(एक कर्म्मचारी के लिखे हुए नोटों के आधार पर)

कोई अधिकारी मनुष्यात्मा जब देवात्मा से सम्बन्धित होकर सात्विक भावों में ढलना आरम्भ करता है, तब हि उसका उच्च गति मूलक प्रकृत कल्याण और नेचर के एक वा दूसरे विभाग के साथ कुछ न कुछ उच्च गति मूलक सम्बन्ध स्थापन होना आरम्भ होता है। इस प्रकार जब किसी मनुष्यात्मा के भीतर से सात्विक भाव प्रस्फुटित होने आरम्भ करते हैं, तब हि से प्रकृत रूप से उसकी गति उच्च गति होती है, और उच्च गति विषयक एक वा दूसरे प्रकार का बोध उसे प्राप्त होने लगता है। तब हि से एक वा दूसरी नीच गति का भी उसे कोई सच्चा बोध प्राप्त होता है, और तब हि से वह एक वा दूसरी नीच गति को परित्याग करने के लिए और उच्च गति की ओर जाने के लिए, उच्च गति मूलक सम्बन्ध स्थापन करने के लिए, और नीच गति मूलक सम्बन्ध त्याग करने के लिए संग्राम करना चाहता है; और अपने ऐसे पथ में सहाय लाभ करने के लिए चेष्टा भी करना चाहता है। और यदि विकाश कर्त्ता देवात्मा के साथ जुड़कर अथवा उच्च गति मूलक बोध दाता सत्य देव के साथ जुड़कर उसका

सम्बन्ध गाढ़ होता जा सके, तो उसके भीतर एक वा दूसरा सात्विक भाव धीरे २ प्रस्फुटित और उन्नत होकर उसके जीवन को बढ़ाता जाएगा, उसकी उच्च गति को अधिक करता जाएगा, उसके आध्यात्मिक जीवन को उन्नत करता जाएगा। और यदि सौभाग्य वशत: इस से आगे भी वह अपने आत्मा के भीतर एक वा दूसरे काल में देवात्मा के प्रति अनुराग प्रस्फुटित करने का अधिकारी बन सके, और उसे प्रस्फुटित और विकसित करके और आगे बढ़ सके, तो फिर वह नेचर के प्रत्येक विभाग के साथ केवल यही नहीं, कि सात्विक भावों से जुड़ने और सम्बन्ध स्थापन करने के योग्य होता है, किन्तु ऐसे प्रत्येक सम्बन्ध में दिना दिन अधिक से अधिक उच्च गति मूलक बोध लाभ करने का भी अधिकारी बन सकता है। और इस प्रकार उसके लिए कुछ काल के लिए नहीं, किन्तु चिर काल के लिए विकास का मार्ग खुल जाता है। जब तक हमारे भीतर यह विकास-आकांक्षा ऐसी न हो जो बराबर चल सके, और लगातार बढ़ सके, और जब तक हमारे भीतर ऐसी आकांक्षा को लेकर अपने जीवन को संगठित वा उन्नत करने के लिए लगातार इच्छा न रह सके, तब तक हमारा जीवन जैसे एक ओर नेचर के प्रत्येक विभाग से सम्बन्ध में प्रत्येक नीच गति पर जय लाभ करने के योग्य नहीं हो सकता और नहीं होता; वैसे हि दूसरी ओर चिर

विकास का भी अधिकारी नहीं बन सकता और नहीं बनता। उच्च गति और नीच गति में अन्तर देखने वाले आत्मा के लिए, विकास और विनाश के फलों में भेद जानने वाले आत्मा के लिए विनाश से रक्षा या उद्धार पाने, विनाश जनक नाना प्रकार के दुखों, हां सचमुच के नरकों से उद्धार पाने के लिए, और उच्च गति वा उच्च बोध मूलक सुन्दर और सुमिष्ट उच्च जीवन लाभ करने के निमित जिस देव जीवन धारी देवगुरु की आवश्यकता है, जिस उच्च बोध दाता की आवश्यकता है, जिस रक्षा और विकास कर्ता की आवश्यकता है, उसके पहचानने के के लिए यदि कोई आत्मा प्रकृत रूप से आकांक्षी और व्याकुल न हो और यदकिन्चित उन्हें पहचानकर उनके साथ आन्तरिक सम्बन्ध स्थापन करने की, सच्चे भक्ति भाव से जुड़ने की, सच्चे आन्तरिक मेल दायक सम्बन्ध के स्थापन करने की जब तक उस में प्रकृत अभिलाषा न हो, तब तक उसका नीच गति और नीच गति मूलक प्रत्येक विनाश और दुख और अन्धकार और तम से उद्धार नहीं हो सकता, और उसके लिए उच्च गति और अध्यात्मिक कल्याण और विकास का पथ भी नहीं खुल सकता। वह नेचर के किसी विभाग के साथ उच्च बोध मूलक सम्बन्ध बनाने की आकांक्षा नहीं कर सकता और अपनी नीच गति में

अपना और अपने सम्बन्धी का विनाश होता देखकर भी उस से बचने के लिए कोई सच्ची चेष्टा नहीं कर सकता। तब कितना बड़ा सौभाग्य है, उस आत्मा का कि जिसे विकास और विनाश का अन्तर दिखाने, विकास और विनाश से जो भिन्न२ फल उत्पन्न होते हैं, उन फलों का ज्ञान देने के लिए देव ज्योति और उच्च बोध दाता, नीच गति विनाशक और उच्च जीवन विकास कर्ता देवात्मा प्राप्त हो जावें-न केवल प्राप्त हो जावें, किन्तु जिसे उन के साथ अपना आन्तरिक सम्बन्ध स्थापन करने की आवश्यकता भी अनुभव हो जाए। फिर यह आन्तरिक सम्बन्ध क्या रूप रखता है, क्या लक्षण रखता है, किस तरह स्थापन होता है और किस तरह उन्नत होता है, उसका ज्ञान लाभ करने का भी यदि उसे अधिकार प्राप्त हो जाए, और ऐसे आन्तरिक सम्बन्ध के जो लक्षण हैं, उन के भी लाभ करने के वह योग्य हो जाए, तो फिर इस सब लाभ की तुलना में वह देख सकता है, कि इस पृथिवी में जो कुछ लाभ उसके लिए प्राप्त करना सम्भव हो-चाहे वह विद्या का लाभ हो, चाहे धन का लाभ हो, चाहे मान और सम्भ्रम का लाभ हो, चाहे यश और बड़ाई का लाभ हो, हां चाहे इस पृथिवी भर के हि राज का लाभ हो, सब कुछ तुच्छ है, और उसे यह सब कुछ तुच्छ बोध होना आवश्यक है। इसीलिए वह इस लाभ के लिए, उच्च गति

दाता के साथ सम्बन्ध स्थिर रखने के लिए ऐसा कोई आचरण नहीं, कि जिस को त्याग करने की इच्छा न कर सकेगा, ऐसी कोई चिन्ता नहीं, कामना नहीं, वासना और उत्तेजना नहीं जिस के छोड़ने की इच्छा न कर सकेगा। ऐसा कोई मान वा यश नहीं, ऐसा कोई पार्थिव पदार्थ और धन नहीं जिस को आवश्यकता के अनुसार परित्याग करने के लिए प्रसन्नता पूर्वक प्रस्तुत न हो सकेगा। हां इस प्रकार के लक्षणों के उत्पन्न होने से हि उसकी योग्यता और उसके अधिकार की परीक्षा हो सकती है। और ऐसी योग्यता और ऐसे अधिकार को प्राप्त होकर हि जब कोई मनुष्यात्मा प्रकृत रूप से किसी यज्ञ का साधन करने के योग्य बनता है, और उसका साधन करता है, तब प्रकृत रूप से ऐसा साधन करके उसके द्वारा अपने जीवन के भीतर उच्च गति मूलक प्रशस्तता देखता है, अपने आत्मा का विकास होता हुआ देखता है, और नीच गति पर एक वा दूसरी सीमा तक जय लाभ करता है। इस प्रकार जैसे वह एक ओर सच्चा यज्ञ कर्ता बनता है, वैसे दूसरी ओर ऐसा यज्ञ साधन करके और अन्त में ऐसे यज्ञ सम्बन्धी व्रत को पूरा करके अपने आप को कृतार्थ और धन्य २ अनुभव करता है। ऐसे यज्ञ से उस ने जो कुछ हित लाभ किया हो, जो कल्याण लाभ किया हो, जीवन का जो उच्च विकास लाभ किया

हो, उसे सन्मुख लाकर हर्षित और आनन्दित होता है, गद्गद होता है, अपने आप को धन्य २ देखता है। और जिस जीवन दाता भगवान् देवात्मा ने उसे इस प्रकार धन्य २ होने का अवसर दिया, धन्य २ होने में सहाय की, धन्य २ होने के लिए ज्योति और शक्ति दी, उन्हें भी हृदय के गहरे भावों से धन्य २ कहने के योग्य होता है, उनके और भी निकट हो जाने के योग्य होता है, उनकी और भी सहायता लाभ करने के योग्य होता है, उनके साथ और भी गहरे सम्बन्ध में जुड़कर आगे के लिए अपना और भी अधिक कल्याण लाभ करने के योग्य बनता है। ऐसे हितकर साधन में, उसे अपनी हीनता का जो कुछ बोध हो, जिस २ प्रकार की हीनता का बोध हो, उस हीनता को रखना नहीं चाहता, उस नीचता को पोषण करना नहीं चाहता, किन्तु ऐसी सब नीचता और हीनता को अपने लिए विष वत्त देख कर, आत्म विनाशक देखकर उसे दूर करने और उस से बचने और रक्षा पाने के लिए व्याकुल होता है, उस से रक्षा पाने के निमित्त प्रतिज्ञा करता है। जहां तक उस में अपना बल है, केवल वहीं तक उस से निकलने के लिए चेष्टा करने की प्रतिज्ञा नहीं करता, किन्तु इस से आगे और बल लाभ करने के लिए, ज्योति और शक्ति लाभ करने के लिए अधिक से अधिक बोधवान होने के लिए भी

अपने जीवन दाता से दीनभावी होकर प्रार्थी होता है। ऐसे जीवन दाता के सम्बन्ध को और भी गहरे रूप से अनुभव करता है, ऐसे जीवन दाता की महिमा को और भी अधिक रूप से बोध करता है, ऐसे जीवन दाता के और भी अधिक रूप से अधीन हो जाने में अपना भला और अपना कल्याण देखता है।

आज के इस व्रत के साधन में भी हम देखेंगे, कि ऊपर जिस अधिकार और योग्यता और लक्षणों का वर्णन किया गया है, उनके अनुसार हम में से किस २ ने इस यज्ञ का साधन किया है, और किस ने नहीं ? और जिस ने साधन किया है, उस ने कहां तक साधन किया है, और ऐसे साधन के द्वारा उस ने अपने लिए क्या कुछ हित लाभ किया है। इस यज्ञ के सम्बन्ध में स्वामी होकर अथवा भृत्य होकर उस ने कहां तक उच्च गति और उच्च ज्योति लाभ की है, और कहां तक ऐसे बोध और ऐसी ज्योति के अनुसार उस ने अपने जीवन को ढालने के लिए चेष्टा की है। हां भृत्य स्वामी यज्ञ के साधन में वह कहां तक प्रकृत रूप से भृत्य और कहां तक प्रकृत रूप से स्वामी बनने के योग्य हुआ है ? ऐसा भृत्य और ऐसा स्वामी बनने के योग्य हुआ है, कि जिस से वह एक दूसरे के लिए विकासकारी और कल्याण का हेतु बन सकता है। इस प्रकार हम आज के व्रत में

अपनी योग्यता अपने अधिकार और अपनी अवस्था पर, चिन्ता कर सकेंगे, कि कहां तक हमारे लिए सचमुच यह यज्ञ आवश्यक बोध हुआ है, कहां तक हम ने उस का साधन किया है, और कहां तक उस से कल्याण लाभ किया है। इसके भिन्न यह भी विचार करेंगे, कि कहां तक हमारे भीतर इस सम्बन्ध का बोध हि नहीं और इसीलिए जो कुछ नीच गति मूलक जीवन इस सम्बन्ध में हमारे भीतर वर्तमान है, वह किस प्रकार हमारे विनाश का हेतु बन रहा है, और हम ऐसे विनाश को प्राप्त हो रहे हैं। इस यज्ञ के जो आदेश हैं उन के साथ तुलना करके हम अपनी २ अवस्था का इस समय कुछ अनुमान करेंगे, और उसे सन्मुख लाकर इस व्रत की कार्य्य प्रणाली के अनुसार जो कुछ हमें अपनी हीनता देखनी चाहिए, वह देखेंगे, और हम में से किसी ने इस यज्ञ के साधन से जो कुछ अपना हित साधन किया हो उसको सन्मुख लाकर हम खुश और हर्षित होंगे, और आगामी वर्ष में इस यज्ञ के विषय में अपनी २ योग्यता के अनुसार ऐसी प्रतिज्ञाएं करेंगे, कि जिन से हमारा और भी कल्याण हो, और भी नीच गति से रक्षा पाने का अवसर हो और इस तौर से जहां तक प्रकृत रूप से हम जो कुछ भी करने के योग्य होंगे, वहां तक हमारा यह व्रत सफल होगा और हमारे लिए

कल्याणकारी होगा। मेरी यह आन्तरिक कामना है, कि यह व्रत हम सब के लिए कुछ न कुछ अवश्य कल्याणकारी हो।

६—स्वदेश व्रत के अवसर पर उपदेश।

(ज्येष्ठ शुदि एकादशी सं० १९५५ वि०)

भारत वर्ष के प्राकृत रूप और उसके नाना प्रकार के सौन्दर्य्य और उसकी विशेषताओं का वर्णन करने के अनन्तर पूजनीय भगवान् ने उसके प्राचीन इतिहास का भी कुछ वर्णन किया, कि पहले पहल इस में रहने वाले लोग किस प्रकार के थे, और फिर इस में आर्य्य जाति ने आकर किस प्रकार अधिकार लाभ करके वास करना आरम्भ किया, और धीरे २ बहुत उन्नति प्राप्त की और वह प्रायः सारे हि देश में फैल गई। इस के अनन्तर भगवान् ने फ़रमाया कि :—

हमारे देश वासियों के भीतर और कई सद्गुणों के उत्पन्न होने पर भी जिस अत्यन्त आवश्यक और कल्याणकारी सद्गुण का प्रकाश नहीं हुआ, वह जातीयता का भाव है। संस्कृत के साहित्य में बड़े २ विख्यात पुस्तक रचियता उत्पन्न हुए। क्या पद्य में और क्या गद्य में जहां तक भाषा का सम्बन्ध है, ऐसे सुलेखक उत्पन्न हुए, कि जो अब भी प्रशंसा के साथ स्मरण किए जाते

हैं, और जो आगे भी स्मरणीय रहेंगे। कालीदास जैसे नाटक रचियता जैसे आज सुसभ्य देशों में भी आदर पूर्वक ग्रहण किए जाते हैं, वैसे हि आगे भी ग्रहण किए जाएंगे। मनु और याज्ञवल्क जैसे स्मृतिकारों का नाम भी स्मरण करने के योग्य रहेगा। महा भारत जैसे काव्य के रचने वाले या रचने वालों का नाम भी कभी भी इस देश में नहीं भूलेगा। और क्या ज्योतिष और क्या चिकित्सा और क्या दर्शन आदि में भी हमारी जाति ने ऐसे काल में जब कि पृथिवी के देशों में मूर्खता और असभ्यता छाई हुई थी, जो कुछ उन्नति लाभ की थी, जो कुछ गौरव लाभ किया था, वह भी स्मरणीय रहेगा। स्मरणीय रहेगा इसलिए कि वह गौरव था और स्मरणीय रहेगा इस लिए भी कि इस प्रकार की सारी विद्या इसी देश के वासियों से और देशों में गई। यूनान में गई और अरब में गई, और फिर वहां से यूरोप में गई, और अमरीका में भी गई। और इस में कुछ सन्देह नहीं, कि भारत वासी आर्य्य जाति के हि लोगों ने पहले पहल सभ्यता में अग्रसर होकर विविध प्रकार की उन्नति लाभ की थी, और इस उन्नति के द्वारा पृथिवी की और जातियों के लिए पथ प्रदर्शक हुए थे। इस सब के लिए हम बेशक पवित्र अभिमान अनुभव कर सकते हैं। जहां तक हम औरों की सभ्यता और औरों की उन्नति

का कारण बने हैं, और औरों तक अपनी विद्या को पहुंचाने का हेतु हुए हैं, वहां तक इस सारे दृश्य को सन्मुख लाकर हम हर्षित हो सकते हैं। इस प्रकार के सारे साहित्य और विद्या की उन्नति में जिस ब्राह्मण जाति ने यत्न किया था, उसके इस गौरव और उपकार को सन्मुख लाकर निश्चय धन्य २ हो सकते हैं, और अपने भीतर आत्म सन्मान् के भाव को भी उद्दीपन कर सकते हैं। परन्तु दुर्भाग्य अवस्था से भारत के भीतर एक विशेष रूप के वर्णभेद के उत्पन्न होने से और इस वर्णभेद के लगातार उन्नत होने से यह सारी जाति दस, बीस, पचास समूहों में नहीं, किन्तु सहस्र २ छोटे २ समूहों में विभक्त हो गई, और साधारण व्यवहार आचार में इस महा भेद के हो जाने से जहां एक ओर सारी जाति में कोई जाति बन्धन स्थापन नहीं हुआ, वहां दूसरी ओर इस वर्ण-भेद के कारण विशेष कर एक हि वर्ण के भीतर विद्या का प्रचार रहा और अन्य वर्णों के लोगों में जिन की संख्या करोड़ों की थी, मूर्खता का हि अधिपत्य रहा। ब्राह्मणों में भी सब विद्वान नहीं हुए और नहीं हो सकते थे। इस में कुछ सन्देह नहीं, कि ब्राह्मणों में एक सीमा तक विद्या का प्रचार रहा, और एक काल तक बहुत कुछ रहा, परन्तु उन में से भी कई प्रकार की विरोधी घटनाओं के आजाने से विद्या का साधारण प्रचार चला गया।

और जो कुछ थोड़ा बहुत विविध स्थानों में रहा, वह प्रचार भी किसी ऐसी विद्या का न था; कि जो समय के साथ २ जाति संग्राम के लिए, जाति जनों को किसी पवित्र सम्बन्ध में बान्धने के लिए, और उनको मिलाकर किसी जातीय काम को पूर्ण करने के लिए, जाति गौरव को उन्नत करने के लिए सहायक हो सकता। काशी और नदिया आदि स्थान यदि प्राचीन काल से संस्कृत की शिक्षा के लिए विख्यात रहे और हैं, भारत के और कई तीर्थ स्थानों में भी संस्कृत की चर्चा रही और है, परन्तु वह चर्चा किस प्रकार की? वह पठन पाठन किस प्रकार का? संस्कृत के व्याकरण को लेकर अथवा उसके न्याय को लेकर अथवा किसी और इसी प्रकार की शाखा को लेकर। सारी वयस की शिक्षा के अनन्तर एक २ विद्यार्थी क्या बना? व्याकरणी! क्या बना? न्यायक! व्याकरणी और न्यायक बनने से जाति गौरव के बढ़ने में कौनसी सहायता लाभ हो सकती थी? जीवन के संग्राम में, जाति बंध गौरव के पथ अवलम्बन करने में कौनसी सहायता हो सकती थी? इसीलिए हमारी जाति के पक्ष में पहले २ भारत में आना निहायत हि अनुकूल प्रमाणित हुआ। भारत क्षेत्र ने उन्हें अपनी गोद में स्थान देकर बहुत कुछ बिना परिश्रम और जीवन सम्बन्धी संग्राम करने के सुख

पूर्वक रक्खा, सुख पूर्वक लालन पालन किया। परन्तु इस पृथिवी के और और देशों में जहां की प्राकृतिक अवस्था वहां के रहने वालों के लिए भारत भूमि की न्याई अनुकूल नहीं हुई, किन्तु उलटा प्रतिकूल हुई, वहां उसकी प्रतिकूलता के कारण उन्हें अपने जीवन के पथ में बहुत कुछ संग्राम करना पड़ा। उस संग्राम के उपस्थित हो जाने से उन लोगों को जहां भारत की अच्छी से अच्छी किसी एक वा दूसरी विद्या के ग्रहण करने में कुछ कठिनता नहीं हुई, वहां दूसरी ओर इस विद्या के द्वार कुछ खुल जाने पर उन्हें अपने जीवन के विशेष संग्राम के कारण जिस २ पथ के अवलम्बन करने की आवश्यकता हुई, जिस२ रास्ते के काटने की आवश्यकता हुई, ऐसे रास्ते के लिए जिस २ प्रकार की शुभकर विद्या के उत्पन्न और उपार्जन करने की आवश्यकता हुई, उसके पूरा करने में भी कोई रुकावट नहीं हुई। हां ऐसी शुभकर विद्या के प्राप्त होने पर उस विद्या को न केवल अपनी जाति भर में फैलाने, किन्तु और देशों के वासियों को भी सिखा देने के लिए इच्छा उत्पन्न हुई। इस सब दृश्य को सन्मुख लाने से भारत के उस काल पर, कि जिस में पहुंचकर हमारी आर्य्य जाति उन्नति के पथ से रह गई, जीवन विषयक विविध प्रकार के संग्राम के न करने के कारण ऐसी विद्याओं के उपार्जन करने और उन्नति करने

से पीछे रह गई। हम लोग सिवाय शोक के और क्या प्रकाश कर सकते हैं।

इधर इस प्रकार की विद्या से भारत का विहीन हो जाना, उधर जातीयता के हितकर भाव का उत्पन्न न होना, भारत भूमि में शत २ राजाओं का रहना, परन्तु किसी जातीय राज्य का प्रतिष्ठित न होना इस देश के लिए बहुत बड़े दुर्भाग्य का कारण हुआ।इसलिए आज से प्रायः एक हज़ार वर्ष पहले,विशेष कर जब विदेशी लोगों ने शारीरिक बल और ऐश्वर्य्य से उत्साहित होकर इस देश पर आक्रमण करना आरम्भ किया,तब जैसी कि आशा करनी चाहिए थी, इस देश को पराजित करना और उस पर अधिकार लाभ करना उनके लिए कुछ बहुत कठिन नहीं हुआ। ऐसी आशा भी की जा सकती थी, कि भारत वासी यदि वर्णभेद विषयक उन्नति नाशक बन्धनों में न पड़ते वा खान पान विषयक आचार के बन्धनों में पड़कर अपने देश के भीतर हि बन्द न रहते, और जैसे और देशों के वासी आकर इस देश के जय करने के लिए प्रस्तुत हुए थे, वैसे हि इस देश के लोग भी उन्नति करके और देशों के जय करने के योग्य बनते। वह अपने हां के वाणिज्य को केवल अपने हां हि आवद्ध न रखते, किन्तु और देशों में जाकर भी वाणिज्य करते और देशों में भी अपने हां की वस्तुओं की बिक्री

करते । और जिस महा भयानक संकीर्णता में पड़कर वह पृथिवी की और विविध जातियों के सम्बन्ध में आने से कट गए, उस संकीर्ण अवस्था में न पड़ते । वह किसी जातीयता सूत्र के उत्पन्न न होने से एक देश में रहकर भी एक जातीय परिवार संगठित न कर सके, और इसीलिए एक जातीय राज्य भी स्थापन न कर सके—ऐसा एक जातीय राज्य, ऐसा एक देशी राज्य कि जिस के साथ इस देश के सारे अधिवासी अपना सम्बन्ध अनुभव करते, अपना लगाव अनुभव करते और उस राज्य के रहने में हि अपना सुख और उसके जाने में अपना दुख प्रतीत करते; उस राज्य के लाभ में अपना लाभ और उसकी हानि में अपनी हानि अनुभव करते। हाए! यह अनुभव शक्ति, जातीय विषयक अनुभव शक्ति, जातीय विषयक अनुराग शक्ति हमारे देश वासियों को लाभ करने का अवसर न मिला। इसलिए हम एक काल में साहित्य का गौरव प्रतिष्ठित करके भी और चिकित्सा और ज्योतिष विषयक गौरव प्रतिष्ठित करके भी कोई जातिय गौरव प्रतिष्ठित न कर सके और अपने लिए कोई जातीय आदर्श उत्पन्न न कर सके। करोड़ों की संख्या में होकर भी हम करोड़ों की एकता मूलक शक्ति को अपने भीतर न देख सके । इस लिए भारत एक काल में एक सीमा तक उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ कर जातीय शक्ति विहीन होने से फिर

इस योग्य न रहा, कि वह अपने आप उसके आगे की और सीढ़ियों पर चढ़ सकता। इसलिए भारत के लिए हम उस समय को किसी क्लेश की दृष्टि से नहीं किन्तु मनुष्य अस्तित्व की उन्नति के तत्व को पहचानकर उस दिन को बड़े धन्यवाद के भाव से देख सकते हैं, जब कि इस देश में एक और जाति का पांव पड़ा, कि जिस जाति के पूर्व पुरुष भी किसी काल में हमारी जाति के अंग बताए जाते हैं। इस जाति के आने और क्रम २ से अपनी योग्यता के कारण हम पर अधिकार लाभ करने का हि सब से महत्व और श्रेष्ट फल है, कि हम को महा मूर्खता और महा अन्धकार से निकलने का महोउच्च अधिकार प्राप्त हुआ है, कि जिस से आवृत रहकर हम को सैकड़ों वर्ष के अन्दर भी कभी यह बोध नहीं हुआ, कि हम किस अवस्था में हैं। हमें कभी यह बोध नहीं हुआ, कि जातीयता किस वस्तु का नाम है? जाति शक्ति किसे कहते हैं? और उसकी उत्पत्ति और उन्नति के क्या २ हेतु हैं? और जैसे हमें कभी अपने देश की अवस्था जानने और निर्णय करने का अवसर प्राप्त न होता, वैसे हि जिस स्वदेश यज्ञ का हम आज व्रत पूर्ण कर रहे हैं, उस यज्ञ की महिमा को भी हम लोग न देख सकते; और वह जो इस यज्ञ को और ऐसे और बहुत से महा

कल्याणकारी यज्ञों का संस्थापक है, उस को भी, जहां तक कि अब वह हमें जैसे हितकर रूप में प्रतीत होता है, देखने का अवसर प्राप्त न कर सकते।

स्वदेश यज्ञ यदि किसी बड़े महत्व उद्देश्य को पूरा करता है, तो केवल यही नहीं कि वह प्रत्येक यज्ञ कर्ता के जीवन के लिए कल्याण का पथ खोलता है, किन्तु अपने शुभकर उद्देश्य के साथ इस देश के वासियों में उस महा तेजस्विनी शक्ति के पैदा करने का हेतु बनता है, कि जिस का नाम शुभ मूलक स्वदेश अनुराग है। और इस अनुराग को उत्पन्न करके धीरे २ इस देश को देशीय गौरव के उस पथ पर आरोहन करने के योग्य करता है, कि जिस पर पहुंचकर और देशों से बढ़कर इस देश को भी अपने परम सौभाग्य और कल्याण का मुंह देखने का अवसर प्राप्त हो सकता है। विद्या का प्रचार, धन की उन्नति, शिल्प की उन्नति, राजनैतिक ज्ञान और शासन प्रणाली, ज्ञान विषयक उन्नति, यद्यपि स्वदेशीय गौरव के लिए अति आवश्यक सामग्री हैं, किन्तु अपने तौर पर यह सारी सामग्री उत्पन्न होने पर भी स्वदेशीय गौरव को ला नहीं सकती, जब तक सारे देश वासियों के साथ प्रत्येक जन अपने आप को बन्धा हुआ अनुभव न करे। एक अच्छे परिवार का एक २ जन जैसे उस परिवार के लाभ में सुखी और हानि में दुखी

होता है, उसके मान में सुखी और अपमान में दुखी होता: हैं, वैसे हि जब तक सारे देश के शासन में प्रत्येक जन का इस प्रकार अनुराग न हो, लगाव न हो कि जिस से अपने देश की कोई साधारण विपद उनके हृदय के किसी सूत्र को स्पर्श करती हो, और उसे दुखी करती हो; और कोई देश उन्नति विषयक कार्य्य प्रणाली उन्नत करने के लिए स्वभाविक यत्न करने की इच्छा उत्पन्न होती हो, तब तक देशीय गौरव लाभ नहीं हो सकता। देशीय एक जन के पास बहुत सा धन हो सकता है, परन्तु देश की एक२ दुर्भिक्ष की विपद से रक्षा अथवा देश के कल्याण के लिए विद्या सम्बन्धी वा शिल्प सम्बन्धी वा कृषि सम्बन्धी कोई प्रस्ताव उनके हृदय को कहां स्पर्श कर सकता है। आज देश के कितने हि स्थानों में महा मारी फैली हुई है। उस महा मारी से देश के एक २ स्थान में, एक २ नगर में लोगों को जो कुछ क्लेश मिल रहा है, उस क्लेश की लहर का आघात् क्या देश के और जनों तक पहुंचता है? भारत में कितने लोग इस समय ऐसे होंगे, कि जिन्हों ने इस महा मारी की बिपद से अपने एक वा दूसरे प्रान्त के देश वासियों को दुखी वा पीड़ित जानकर अपने हृदय में ऐसा आघात् अनुभव किया हो कि जिस से उन के हृदय के भीतर एक मुहूर्त के लिए भी सचमुच यह भाव उत्पन्न हो गया हो, कि

किसी तरह उनका यह दुख दूर हो। हां हम इस देश में करोड़ों की संख्या में वास करते हैं, परन्तु हम आपस में एक दूसरे के साथ जुड़ा हुआ अनुभव नहीं करते। और तो और अभी ऐसे परिवार भी बहुत थोड़े हैं, कि जिन के भीतर जो जन वास करते हैं, वह एक दूसरे के दुख को प्रकृत रूप से अनुभव करते हों, एक दूसरे की हानि का प्रकृत रूप से बोध करते हों, एक दूसरे के दुख से प्रकृत रूप से दुखी होते हों, और आपस के कल्याण के लिए मंगल कामना करते हों। इसलिए देश के एक २ प्रान्त में जो विविध प्रकार का दुख है, उस दुख की लहर उत्पन्न होकर हमारे हृदय को आघात् नहीं लगाती। अन्धे के सामने जैसे सुन्दर२ दृश्यों का सौन्दर्य्य पेश करने पर उसे कुछ नहीं मालूम होता, बहरे के पास जैसे अच्छे से अच्छे बाजे की स्वरध्वनी उसके कान के भीतर जो ढोल है, उसको आघात् नहीं पहुंचाती, और वह बाजे के समीप बैठा हुआ है, बाजे को देखता भी है, परन्तु उसके शब्द को अनुभव नहीं करता, इसी प्रकार हम एक देश में रहकर भी, अपने लाखों करोड़ों देश वासियों को देखकर भी, उनके आर्त नाद को अनुभव नहीं करते। हम तक उनके दुख और विपद के समय के रोने की आवाज़ नहीं पहुंचती। हम यदि

आप धनवान हैं और विलासता पूर्वक दान या पुण्य कर सकते हैं, तो अपने देश के दीन दुखिया और कंगाल लोगों की ओर हमारी कुछ दृष्टि नहीं होती। हमारे हृदय को वह नहीं खैंचते, हम आप सुख में रहते हैं, परन्तु उन्हें दुख से निकालने की इच्छा नहीं होती। उन दीन दुखियों की आप कुछ सहायता करना तो एक ओर, हमारे देश में यदि कोई ऐसे पुरुष वर्तमान भी हों, कि जो अपने ऊपर दुख लेकर, क्लेश लेकर, नाना प्रकार के आर्थिक अभावों में पड़ कर अपने देश वासियों के लिए अपना समय और शक्तियां विसर्जन करते हों, तो हज़ारों को उनके इस कार्य्य की महिमा भी कुछ प्रतीत नहीं होती, क्योंकि किसी ऐसे कार्य्य की महिमा और आवश्यकता हि उनके सामने नहीं। इस लिए वह ऐसे जनों की कुछ सहाय करना नहीं चाहते, वह उनके पास तक खड़ा होना नहीं चाहते, वह उनके रूप तक को भी अनुराग पूर्वक देखना नहीं चाहते। अन्धे के सामने जैसे सुन्दर से सुन्दर वस्तु भी अपना रूप प्रकाशित नहीं कर सकती, वैसे हि देश उपकारी जन अपने सौन्दर्य्य की एक किरण तक भी उन तक नहीं पहुंचा सकते और उनके चित को आकृष्ट नहीं कर सकते—न धनवान के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं, न शिल्पी के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं, और न किसी व्यवसाई के हृदय को अपनी ओर खैंच सकते हैं, तब

यह श्रेष्ठ और उच्च भाव, स्वदेश हित का आवश्यक भाव औरों के भीतर क्योंकर प्रवेश हो सकता है ? क्या कोई केवल धनवान होकर और आप देश हितैषिता से विहीन होकर औरों के भीतर देश हितैषिता को संचार कर सकता है, क्या कोई विद्वान होकर और आप देश हितैषिता से विहीन होकर किसी के भीतर देश हितैषिता ला सकता है ? क्या कोई आप बहुत बड़ा शिल्पी और व्यवसाई होकर, किन्तु अपना हृदय देश हितैषिता से शून्य रखकर किसी के भीतर देश हितैषिता उत्पन्न कर सकता है ? कदापि नहीं, कदापि नहीं । हां इस देश में जब किसी सभा के भीतर एक वा दूसरा मनुष्य देश हितैषिता का शब्द पुकारता है, उसके जीवन की यदि परीक्षा करो, उसके सम्बन्ध को उसके अपने परिवार के साथ हि देखो, उसके आचार व्यवहारों को अपने नगर वासियों के साथ देखो, तो पता लग जाएगा, कि उस ने देश हितैषिता के कुछ शब्द मुंह से निकालने सीखे हैं; परन्तु प्रकृत देश हितैषिता उसके अन्दर कहां । ऐसे बहुत थोड़े हृदय हैं जो देश हितैषिता के उच्च भाव को ग्रहण कर सकते हैं ; और फिर उस भाव को और अधिकारी जनों में धीरे २ संचार कर सकते हैं । तब तुम लोगों को जो उच्च अधिकार अपने जीवन को विकास के पथ में ले जाने का प्राप्त हुआ है, और एक वा

दूसरे उच्च भावों से विभूषित होनें का अवसर मिला है उसे सन्मुख लाओ। क्योंकि परत्व के भाव को पाकर उसके साधन के द्वारा जैसे पहले अपने परिवार के साथ विशुद्ध अनुराग से बन्धने की आवश्यकता है और फिर उस से बढ़कर सामाजिक जनों के साथ बन्धने की आवश्यकता है; वैसे हि उस से बढ़कर अपने सारे स्वदेश वासी जनों के साथ बन्धने की आवश्यकता है। ऐसा हो, कि तुम्हारे आत्मा के भीतर अपनत्व से ऊपर परत्व का यह सात्विक भाव उत्पन्न हो, जिस को लाभ करके तुम किसी और के साथ हितकर सम्बन्ध अनुभव कर सको, कि जिस से तुम्हें एक ओर उसके प्रति अन्याय अथवा अत्याचार करना, अपनी किसी नीच प्रकृति के द्वारा परिचालित होकर उसके किसी उचित अधिकार को अपहरण करना, उचित बोध न हो, वहां दूसरी ओर उसके क्लेश और दुख से अपने हृदय के भीतर आघात् अनुभव हो। ऐसी अवस्था में उसका क्लेश अपना क्लेश हो जाता है, उसका दुख अपना दुख हो जाता है, और उसके कल्याण के चाहने और कल्याण के देखने के लिए उच्च कामना उत्पन्न होती है। इस प्रकार इन उच्च भावों को लाभ करके जब मनुष्य अपने परिवार, और परिवार के अतिरिक्त सामाजिक जनों के दुख सुख को अनुभव करने लगता है, तब जिस परिवार वा समाज का वह

अंग हो, उस परिवार वा समाज के प्रत्येक अंग को प्रीति पूर्वक देखने लगता है। उसकी हीन अवस्था में अपने आप को सुखी नहीं देखता। किसी ऐसी समाज के अंगों को उन्नति के पथ में जाते हुए देखकर सुखी होता है। यही भाव जब फैलते २ स्वजाति जनों से निकलकर स्वदेशीय जनों तक पहुंचता है, तब हम अपने देश में रहकर इस देश के सैकड़ों मील की दूरी पर एक और प्रान्त में यदि कोई विपद आई हो, तो उसका आघात् अपने भीतर अनुभव करते हैं। और यदि उस देश के कल्याण के लिए कोई प्रणाली सन्मुख आए तो उस प्रणाली में अपनी अवस्था के अनुसार सहायकारी बन जाने की अभिलाषा अनुभव करते हैं। तब और, तब जैसे हम सच्चे देश हितैषी बनते हैं, वैसे हि अपने देश हितैषिता के भाव को अधिकारी जनों में प्रवेश करके उन्हें भी देश हितैषी बनाकर इस देश के कल्याण के पथ में सच्चे सहायक उत्पन्न कर सकते हैं। देव समाज में जो लोग भुक्त हुए हैं, जिन के भीतर कुछ भी सात्विक गुण उत्पन्न हुए हैं, पर (other) के साथ जिन का कुछ भी सात्विक सम्बन्ध उत्पन्न हुआ है, उनका कितना बड़ा सौभाग्य है, कि वह जहां इन उच्च भावों को प्राप्त होकर प्रकृत धर्म्म के पथ के अवलम्बन करने के योग्य होकर अपने जीवन के कल्याण

का साधन कर सकते हैं; वहां विविध प्रकार के मिथ्या धर्म्म मतों के प्चार और विषाद से रक्षा पाकर और प्रकृत कल्याण के पथ पर चलते देखकर अपनेआप को धन्य २ अनुभव कर सकते हैं। वह अपनी इस योग्यता को बढ़ाकर धीरे २ एक वा दूसरे यज्ञ के साधन के अधिक अधिकारी बनते जाते हैं। और इस प्रकार धीरे २ हमारे देश में ऐसे लोग उत्पन्न हो सकते हैं, कि जो एक ओर जहां इस देश में उत्पन्न होकर उसके अधिवासी होने का पवित्र अभिमान कर सकते हैं, वहां अपने सामने यह दृश्य रख सकते हैं, कि जिस देश के हम वासी हैं उस का प्रकृत गौरव, सच्चा गौरव हिमालय की ऊंचाई से प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, किसी प्राकृतिक सौन्दर्य्य से प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, हाथी और व्याघ्र जैसे पशुओं से प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, उत्तम उत्तम और ऐश्वर्य्य शाली नदियों के प्रवाहित होने से प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, अच्छी २ ऋतुओं के द्वारा भी प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, किन्तु इन सब से ऊपर जो वस्तु श्रेष्ठ हैं, अर्थात् मनुष्यत्व, उसके गौरव के साथ इस देश का भी गौरव प्रतिष्ठित हो सकता है। यदि हमारे स्वदेशीय जनों की अवस्था उच्च न हो, तो फिर इस देश की कोई वस्तु भी, इस देश का हिमालय और गङ्गा भी उस के गौरव को स्थापन नहीं कर सकते। ऐसा हो, कि इस

सत्य को सन्मुख रखकर जहां हम ऐसे उत्तम देश में अपने पूर्व पुरुषों के अधिवासी होने और फिर आप भी उस में उत्पन्न होकर उसके वासी होने का उच्च अभिमान कर सकें, वहां सर्वदा यह समझ सकें कि जब तक हमारे देश वासियों के भीतर उच्च गुणों वा भावों का प्रकाश नहीं होता, तब तक उनके भीतर प्रकृत देश हितैषिता नहीं आती। इस सच्ची देश हितैषिता के भाव के उत्पन्न होने पर यहां की विद्या और यहां का धन और यहां का शिल्प और ज्ञान भी हमारे उच्च पथ में सहायक हो सकता है और तब हि यह देश अपनी गौरव प्रतिष्ठा कर सकता है। ऐसा हो, कि हम लोग उपलब्ध कर सकें कि जब देश वासियों के गौरव से हि देश का गौरव है, तब देश वासियों का नीचता से उद्धार और उनके भीतर सात्विक भावों के उत्पन्न होने में हि इस देश का प्रकृत गौरव भी सम्भव है। और इसीलिए इस सत्य को पहचानकर जिन्हें ऐसा अधिकार मिला हो, कि वह अपने जीवन को जहां अधर्म्म और विनाश के पथ से बचाकर कुछ न कुछ विकास की ओर बढ़े हों, वहां अपने देश वासियों को भी नीच जीवन से उद्धार देने और उच्च जीवन के पथ में अग्रसर करने का कुछ अधिकार पा चुके हों, वह इस स्वदेश यज्ञ की महिमा को विशेष

रूप से उपलब्ध कर सकते हैं, और उसके साधन से अपने लिए और औरों के लिए जिस प्रकार का कल्याण हो सकता है, प्रकृत हित आ सकता है, उसकी महिमा को भी सन्मुख लाकर धन्य २ हो सकते हैं। वह गम्भीर भाव से कह सकते हैं कि जिस देश में हमारे पूर्व्व पुरुषगण आकर अधिवासी हुए, जिस देश को उन्हों ने अपना देश बनाया और अपना देश कहा, जिस देश के अन्नजल से वह पले और हम पले, जिस देश की वायु में उन्हों ने श्वास लिया और हम ने श्वास लिया, जिस देश की भूमि पर हम ने सब से पहले आकर आंख खोली और उन्हों ने खोली, जिस देश में हमारे सैकड़ों हज़ारों प्रिय बन्धु जन्मे और मरे, जिस देश में हमारी जाति के भीतर ऐसे शत २ पुरुष उत्पन्न हुए, शत २ स्त्रियां उत्पन्न हुईं, कि जिन के नामों को आज भी हम प्रसन्नता और कृतज्ञता और अभिमान के साथ स्मरण कर सकते हैं; उस देश में जन्म लेकर, उस देश के निवासी कहलाकर, उस देश में पलकर, उस देश में रह कर निश्चय हम भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार जहां तक सम्भव है, उस देश का कुछ न कुछ हित करके प्राण त्याग करेंगे। हम सब की यह आकांक्षा हो, हम सब की यह कामना हो, हम सब का जीवन ऐसी प्रत्येक उच्च कामना के द्वारा अनुप्राणित होकर धन्य २ हो।

स्वदेश व्रत पर उपदेश ।

(ज्येष्ठ सुदि एकादशी १९६० वि०)

आज स्वदेश यज्ञ का व्रत है । स्वदेश यज्ञ क्या ? और स्वदेश व्रत क्या ? वह यज्ञ और व्रत कि जिस का अपने देश के साथ सम्बन्ध हो । परन्तु हमारे देश वासियों की ऐसी दुरावस्था है, कि लाखों करोड़ों को तो यह भी पता नहीं कि हमारा देश कौनसा है, वह कहां तक फैला हुआ है, उत्तर में कहां तक है, और दक्षिण में कहां तक है, पूर्व में कहां तक है, और पश्चिम में कहां तक है । यही कारण है, कि हमारे हि देश के एक भाग के लोग अनेक बार दूसरे भाग के लोगों को अपना देश वासी हि अनुभव नहीं करते ; और अपने देश की भी बहुत संकीर्ण वा छोटी सी सीमा अपने मन में नियत कर लेते हैं, और उसी के भीतर अपनी चिन्ता को आबद्ध रखते हैं ।

इससे आगे जिन लोगों ने स्कूलों में कुछ पढ़ लिख कर यह जान भी लिया है, कि हमारे देश की सीमा यहां तक है, और वह इतना लम्बा और इतना चौड़ा है, उनकी भी अपने देश के सम्बन्ध में क्या अवस्था है ? उनके लिए यह ज्ञान भी वैसा हि है, जैसा कि पृथिवी के और देशों के विषय में ज्ञान, अर्थात् जैसे वह यह जानते हैं, कि यूरोप वा एशिया के अमुक देश की

इतनी लम्बाई और चौड़ाई आदि है, वैसे हि वह यह भी जानते हैं, कि जिस देश को भारत वा इण्डिया कहते हैं, उसकी भी लम्बाई चौड़ाई आदि इतनी वा उतनी है। इस से अधिक उनके भीतर ऐसी कोई विचार वा चिन्ता आदि उत्पन्न नहीं होती, कि उस भारत वर्ष वा इण्डिया के साथ हमारा कोई अपना सम्बन्ध भी है, तथा वह हमारा देश है। मानो उनके भीतर स्वदेशिता का कोई भाव पाया नहीं जाता।

क्या हमारा अपने देश के साथ कोई विशेष सम्बन्ध है, क्या पृथिवी के और देशों और उन में रहने वालों की अपेक्षा हमारा अपने देश और देश वासियों के साथ कोई ऐसा सम्बन्ध है, कि जिस से हम यह कह सकें, कि भारत वासी हमारी पृथिवी के और लोगों की अपेक्षा अधिक निकट के सम्बन्धी हैं? हां है, और उस सम्बन्ध के विचार से हि वह और लोगों और और देशों से पृथक पहचाने जा सकते हैं। जैसे अपने परिवार के लोगों के साथ और लोगों की अपेक्षा हमारा अधिक निकटता का सम्बन्ध है, और इस सम्बन्ध के विचार से उनके साथ और जनों की अपेक्षा अधिक स्नेह हैं, वैसे हि अपने देश वासियों के साथ हमारा अन्य देश वासियों की अपेक्षा निकटता का सम्बन्ध है।

क्या इसके भिन्न कोई और लक्षण भी हैं, कि जिन से हमारे देश वासी और देश वासियों की अपेक्षा हमारे अधिक निकट हैं ? हां कितने हि और लक्षण भी हैं, कि जिन से हमारे देश वासी और देश वासियों की अपेक्षा हमारे अधिक निकट हैं। हां कितने हि और लक्षण भी हैं जिन से हम अपने देश वासियों से अधिक मिलते हैं। सब से प्रथम लक्षण भाषा है। यद्यपि हम अपने देश के नाना प्रदेशों में इस समय भिन्न २ भाषाएं प्रचलित देखते हैं, तो भी जहां यह सब हि प्रायः एक हि स्रोत अर्थात् संस्कृत भाषा से उत्पन्न हुई २ हैं, वहां दूसरा और सब से बड़ी संस्कृत से निकली हुई एक भाषा अर्थात् हिन्दी ऐसी है, कि जो प्रायः सारे देश में समझी जा सकती है। मदरास प्रदेश के कुछ भागों को छोड़कर बंग, महाराष्ट्र, दक्षिण, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजपूताना, विहार और उस से ऊपर के प्रदेशों में से सब में हिन्दी भाषा बोली या समझी जा सकती है। इसके भिन्न हमारे देश के प्रायः सब भागों में हमारे एक हि प्रकार के देशीय महा पुरुषों, महात्माओं और योधाओं आदि के लिए सन्मान का भाव पाया जाता है—जैसे पंजाब में लोग राम और कृष्ण का नाम जानते हैं, और उनका सन्मान करते हैं। वैसे हि भारत के और प्रदेशों में भी इसी प्रकार राम और कृष्ण का

नाम उच्चारण किया जाता और उनका सन्मान् होता है।

इसी प्रकार देश के जिस भाग में चले जाएं, वहां पर उन्हीं पूर्वजों की सन्तान् पाई जाती है, कि जो और भागों में पाई जाती है। जैसे पंजाब में भारद्वाज और पराशर की सन्तान् निवास करती है, वैसे हि बंगाल और बम्बई के प्रदेशों में भी उन्हीं पूर्वजो की सन्तान् पाई जाती है।

जातीय इतिहास सम्बन्धी कथाएं भी देश के सब भागों में एक हि वर्तमान हैं। रामेश्वर से हिमालय तक चले जाएं और पिशावर से ढाका तक भ्रमण करें, वही रामायण और महाभारत की कथाएं सब जगह प्रसिद्ध देख सकते हैं।

इसी प्रकार एक ओर हिमालय के बीच में अमर-नाथ और दूसरी ओर दक्षिणी सागर के तट पर श्वेत-बन्ध रामेश्वर, तीसरी ओर गुजरात के पश्चिम में द्वारका और बंगाल के पूर्व द्वीप में पुरी जगन्नाथ, और मध्य देश के गङ्गा यमुना, गोदावरी और तुगभद्रा आदि तीर्थ स्थानों की महिमा और कीर्ति जैसे देश के एक भाग में पाई जाती है, वैसे हि दूसरे भागों में भी वर्तमान है। इसी प्रकार के कई लक्षण हैं, कि जिन से हमारा देश और देश वासी और सब से पृथक् और भिन्न पहचाने जा सकते हैं। ऐसे सब जन हमारे अपने

देश के वासी हैं, हमारे स्वदेशीय हैं, और जिस देश में वह बसते हैं वह हमारा देश है। वही देश हमारे लिए स्वदेश है, और उसी के सम्बन्ध में हमारा स्वदेश यज्ञ और स्वदेश व्रत का साधन है।

यहां तक तो बताया गया, कि हमारा स्वदेश क्या है? और हमारे स्वदेशीय कौन हैं? और हम ने उपलब्ध किया, कि भारत हमारा देश है, और उस भारत के वासी सब के सब हमारे स्वदेशीय सम्बन्धी हैं; वह चाहे मदरास प्रदेश के हों, बम्बई प्रदेश के हों और चाहे बंग प्रदेश के हों। परन्तु इतना जान लेने से भी क्या हो सकता है? केवल इतने ज्ञान के प्राप्त होने से स्वदेश यज्ञ का साधन नहीं हो सकता। हम अपने एक स्वदेशीय को स्वदेशीय कहकर भी उसके साथ वह सम्बन्ध नहीं अनुभव करते, कि जैसा एक २ जर्मन अथवा इङ्गलिश मैन अथवा फ्रैंचमैन इत्यादि अपने देश वासी जर्मन, इङ्गलिश-मैन अथवा फ्रैंचमैन के साथ अनुभव करता है। जैसे एक २ जर्मन वा इङ्गलिशमैन अपने देश के साथ लगन रखता है, उसको अपना देश समझ कर अभिमान करता है, अपने देश की बनी हुई वस्तुओं के साथ विशेष लगाव रखता है, और एक २ वस्तु पर Made in Germany और Made in England अर्थात् जर्मनी वा इङ्गलैंड में बनी हुई, लिखकर वा पढ़कर प्रसन्न होता है, और अपने देश और देश बासियों

की उन्नति या किसी कार्य्य में औरों से विशेषता की अधिकता प्राप्त करने पर जितना हर्षित होता है, और उस में मानो अपनी उन्नति और अधिकता अनुभव करता है; ऐसे भावों का हम अपने देश और देश वासियों के सम्बन्ध में कोई चिन्ह नहीं पाते। हम भारत भूमि को अपना देश और भारत वासियों को अपना देश वासी कहकर भी उनके साथ कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं अनुभव करते, कि जिससे वस्तुतः हम उन्हें अपना समझने का परिचय दे सकें। हां, सम्बन्ध की इस अवस्था के वर्तमान होने पर हम किसी सम्बन्धी को अपना कह सकते हैं, और अपना समझ सकते हैं, अपने देश और देश वासियों के सम्बन्ध में यह अवस्था अभी तक वर्तमान नहीं है। क्या पहचान है ऐसे सम्बन्ध की? यह कि हम अपने सम्बन्धी के दुःख में अपना दुःख और उसकी समृद्धि में अपनी समृद्धि जानते हों। उसकी विपद् में हम अपनी विपद्, और उसके सुख में अपना सुख अनुभव करते हों। क्या हम ऐसे लक्षण को अपने देश वासियों के भीतर कोई परिचय पाते हैं? हमारे देश वासियों को यदि कोई अनुचित हानि पहुंच जाय तो क्या हमें उस से कोई दुःख बोध होता है? यदि हमारे देश का कोई भाग विपद् ग्रस्त और दुःखी हो, तो क्या उस से हमें कोई दुःख और क्लेश अनुभव होता है?

कदापि नहीं। हम इङ्गलैंड निवासियों के भीतर देखते रहे हैं, कि अफ़रीका निवासी बूअरों के साथ उनके अपने देश वासियों के युद्ध में जब कभी उनके देश वासियों को हानि पहुंचने अथवा उनके मारे जाने का समाचार निकलता था, तो सारा देश शोकातुर और पीड़ित हो जाता था, और उसके कुछ देश वासियों को किसी विरोधी दल के हाथ से किसी पीड़ा वा विपद से मोक्ष लाभ होने पर, अथवा विरोधी दल पर कोई जय प्राप्त होने पर सारा देश आनन्द और हर्ष से भर जाता था। और बड़े से बड़े धनाढ्य से लेकर अति कङ्गाल और दरिद्र तक जिस प्रकार आमोदित होकर हर्ष का प्रकाश करते थे, और बड़ी २ रात तक इङ्गलैंड के नगरों और ग्रामों में हर्ष का जशन मचा रहता था, उसका हम कोई चिन्ह वा प्रकाश अपने देश और देश वासियों के भीतर नहीं पाते। इस परस्पर सम्बन्ध बोध का कोई अंश भी हमारे भीतर वर्तमान नहीं है। हम सब एक हि देश के वासी होकर भी, एक हि पूर्वजों की सन्तान् कहलाकर भी, एक हि प्रकार की संस्कृति रखने और उसे पोषण करने वाले होकर भी और ऐसे २ और कई सूत्रों से बन्धकर भी हम एक दूसरे से अलग अलग और फटे पड़े हैं। हम अपने देश के भीतर इतनी बड़ी संख्या में होकर भी एक एक हि हैं, और जैसे

एकं एक के मिल जाने से एक दूसरे को बल और पुष्टि प्राप्त होती है, वह हमें प्राप्त नहीं होती, क्योंकि हम एक दूसरे से अलग अलग पड़े हुए हैं। और जैसे सूत का एक २ कच्चा धागा अति दुर्बल और क्षुद्र होता है, किन्तु उन्हीं क्षुद्र धागों को मिलाकर बाट देने से ऐसा दृढ़ रस्सा बन सकता है, कि जिस से एक २ बड़े हस्ती तक को बान्ध सकते हैं; इस प्रकार का कोई बल हमारे भीतर उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि हम सब बहुत से होकर भी वास्तव में एक एक हि हैं। हम चाहे लाखों की संख्या में किसी तीर्थ स्थान पर एकत्र हो जावें और सहस्रों और लाखों किसी नगर में बसते हों, हम अपने सम्बन्ध की अवस्था के विचार से एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। हम चाहे संख्या में सहस्र हों चाहें लाख हों और चाहे करोड़ हों, परन्तु हम एक दूसरे से फटे हुए पड़े हैं। किसी लक्ष्य को लेकर एक दूसरे से नहीं मिलते। माना कि यूरोपियन लोगों का परस्पर मेल अधिक तर केवल सांसारिक लक्ष्यों को लेकर हि है, परन्तु हमारे यहां तो किसी साधारण हितकर लक्ष्य को लेकर भी नहीं मिलते। यदि किसी तीर्थ आदि में जाते हैं, तो भी किसी साधारण हित के लक्ष्य को लेकर नहीं मिलते। यहां तक कि यदि उस तीर्थ का मार्ग कठिन और दुर्गम है, तो भी प्रत्येक जन भिन्न २

उस कठिनता को सहकर अपने घर को लौट आता है ; और कभी यह सारे यात्री मिलकर आपस में ऐसा विचार नहीं करते कि किसी प्रकार उस कठिनता का निवारण कर सकते हैं वा नहीं ।

आह ! इसी देश की भूमि से उत्पन्न हुए २ पशु जगत् में तो फिर भी ऐसे जीव पाए जाते हैं, जो परस्पर के हित के लक्ष्य को लेकर एक दूसरे के साथ बन्धते हैं, और परस्पर के मेल से एक बलवान जत्था बनाते हैं; परन्तु हाय उसी भूमि से उत्पन्न हुए २ मनुष्य उन हितकर ओंघों के विचार से शून्य अवस्था में पड़े हुए हैं। कितने हि हैं, कि जिन्हों ने मधु मक्खियों के छत्ते को देखा होगा, कि वह सब मिलकर काम करती हैं। कोई रानी बनकर, कोई काम करने वाली बनकर और कोई और क्रिया करके सभी उस छत्ते की रक्षा करती हैं। और यदि कोई शत्रु उन पर आक्रमण करे, तो वह सब की सब मिलकर उस शत्रु पर टूट पड़ती हैं, और उसकी बहुत दुर्गति कर देती हैं। यहां तक देखा गया है, कि मक्खियों के एक २ जत्थे ने दलबद्ध होकर मनुष्यों को परास्त कर दिया है, और उनके चलने के मार्ग तक को बन्द कर दिया है।

वाह ! इस जत्थे के भीतर कितना सौन्दर्य्य और कितना बल ! परन्तु दूसरी साधारण मक्खियां

हैं, कि जो घरों में उड़ती फिरती हैं, उन में से एक मक्खी को मारो, तो क्या दूसरी उसके कारण शत्रु पर आक्रमण करेंगी ? कदापि नहीं। दोनों हि मक्खियां हैं, परन्तु प्रकृति का कितना भेद है। आपस में बान्धने वाले सम्बन्ध सूत्रों का कितना भेद है। हमारी अवस्था ठीक दूसरी प्रकार की नीच मक्खियों की न्याई है। हमारी अपेक्षा तो भिड़ों के नत्थों में भी अच्छा मेल है। यहां तक कि हमारे देशों में कहलाने वाले धर्म्म को लेकर भी जो मिलते हैं, वह भी एक दूसरे से कितने फटे रहते हैं। एक दूसरे से कितने प्रमाद की अवस्था में रहते हैं। हां हम किसी साधारण हित के लक्ष्य को लेकर भी दल बध नहीं हो सकते। और उसका फल यह है, कि हम किसी भी साधारण हित के कार्य्य को लेकर, अर्थात् धर्म्म को लेकर, विद्या को लेकर, जातीयता को लेकर, देश उन्नति को लेकर, देश के शुभ और अशुभ को लेकर सुन्दर रीति से एकत्र नहीं होते। उसका फल यह है, कि इन सारे हि अंगों में देश की बहुत बड़ी हानि हो रही है। देश के कितने हि कार्य्य हैं, कि जो बहुत से जनों के आपस में एकत्र होने पर हि भली भांत हो सकते हैं, और यदि बहुत से जन एकत्र न हों तो अच्छी प्रकार नहीं हो सकते।

इसके भिन्न सब जनों के भिन्न २ पड़े रहने से कोई जातीय या देशी बल भी पैदा नहीं होता। सारा

देश एक बड़े परिवार की न्याई है। जैसे किसी परिवार के लोग यदि आपस में एक दूसरे से फटे रहें, तो जहां कितने हि पारिवारिक कार्य्य अधूरे पड़े रहते हैं, वहां उस परिवार का कोई पारिवारिक बल नहीं पैदा होता और यदि उस परिवार के लोग विचार करके देखें तो वह समझ सकते हैं, कि यदि उन सब का आपस में मेल रहे, तभी उन सब का बल अधिक होता है, और तभी वह परिवार बलवान परिवार बन सकता है। एक दूसरे से फटे रहकर वह उन्नति नहीं कर सकते। यही दशा देश और जाति के बल और उन्नति की है। परन्तु हमारी वर्तमान अवस्था क्या है? यहां पर एक विदेशी तो जंगल में निश्चिन्त होकर फिर सकता है, और उसे कोई भय नहीं होता क्योंकि उसे अपनी पीठ के पीछे लाखों और करोड़ों का दल दिखाई देता है। वह यह जानता है, कि यदि मुझ पर कोई थोड़ा सा भी हाथ उठाएगा, तो उसके लाखों हि देशवासी उमड़ पड़ेंगे; और उस समय तक चैन नहीं लेंगे, कि जब तक उसके सम्बन्ध में अपनी पूरी २ तस्सली नहीं करलेंगे; कि जिस से फिर उनके किसी जाति जन पर कोई ऐसा वार न कर सके। परन्तु इसकी तुलना में हमारे देश की क्या अवस्था है?

यहां पर यदि हमारा कोई देशी जन किसी विदेशी

के हाथ से औरों के सामने भी पिट रहा हो, तो भी यह आशा नहीं कि उसका कोई साथ दे। सब या तो इधर उधर भाग जाएंगे या खड़े तमाशा देखते रहेंगे। फिर ऐसे जनों में कोई बल और उत्साह कहां से आ सकता है। जब तक देश को अपना एक परिवार न समझा जावे ,जब तक यह उपलब्ध न किया जावे, कि हमारे देश के शुभ वा अशुभ में हि हमारा शुभ वा अशुभ है और उसकी उन्नति में हि हमारी उन्नति है और उसकी हानि में हमारी हानि है, तब तक हमारा देशीय हित और कल्याण नहीं हो सकता। परन्तु शोक! इस स्वदेशता के भाव का हमारे यहां कितना अभाव है। यहां पर यदि हम देश हित के लिए कोई शुभ कार्य्य करना भी चाहें, तो भी उसे पूरा करना कठिन हो जाता है, क्योंकि उस में कोई साथ देने वाला नहीं मिलता। और कार्य्यों को छोड़कर यदि अपने देव समाज सम्बन्धी हितकर कार्य्यों को हि देखें, तो हम उपलब्ध कर सकते हैं, कि धन के अभाव से कितने हि कार्य्य अधूरे पड़े हुए हैं। इसी धन के अभाव से कितनी हि पुस्तकें नहीं छापी जा सकती, प्रचार के लिए कितने हि सफर नहीं किए जा सकते, देश हित के कितने हि साधारण कार्य्य नहीं किए जा सकते। समाज का यदि कोई कर्म्मचारी अपनी रोगी अवस्था निवारण

करने के लिए अथवा स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए कोई सफर करना चाहे, तो नहीं कर सकता। यहां जो लोग सत्संग के लिए आते हैं, अथवा प्रधान कार्य्यालय सम्बन्धी जो कार्य्य यहां पर हो रहा है, और उसके लिए जिन कर्म्मचारियों को निवास करना पड़ता है, उनके लिए धन के अभाव के कारण हम कोई उपयोगी स्थान नहीं बना सकते। और एक हमारे हि कार्य्य का यह हाल नहीं है, किंवा जिधर दृष्टिपात करें उधर हि यही अवस्था अधिक वा न्यून रूप से छाई हुई है। अपेक्षा कृत देश के निर्धन होने पर भी यद्यपि देश में बहुत से लखपति और करोड़ पति, बहुत से राजे और महा राजे वर्तमान हैं, तो भी मिस्टर टाटा के सिवाय हम ने कभी नहीं सुना कि किसी ने इतना धन देश हित के लिए अर्पण किया हो। नाम के लिए, उपाधि के लिए और विषय विलास के लिए तो बहुत सा धन व्यय होता हुआ देखते हैं; परन्तु देश की मूर्खता के निवारण के लिए, देश की शिल्प और वैज्ञानिक शिक्षा सम्बन्धी न्यूनता के निवारण के लिए, उसकी सामाजिक वा नैतिक दुरावस्था के निवारण करने के लिए, अथवा उसकी शासन प्रणाली को उचित और श्रेष्ठ बनाने के लिए उतना धन प्राप्त नहीं होता। ऐसे कार्य्यों के लिए दलबद्ध होकर काम करने का कोई भाव भी पाया नहीं जाता और इस में क्या सन्देह है, कि हमारे

अभाव और हमारी न्यूनताएं हमें नीचे ले जा रही हैं, और ऊपर नहीं आने देतीं। देश हित के भाव से उदासीन रह-कर और देश की उच्च गति से विपरीत चाल रखकर हम कदापि उसके हानि जनक फलों से बच नहीं सकते और इसीलिए हम करोड़ों होकर भी जाति हित के विचार से नीच अवस्था में पड़े हुए हैं। हम एक देश के रहने वाले होकर भी कोई देशी बल नहीं रखते, और न हि हम एक संगठित जाति (nation) की पदवी रखते हैं। हमारा देश एक है, परन्तु देशगत हमारा लक्ष्य एक नहीं है। देश की धार्म्मिक अवस्था को लेकर, देश की मान्सिक अवस्था को लेकर, देश की आर्थिक अवस्था को लेकर, देश की सामाजिक और राजनैतिक अवस्था को लेकर हमारा कोई विचार नहीं, कोई यत्न नहीं, कोई चेष्टा नहीं, फिर हमारा देशी बल कहां से आए और देशीय तेज कहां से बढ़े। और कई देशों में स्वदेशता का यह उच्च भाव आ गया है, और इसीलिए वह कितने हि अंगों में उच्च और श्रेष्ट बन रहे हैं, और नाना अंगों में विशेष उन्नति लाभ कर रहे हैं। देश देशांतरों में भ्रमण करते हैं, और अपने देश के बल को बढ़ाने के उपाय अवलम्बन करते हैं। एक २ जन देश हित का कोई उपाय सोचता है और देश का देश उसका साथ देने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। एक कहता है, कि मैं

एक ऐसे स्थान को जाकर ढूंढूंगा, कि जहां आज तक कोई नहीं गया और सारा देश उसका साथ देने के लिए तैयार हो जाता है। वहां बहुत शीत है, वहां पहुंचना बहुत कठिन है, वहां रास्ते में समुद्र आते हैं, हिम अथवा बरफ़ के पहाड़ों के पहाड़ चीरने पड़ते हैं, परन्तु देश के भीतर से यह शब्द निकलता है, कि चाहे कुछ हि हो और कितना हि धन लगे, और कैसा हि परिश्रम करना पड़े, हम उस पर जय लाभ करेंगे। ओह! मनुष्य एक छोटा सा जीव, एक क्षुद्र काय और बल रखने वाला जीव, परन्तु दलबद्ध होकर वह पर्व्वतों को चीरता है, और बड़ी २ नदियों पर पुल बांधता है, और समुद्र को अपना दास बनाता है, और उसके इस प्रकार के एक २ कार्य्य को देखकर मनुष्यत्व की महानता दिखाई देती है।

आहा! मनुष्य दलबद्ध होकर क्या कुछ नहीं कर सकता। परन्तु शोक! कि कितने हि कारणों से हमारे देश वासियों के भीतर ऐसा उत्साह और ऐसी आकांक्षा हि वर्त्तमान नहीं है, कि जिस से वह देश हित के किसी अंग में उच्च गति और बल लाभ करने के आकांक्षी हों। किसी कठिनता को परास्त करने के लिए, और किसी प्रतिकूल अवस्था पर जय लाभ करने के लिए उनके भीतर उत्साह पाया नहीं जाता। धर्म्म मूलक उच्च गति का

करना तो कहीं रहा, वाह्यक पदार्थों के लाभ करने के लिए भी उत्साह हीन शोचनीय अवस्था चारों ओर छाई हुई है। अब भी हमारे देश के भीतर एक २ ऐसा शिल्पी जन पाया जाता है, कि यदि वह यथोचित रूप से परिश्रम करे तो वह हज़ारों रुपया कमा सकता है; परन्तु वह चार आने वा आठ आने हि कमाकर संतुष्ट है, और अधिक विचार वा कार्य्य करना नहीं चाहता। देश में चारों ओर सब प्रकार की उर्द्धगति की ओर से एक आश्चर्य्य प्रमाद छाया हुआ है। और जीवन के सब अंगों में नीच अवस्था रखकर हमारे देशवासी संतुष्ट और प्रसन्न देखे जाते हैं। इस प्रकार सारे देश के भीतर गहरी दृष्टि मारकर देख सकते हैं, कि वह कितना नीचे चला गया है और निरुत्साही और उच्च आदर्श हीन हो गया है।

ऐसी दुरावस्था के लाने में और कई कारणों के भिन्न हमारे देश की कितनी हि हानि जनक प्रथाओं और मिथ्या मतों, विशेषता जाति भेद और वेदान्त मत ने बहुत काम किया है। वेदान्त मत ने हम को सिखाया, कि यह सारा संसार तो माया और केवल स्वप्न है, वास्तव में यह कुछ नहीं है। सब दुख सुख, सब शीत और उषता सब मिथ्या है, हानि और लाभ सब भ्रम है। हम उन सब बातों से निर्लेप हैं। मानो जो साक्षात् है,

उसे कल्पित बना दिया और जो प्रत्यक्ष है, उसे भ्रम निश्चय करा दिया। मनुष्य जीवन को एक स्वप्न और इस पृथिवी को एक सरांय बताकर इस जीवन और इस की आवश्यकताओं को भुला करके पूर्ण रूप से निरुत्साही और निकम्मा कर दिया। ऐसी मिथ्या में ग्रस्त होने पर जाति के भीतर से उत्साह नष्ट हो गया। संग्राम करने का भाव जाता रहा, और अति भयानक और जातीय प्राण संघातिक प्रमाद और उदासीनता का राज्य छा गया।

जाति भेद की अनुचित शिक्षा ने हमें एक दूसरे से फाड़ दिया, एक दूसरे से अलग कर दिया, घर २ में हि एक दूसरे के शत्रु खड़े कर दिए। यह कौन है ? यह किसी पलटन में सिपाही है, अथवा किसी विचारालय (अदालत,में चपड़ासी है, अथवा किसी हाकिम का(चाहे वह किसी अन्य जाति और देश का हो) अरदली होकर उसका घोड़ा पकड़ने और उसका बोझा उठाने का काम करता है,परन्तु फिर भी वह अपनी 'ज़ात' की डींग मारता है, और क्या उस हाकिम को और क्या और जनों को अपने से नीच अनुभव करता है। यह कौन है ? यह धर्म्म प्रचार वा उपदेश का काम करते हैं, अथवा किसी पाठशाला में पढ़ाते हैं, तो भी यदि उन से पूछा जाए, कि तुम कौन हो, तो वह कहते हैं हम तरखान (लकड़ी

का काम करने वाला) अथवा बनिया (वणिज करने वाला) अथवा जाट (खेती का काम करने वाला) है। और यदि कोई जाट का लड़का लकड़ी घड़ने का काम करने लग जाए, अथवा वणिज व्योपार का काम करने लग जाए, तो वह तरखान अथवा बनिया नहीं कहलाता। यह सब कितना मिथ्या, कितना Humbling और कितना हानि कारक है? ऐसे मिथ्या भेदों ने जाति को फाड़कर टुकड़े२ कर दिया, और फिर केवल जाति भेद पर भी बस नहीं किया गया, किंवा एक २ जाति के भीतर फिर और बीसियों और सैकड़ों प्रभेद हो गए हैं। यदि तुम्हारे कोई प्राचीन पुरुष सरस्वती नदी के तट पर रहते थे, तो तुम "सारस्वत" ब्राह्मण होकर भी उन ब्राह्मणों से भिन्न हो, कि जिन के कोई प्राचीन पुरुष "गौड़" नगर अथवा "कान्यकुब्ज" (कन्नौज) में वास करते थे, और अब चाहे तुम्हारा एक भाई कनौज नगर में भी रहे, तो भी वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण नहीं हो सकता और वह लोग जो अब कनौज में नहीं रहते, अपने आप को "कान्यकुब्ज", और दूसरे को "सारस्वत" कहकर और समझकर एक दूसरे से भिन्न २ हुए रहेंगे। कितना मिथ्या प्रभेद और कितनी कल्पित रचना!! ऐसी २ मिथ्या कल्पनाओं और मिथ्या मतों ने हमारी जाति का नाश कर दिया, हमारे देश का नाश कर दिया।

एक ओर स्वदेशता के आवश्यक बोध के अभाव ने हमारे देश की यह दुर्दशा करदी है, दूसरी ओर यूरोप आदि के जिन देशों में यह स्वदेशता का भाव पाया भी जाता है, वहां पर भी किसी उच्च लक्ष्य के सन्मुख न होने के कारण, उस से क्या फल उत्पन्न हो रहे हैं, और वह लोग किस उद्देश्य को लेकर दलबद्ध होते हैं ? केवल धन धरती और ऐश्वर्य्य उनका लक्ष्य है। इस लक्ष्य को सन्मुख रखकर ऐसे देश के लोगों की ओर से और देशों के रहने वालों पर भयानक अत्याचार और पाप हो रहा है। हां चीन देश के भीतर ऐसे लोगों के हाथ से जितना हाहाकार मचा हुआ है, जितना भयानक दुराचार हो रहा है, उसका दृश्य जितना शोचनीय और हृदय को कम्पायमान करने वाला है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा स्वदेशता का भाव हमारे भीतर आ भी जाए, तो भी वह किस काम का ? जिस गति पर चलने से मनुष्य हिंसक पशुओं से भी अधिक नीच और हानि जनक बन जाए, वह गति निश्चय उसके लिए विनाशकारी गति है, इसलिए ऐसी स्वदेशता का भाव हमारा लक्ष्य नहीं हो सकता।

यहां पर है स्वदेश यज्ञ और स्वदेश व्रत की विशेषता। जिस देव शास्त्र की शिक्षा के अनुसार इस हितकर यज्ञ

का साधन किया जाता है, उस में जिस उच्च लक्ष्य को लेकर देश और देश वासियों के साथ अपने सम्बन्ध को स्थापन करने की शिक्षा वर्तमान है, वह लक्ष्य जीवन दायक और हितकर है। उसके द्वारा जहां एक ओर किसी की अनुचित हानि नहीं होती, किसी के उचित अधिकार को भंग नहीं किया जाता, वहां दूसरी ओर आन्तरिक जीवन के उच्च विकास के साधन को मुख्य रखकर देश का सर्वाङ्ग हित और कल्याण साधन होता और हो सकता है। हमारे हां यह शिक्षा दी जाती है, कि यह मनुष्य जीवन सत्य है और इसके सम्बन्ध भी सत्य हैं, और उसकी हानि और लाभ भी सत्य है। जैसे एक २ मनुष्य नीच वा उच्च सम्बन्धों में बन्धकर और नीच वा उच्च गति पर चलकर विनष्ट वा विकासित होता वा हो सकता है. वैसे हि एक २ देश और जाति का जीवन भी अनुकूल वा प्रतिकूल सम्बन्धों के अधीन होकर उच्च वा नीच होता वा हो सकता है। और जैसे प्रत्येक मनुष्य का यह मुख्य कर्तव्य है, कि वह अपने आप को नीच गति से बचाए, और अपने जीवन की विनाश से रक्षा करे, वैसे हि एक २ देश और जाति के जनों का यह कर्तव्य है, कि वह अपने देश और अपनी जाति को अधोगति से बचाएं और उसे विनष्ट न होने दें। परन्तु देश का सच्चा हित विशुद्ध उच्च भावों के बिना नहीं हो

सकता, बिना स्वार्थ परता के विनाश और सात्विक भावों के विकास के नहीं हो सकता। यदि यूरोप आदि देशों की देखा देखी केवल उसी प्रकार के नीच सुखों और नीच लाभों को सन्मुख रखकर और उच्च लक्ष्य विषयक ज्योति से विहीन और वंचित रहकर कोई जन स्वदेशता की पुकार मचाना आरम्भ करे, तो वह भी जैसा ऊपर कहा गया है, नीच फल उत्पन्न करने और हानिकारक होने के बिना नहीं रह सकता। इसलिए आवश्यक है, कि उच्च लक्ष्य का, जीवन दायक लक्ष्य का सच्चा ज्ञान लाभ किया जावे, और उस लक्ष्य को सन्मुख रखकर देश हित के लिए अनुराग उत्पन्न और वर्धित किया जावे। ऐसे देश हित के साधन में देवात्मा की ज्योति के द्वारा तुम्हें अपनी जो २ नीच रुचियां और नीच प्रवृतियां प्रतिबन्धक प्रतीत हों, जो २ नीच वासनाएं, तुम्हें देश के लिए हितकर प्रमाणित होने के स्थान में, उसके लिए हानिकारक और दुखदाई प्रमाणित करती हों, उन से मोक्ष लाभ करने के लिए विधेय साधन किए जावें, तभी और तभी तुम स्वदेश यज्ञ को प्रकृत साधन के द्वारा जीवन पथ में उन्नत हो सकते हो। तभी तुम्हारा जीवन अपने देश के लिए सफल और सार्थक हो सकता है, और तभी तुम अपने जीवन से यह साक्षी पा सकते हो, कि तुम ने अपने देश का अन्न

और वायु भक्षण करके उसे वृथा नहीं गंवाया किन्तु सच्चे देशानुरागी होकर और देश की सेवा में अपना जीवन व्यतीत करके उसे कुछ न कुछ उन्नत और श्रेष्ठ बनाने में कृतकार्य्य हुए हो। शोक है ऐसे मनुष्य के जन्म पर जिस ने अपने देश में जन्म पाकर अपने देश के गौरव को पहले से अधिक नहीं कर दिया। ऐसा हो, कि तुम सब के भीतर इस प्रकार का स्वदेश अनुराग उत्पन्न हो और वह तुम्हारे हृदय पर अधिकार लाभ करके तुम्हें देश की उच्च से उच्च सेवा में प्रविष्ट कर सके और तुम्हारे जीवन से उच्च से उच्च फल उत्पन्न हों, और तुम स्वदेश यज्ञ स्थापन कर्ता के साथ आवश्यक धर्म्म सूत्रों के साथ बन्धकर उस जीवन दायनी ज्योति और शक्ति को लाभ कर सको कि जिस से तुम प्रकृत रूप से स्वदेश यज्ञ और स्वदेश व्रत का अति हितकर और कल्याणकारी साधन करने के योग्य हो सको। मेरा ऐसा आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त हो, और तुम्हारे और सहपन्थी जहां २ आज के दिन स्वदेश व्रत का साधन कर रहे हैं, उन्हें भी ऐसा हि आशीर्वाद प्राप्त हो।

स्वदेश व्रत के अवसर पर आशीर्वाद।

(जीवन पथ, श्रावण १९६१ वि०)

शुभ के लिए, हित के लिए, तुम्हारे भीतर आकांक्षा जाग्रत हो, हित कामना से विहीन रहकर भारत वासी हज़ारों वर्ष से नाना प्रकार की अधोगति की अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं। भारत वासियों ने शुभ नहीं चाहा, हित नहीं चाहा। हित क्या है, शुभ क्या है, और कब और किस प्रकार लाभ होता है, इस पर उन्हों ने विचार तक नहीं किया। साधारण पशुओं की न्याईं उत्पन्न होकर, साधारण पशुओं की न्याईं प्रति पालित होकर, उन्हों ने साधारण शारीरिक जीवन निर्वाह करना हि यथेष्ट समझा; इसीलिए वह केवल यहीं नहीं, कि साधारण पशुओं के जीवन से ऊपर नहीं हो सके, किन्तु कई अवस्थाओं में वह उनकी अपेक्षा भी निकृष्ट होगए। तब ऐसा हो, कि वह आविर्भाव जो इस देश में आत्माओं को नीच जीवन से उद्धार देने और उन में उच्च जीवन विकसित करने के लिए हुआ है, और जिस आविर्भाव के भीतर वह सब देव शक्तियां वर्तमान हैं, जिन के प्रभाव आत्माओं के भीतर प्रवेश करके और उन्हें पापाचार से हटाकर उन में सच्चे शुभ की आकांक्षा जाग्रत कर सकते हैं, उसके आविर्भूत होने का उद्देश्य सफल हो।

तुम में और हमारे अन्य देश वासियों में जो २ ऐसे अधिकारी आत्मा हों, कि जिन के भीतर से उच्च जीवन का अनुराग जाग सकता हो, उनके हृदय में यह अनुराग प्रकृत रूप में जाग्रत हो, तभी हमारे देश वासी अपनी महा अधम और महा अधोगति की अवस्था से परित्राण पा सकते हैं, और शक्तिशाली होकर उच्च सुख और गौरव का मुंह देख सकते हैं, और सच्ची और सब प्रकार से कल्याणकारी उन्नति लाभ कर सकते हैं। ऐसा हो, कि हमारे देश वासियों में यह परम वांछनीय परिवर्तन आए और वह उच्च और हितकर जीवन लाभ करें।

स्वदेश यज्ञ के दिनों में गंगा नदी के विषय में चिन्तन।

(लेख ज्येष्ठ सं० १९७३ वि०)

(१५ मई सन् १८९६ ई०)

हे हिमालय की पुत्री गंगे ! तुम अपना मनोहर रूप हमारे सन्मुख प्रकाशित करो, और हमारे हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करो। तुम यदि अपने पिता हिमालय के घर से निकलकर हमारे देश की भूमि में प्रवेश न करतीं, तो अब तक तुम्हारे द्वारा हमारे देश का जो २ उपकार हुआ है, वह कहां से होता ? हमारे

वह पूर्व्व पुरुष जो आज से हज़ारों वर्ष पहले इस देश में निवास के लिए आए थे, और पहले पहल पंजाब देश की एक वा दूसरी नदी के किनारे पर अपने बहुत से निवास स्थान स्थापन करके आगे बढ़ रहे थे, तब सब से बढ़ चढ़कर तुम्हीं ने उन्हें अपने प्रति आकृष्ट किया। तुम्हीं ने उन्हें अपनी शोभा के द्वारा धीरे २ सब से बढ़कर मोहित किया। इसीलिए तुम्हारे तट पर वास करना उन्हों ने अपना बहुत बड़ा सौभाग्य समझा।

हे हमारी जाति की मित्रा गंगे! विगत सहस्र वर्षों के वृत्तांत को छोड़कर इस वर्तमान काल में भी तुम्हारे तटस्थ नगरों के कितने नगर वासी; हां, शत २ और सहस्र २ नगर वासी, ऊषा काल में और कितने हि उस से भी पहले तुम्हारे जल से अपने शरीर को शुद्ध करके, तुम्हारे तट पर अपने एक वा दूसरे प्रकार के विश्वास के अनुसार धर्म्म साधन करते हैं। प्रातःकाल का सुहावना समय और तुम्हारे एक वा दूसरे घाट पर सहस्र २ नर नारियों का स्नान के लिए एकत्र होना और उन में शत २ जनों का अपने २ विश्वास के अनुसार तुम्हारे तट पर बैठे हुए पूजन वा पाठ करना कैसा सुन्दर दृश्य! तुम्हारे तट पर एक २ स्थान हमारी जाति के लोगों के बैठने, स्नान और पूजन करने आदि के लिए कैसा रमणीय स्थान!! तुम्हारे तट पर आबाद होकर

हमारे देश का एक २ नगर जो शोभा पा रहा है, वह शोभा तुम्हारे बिना उसे कहां से प्राप्त होती ? सहस्र २ मनुष्य और चौपाए और पक्षी तुम्हारे जल को अपनी विविध आवश्यकताओं के लिए व्यवहार करके जो २ सुख पाते हैं, वह सुख उन्हें कहां से मिलता, यदि तुम उन्हें अपने इस जल का दान करने के लिए प्रवाहित न होतीं।

प्रिय गंगे ! तुम्हारे तट के एक २ रमणीय स्थान में बैठकर नाना जन जो कुछ आराम पाते, और विद्यार्थी गण जो कुछ विद्या उपार्जन करते हैं, वह सब तुम्हारे बिना कहां से करते, और उसके अतिरिक्त तुम्हारे जल से साक्षात् रूप से अथवा तुम से नहर आदि काटकर उसके जल से हमारे कृषक लोग क्या अपने और क्या अन्य लाखों जनों और जीवधारियों के लिए जो विविध प्रकार का अनाज और पशुओं के लिए चारा उपार्जन करते हैं, वह सब कहां से उपार्जन करते ? और नौका आदि के द्वारा तुम्हारे तटस्थ एक वा दूसरे नगर वासी जो २ वाणिज्य करते हैं, और उसके द्वारा बहुत कुछ लाभ उठाते हैं, वह सब लाभ तुम्हारे बिना उन्हें कहां से मिलता ? और कितने हि लोग जो नौका में बैठकर तुम्हारे भीतर वायु सेवन करते हैं, अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा करते हैं, वह सब और इनके

भिन्न और कई प्रकार के उपकार जो हमारे देश वासी केवल तुम्हारे द्वारा लाभ करते हैं, वह उन्हें कहां से प्राप्त होते। उनके भिन्न पशु जगत् के हज़ारों छोटे और बड़े जीव और उद्भिद् जगत् के हज़ारों पौदे तुम्हारे जल से कई प्रकार का उपकार पाते हैं, यह सब कहां से पाते, यदि हे गंगे! तुम हमारे देश में वर्तमान न होतीं?

हे गंगे! तुम अपने इन नाना उपकारों के विचार से अवश्य हमारी स्तवनीय हो। तुम धन्य हो! तुम धन्य हो! तुम्हारे इसी मनोहर रूप को देखकर अथवा अपने किसी कल्पित विश्वास से परिचालित होकर यदि हमारे लाखों देश वासियों ने तुम्हारे तट पर वास करना और मरना और अपने सम्बन्धियों की मृत देहों को जलाना और उनकी भस्म वा बची खुची हड्डियों को तुम्हारी गोद में सौंपना अपना सौभाग्य समझा, तो इस में कोई आश्चर्य्य की बात नहीं।

प्रिय गंगे! तुम्हारे तटस्थ स्थानों के शत २ निवासियों को छोड़कर भारत वर्ष के प्रत्येक प्रदेश और उस से बाहर और कितने हि देशों के रहने वाले हिन्दू गण तुम्हारे साथ अपने सम्बन्ध को एक वा दूसरे प्रकार से अनुभव करते हैं। यही कारण है, कि न केवल स्वदेशी, वरन विदेशी हिन्दू जाति के लोगों को भी तुम एक वा

दूसरे समय में अपने दर्शन के लिए आकृष्ट करते हो। ऐसा हो, कि हम भारत वासी होकर और अपने देश के साथ तुम्हारे गहरे सम्बन्ध को अनुभव करके और तुम्हारे उपकारों को सन्मुख लाके खुद भी परोपकारी बने और तुम्हारी न्याई अपने देश के मनुष्यों और पशुओं आदि के लिए सेवाकारी होकर अपने अस्तित्व को धन्य २ और कृतार्थ करें।

स्वदेश यज्ञ के दिनों में हिमालय पर्वत के विषय में चिन्तन।

(२२—२३ मई सन् १८९६)

उच्च हिमालय! तुम सचमुच हिम अर्थात् बर्फ के आलय हो। तुम्हारी वह नाना पहाड़ियां हमारे सन्मुख हैं, जिन पर समय २ में बर्फ गिरती है, और तुम्हारी उच्चतर चोटियां भी हमारे सन्मुख हैं, जिन पर बारह महीने लगातार बर्फ पड़ी रहती है। तुम अपने विशाल कलेवर के विचार से हमारे देश के एक सिरे पर हज़ारों मील तक फैले हुए ढाल की न्याई हमारे देश वासियों को कई प्रकार से रक्षा करते हो। तुम अपने ऊपर सैकड़ों और हज़ारों शिखर रखते हो। तुम्हारी सब से ऊंची चोटी की तुलना इस पृथिवी के किसी पर्वत की किसी

भेदी और पृथिवी के प्रत्येक पर्वत से बढ़कर उच्च-तर शिखर का निश्चय पवित्र अभिमान कर सकते हैं।

हे हिमालय! तुम्हारे विशाल रूप को सन्मुख ला कर हमारा हृदय आश्चर्य्य भाव से भर जाता है। तुम्हारे शरीर के एक २ अंग के मनोहर रूप पर चिन्तन करके हम तुम्हारी ओर आकृष्ट होते हैं। तुम्हारे एक २ कुंज वन की शोभा, तुम पर बड़े २ काय वृक्षों की शोभा, नाना प्रकार के विचित्र फूलों और बेलों की शोभा, और तुम्हारे भीतर के मधुर स्वर से गुनगुनाते हुए शीतल झरनों की शोभा, और एक २ अति एकान्त और रमणीय स्थान की शोभा, हमारे हृदय को विशेष रूप से आकृष्ट करती है।

हिमालय! तुम्हारा इस प्रकार का एक २ रमणीय और एकान्त स्थान हमारे विचार साधन के लिए-विशेष कर आत्म विचार के लिए-कैसा उपयोगी! और तुम्हारी एक २ एकान्त गुफा हितकर ध्यान के लिए कैसी अनुकूल!

शोभायवान हिमालय! तुम ने हमारी जाति के कितने मननशील और ध्यान परायण जनों को अपनी गोद में जगह दी है, और उनके साधन में सहायता की है। तुम्हारी लुभाने वाली गोद में बैठकर हमारे जिस किसी चिन्ताशील पूर्व्वज ने किसी विषय में कोई सत्य

देखा है, उसके विचार से भी तुम निश्चय हमारे धन्य-वाद के पात्र हो। तुम ने एक या दूसरे सुशोभित और स्वास्थ्यकर स्थान और अच्छी वायु के द्वारा जिस २ को कुछ भी शान्ति दी है, और जिस २ का कुछ भी रोग निवारण किया है, उन पर तुम्हारे इस हित को सन्मुख लाकर हम तुम्हें धन्य २ कहते हैं। हिमालय ! तुम धन्य हो !!

हे हमारी पृथिवी के शिरोमणि हिमालय ! तुम अपने सैकड़ों कोस व्यापी शरीर के ऊपर लत्त २ वृत्तों को रूओं की तरह धारण किए हुए हो। तुम्हारे सुविस्तृत कलेवर पर वर्तमान लाखों वृत्तों में कितने वृत्त ऐसे हैं, कि जो अपने काष्ट के द्वारा, कितने हि सुमिष्ट और सुस्वादु फलों के द्वारा, और कितने हि और प्रकार से हमारा हित साधन करते हैं। तुम्हारा यह हित केवल मनुष्यों तक हि नहीं पहुंचता, किन्तु उनके अतिरिक्त तुम सहस्र२ और लत्त २ पशु जगत् के छोटे और बड़े जीवों का भी कल्याण करते हो।

हितकर हिमालय! वायु मंडल तुम्हें अपना उपयोगी स्थान पाकर तुम्हारी पहाड़ियों पर करोड़ों मन बर्फ़ की हर साल वर्षा करता है। तुम भी इस सारी हिम को खुद हि हज़म नहीं कर लेते, किन्तु उसके पिघलने पर उसे नाना नदियों के द्वारा जल रूप में प्रवाहित करके

हमारे देश के नाना प्रदेशों का विविध रूप से कल्याण करते हो। तुम्हारे इस जल को सतलुज और रावी, जेहलम और व्यास, गंगा और यमुना, सिंध और ब्रह्मपुत्रा आदि बड़ी २ नदियां सैकड़ों कोस तक फैलाकर लाखों मनुष्यों और पशुओं और नाना प्रकार के पौदों और वृक्षों की पालना में सहायता करती हैं।

हे त्रिविध प्रकार से हितकारी हिमालय! ऐसा हो, कि हम तुम्हारे और तुम जिस हमारे देश और भौतिक जगत् के अंग हो, उसके साथ अपने गाढ़ सम्बन्ध को अनुभव करें। हमारे देश के नाना प्रकार के कल्याण के साथ तुम्हारे अस्तित्व का जिस २ भांत से सम्बन्ध है, उसे सन्मुख लाकर तुम्हारे हित को उपलब्ध करें, और तुम्हारे ऐसे सेवाकारी रूप के देखने और उसके प्रति आकृष्ट होने के लिए हमें जिस उच्च ज्योति की आवश्यकता है, उसे प्राप्त होकर हम भी परोपकारी और सेवाकारी बनने में हि अपनी मनुष्यता का गौरव और अपने आत्मा का कल्याण अनुभव करें।

७—स्वास्तित्व व्रत ।

(१० अगस्त सन १६०० ई०)

शुभ कामना ।

हमारी आकांक्षा शुभ हो, शुभंकर आकांक्षी होकर ही हम शुभ लाभ कर सकते हैं । शुभ और अशुभ दोनों हमारी ओर देख रहे हैं, मृत्यु और अमृत हमारे चारों ओर वर्तमान हैं, तो भी क्या यह सच नहीं, कि अनेक जनों के भीतर ऐसा विवेक नहीं, जिस से वह जान सकें कि शुभ क्या है और अशुभ क्या ? सच्ची मृत्यु क्या और अमृत क्या ? इसलिए लाखों और करोड़ों आत्मा शुभ और अशुभ के शब्द सुनकर भी अमृत और मृत्यु के शब्द सुनकर भी विवेक न रखने के कारण शुभ के अथवा अमृत के आकांक्षी नहीं हो सकते । और इसलिए शुभ को और अमृत को प्राप्त भी नहीं कर सकते । तुम में से जिन के भीतर कुछ इस प्रकार का विवेक उत्पन्न हो चुका हो, शुभ और अशुभ का कुछ आन्तरिक ज्ञान हो चुका हो, अमृत और मृत्यु, विकास और विनाश के भीतर जो अन्तर है, उसका कुछ अनुभव हो चुका हो, वह इस समय शुभ के अभिलाषी हो, अमृत के अभिलाषी हों । काश ! तुम इस समय शुभ आकांक्षी बन सको । यह सम्मिलन शुभ सम्मिलन, यह साधन शुभ साधन, यह व्रत का दिन शुभ दिन,

परन्तु उन्हीं के लिए जो शुभ आकांक्षी हों, अथवा जिन के भीतर इस प्रकार की अभिलाषा जाग्रत हो चुकी हो। जो शुभ चाहते हों, कल्याण चाहते हों, वह इस समय बारम्बार यह आन्तरिक कामना करें, कि शुभ आए शुभ आए! कल्याण आए कल्याण आए!! हित आए मंगल आए!!!

जिन के भीतर ऐसी आकांक्षा नहीं, उनके भीतर ऐसी आकांक्षा उत्पन्न हो और उन्हें भी शुभ प्राप्त हो। हमारे भीतर शुभ की आकांक्षा हो, जो कुछ अशुभ है वह चूर्ण हो विनष्ट हो। प्रत्येक जीवन के भीतर जो कुछ अशुभ है, विनाशकारी है, मृत्यु दायक है, वह सब दूर हो। जो कुछ विकासकारी है, शुभ जनक है, मंगल जनक है, जीवन प्रद है, वह सब आए, वही प्राप्त हो।

उपदेश।

आज का व्रत स्वास्तित्व यज्ञ का व्रत है। स्वास्तित्व यज्ञ का आज अन्तिम दिन है। स्वास्तित्व का अर्थ है अपना अस्तित्व। अस्तित्व क्या? जो कुछ हम हैं, जो कुछ हमारी हस्ति है। हम क्या हैं? बाहर से देखकर अपने स्थूल शरीर को अनुभव करते हैं, कि एक चीज़ है, जिस को शरीर कहते हैं। यह भी अनुभव करते हैं, कि हम केवल शरीर नहीं, हम अपने भीतर नाना प्रकार के भाव उत्पन्न करते हैं, अथवा रखते हैं: हम ज्ञान

रखते हैं और ज्ञान प्रकाश करते है। यह शरीर सब कुछ नहीं। यूं भी हम अपने भीतर अनुभव करते हैं,कि हम शरीर नहीं और ऐसा हि हम प्रकाश भी करते हैं। मेरा हाथ,मेरा कान,मेरा पांव,मेरा सिर,मेरा पेट,जिस से हम प्रगट करते हैं, कि हम कुछ और हैं। इन चीजों को अपना प्रगट करने से प्रकाशित होता है, कि हम इन से अलग हैं। इसी को साधारण लोगों में जहां धर्म विषयक कोई ध्यान पैदा हुआ है, आत्मा कहते हैं। शरीर और आत्मा को लेकर हमारा अस्तित्व है।अब जिस शरीर और आत्मा को लेकर हमारा अस्तित्व है, क्या उस अस्तित्व की रक्षा हम को पसन्द है, क्या उसकी रक्षा हम चाहते हैं? हां,इस में क्या सन्देह है,कि हम अपने अस्तित्व की रक्षा चाहते हैं। केवल यही नहीं, कि मनुष्य अपने अस्तित्व की रक्षा चाहता है, कि जिस को कुछ पता भी हो सकता है, कि मेरा यह अस्तित्व क्या है-आत्मा क्या है और शरीर क्या है-किन्तु जिन के भीतर ज्ञान नहीं, जिन के भीतर बोध नहीं, अथवा नाना प्रकार के पशु और पक्षी, नाना प्रकार के जीवधारी,वह भी अपने अस्तित्व की रक्षा चाहते हैं। एक २ छोटे से छोटा कीट भी जब उस पर आक्रमण होता हो, तो भाग जाना चाहता है, छुप जाना चाहता है; यहां तक कि वह बुरे से बुरे जीव भी कि जो केवल विनाशकारी

हैं, केवल हानिकारक हैं, जिन की कुछ आवश्यकता भी नहीं, अपनी रक्षा चाहते हैं। यहां तक कि सांप और बिच्छु भी ध्वंस होना नहीं चाहते। सांप को मारने जाओ, तो वह भाग जाता है। किसी छेद में यदि उसका ज़रा सिर चला गया हो, तब यदि उसकी दुम पकड़कर खैंचना चाहो, तो वह ज़ोर लगाता है, कि किसी तरह बाहर न निकलूं, किसी तरह से कुचला न जाऊं। यह जैसा स्वभाविक है, वैसे हि इस यज्ञ का जो आज समाप्त होता है, यही उद्देश है, कि अपने अस्तित्व की रक्षा और उसका विकास हो। जैसे और प्रत्येक यज्ञ का उद्देश है, कि वह जिस सम्बन्धी के विषय में है, उस के सम्बन्ध में हमें जो कुछ करना उचित है, उसका हमें ज्ञान दे, हमें उसके विषय में कर्तव्य कर्मों और वर्जित कर्मों का बोध दे, जिस से वह सम्बन्धी हमारे लिए और हम उसके लिए हितकारी सम्बन्धी बन सकें; वैसे हि इस स्वास्तित्व यज्ञ का भी यही लक्ष्य है, कि हम अपने अस्तित्व विषयक रक्षा और उसके विकास का बोध लाभ करें। यह उद्देश सुन और जानकर भी क्या कोई अपने अस्तित्व की रक्षा और विकास कर सकता है? नहीं, उसका अपना अलग नियम है। शरीर की रक्षा चाह-कर भी यदि हमें खाने को न मिले, पीने को न मिले, तो हमारा शरीर सुरक्षित नहीं रह सकता। इसी कारण से पिछले दिनों हमारे देश में लाखों आदमी मर गए।

वृष्टि के न होने से अन्न उत्पन्न न हुआ, बहुत सी जगहों में पीने को पानी तक न मिला। जब आनाज हि न मिला, पानी न मिला, तो जानकर भी कि उन्हें शरीर की रक्षा करनी चाहिए वह जी न सके, किन्तु मर गए। इस समय भी मर रहे हैं।

पहले तो यह जानने की आवश्यकता है, कि हम किस वस्तु की रक्षा करें, और किस तरह से अपने आप को बचाएं? हम स्थूल शरीर रखते हैं, परन्तु क्या हम उसको सदा रख सकते हैं? नहीं रख सकते। यह शरीर चाहे भूख से मरे, चाहे किसी रोग वा पीड़ा से मरे और चाहे किसी छत के नीचे आकर मरे, वा किसी और दुर्घटना से मर जाए, यह शरीर मरने के लिए है। स्थूल शरीरधारी राजा हो वा प्रजा हो, उसकी मौत सब के लिए एक जैसी है। इस से आगे क्या है? जो मूर्ख हैं उनके लिए भी अन्धकार; जो मूर्ख नहीं, परन्तु विद्वान, धनवान, और सुसभ्य हैं, उनके लिए भी अन्धकार। उनके भीतर कई प्रकार की कल्पनाएं हैं, जिन में से एक कल्पना यह है, कि आत्मा रहता है और हमेशा रहता है। बड़े २ मत पृथिवी पर प्रचलित हैं, प्रायः वह सभी कहते हैं, कि आत्मा रहता है और शरीर ध्वंस हो जाता है। कोई उसको सदा के लिए स्वर्ग में भेजकर उसको वहां रखते हैं अर्थात् इस मत के मानने से वा इस बात के

स्वीकार से वा इस आडम्बर के धारण करने से वहां आत्मा चला जाएगा और वहां रहेगा। कोई समझते हैं, कि सदा के लिए कोई नरक स्थान है, और जो इस बात को नहीं मानते वा यह स्वीकार नहीं करते वा इस मत पर नहीं चलते, वा नहीं चलना चाहते, वह सदा के लिए उस नरक स्थान में रहेंगे। कोई समझते हैं, कि जब हम यह शरीर छोड़ेंगे, उसके बाद हम अपने कर्म्मों के अनुसार फिर इसी पृथिवी पर मनुष्य, गाए, बैल, कुत्ते, गधे, सांप, बिच्छू, बिल्ली, बकरी, वृक्ष, घास आदि का जन्म धारण करेंगे। ऐसे सब ख़याल केवल कल्पनाएं हैं। इस पृथिवी के लोग इस समय तक कल्पना आदि के द्वारा यहां तक हि पहुंच सकते थे। परन्तु यह अस्तित्व यज्ञ बतलाता है, कि जैसे शरीर के नियम हैं, वैसे हि आत्मा के भी नियम हैं। पहले लोगों की दृष्टि यहां तक पहुंची, कि विनाश और विकास के नियम केवल शरीर पर हि काम करते हैं। एक २ बच्चे को देखते हैं, कि वह बराबर बढ़ता चला आता है; हड्डी पट्ठे आदि मांस सब कुछ बलवान होता चला आता है। ऐसा हि पशुओं और वृक्षों में भी देखते हैं। इसके साथ यह भी देखते हैं, कि कोई खाते और पीते हैं, परन्तु फिर भी घटते चले जाते हैं। यहां हमारे आश्रम में एक नव युवक और उसका पिता रहते हैं,

दोनों एक साथ खाते पीते हैं, एक जगह रहते हैं, एक हि हवा में सांस लेते हैं, परन्तु फिर भी एक की ताकत बराबर बढ़ रही है और एक की घट रही है। जो बेटा है वह दिनों दिन बढ़ता जाता है, जो पिता है वह घट रहा है। जो अस्तित्व घट रहा है, यदि उसका यह क्रम बन्द न हो तो वह निश्चय नष्ट हो जाएगा, घटते२ ऐसी अवस्था को प्राप्त होगा, कि जिस को मौत कहते हैं। जैसे शरीर के विषय में हम यह दोनों बातें देखते हैं, वैसे हि आत्मा के विषय में भी देख सकते हैं। एक २ आत्मा जो दिनों दिन नीचे से नीच होता चला जाता है, वह विनाश को प्राप्त हो रहा है; और एक २ आत्मा जो उच्च से उच्च बनता चला जाता है, वह विकास प्राप्त हो रहा है। शरीर के विषय में तो लोग जानते हैं, कि शरीर के लिए बचपन का समय और, जवानी का और, और बुढ़ापे का और। वह उसके बढ़ने और घटने को तो देखते हैं, परन्तु आत्मा को छोड़ देते हैं। सारी नेचर के भीतर परिवर्तन का नियम काम कर रहा है। उसके अनुसार घटते वा बढ़ते रहना आवश्यक है। शरीर के लिए तो यह नियम माना जाता है, और उस की मृत्यु भी देखते हैं, परन्तु आत्मा के लिए मृत्यु नहीं मानी जाती। विश्व व्यापक जो नियम है, उसको आत्मा से अलग कर देते हैं, केवल इसलिए कि आत्मा के विषय में जो कुछ उनका ज्ञान, जो कुछ उनका धर्म्म, जो कुछ

उनका परलोक, जो कुछ उनका स्वर्ग, जो कुछ उनका नरक है, वह सब कुछ कल्पना मूलक है। देव धर्म्म की शिक्षा कल्पना मूलक नहीं, वह विज्ञान मूलक है। मनुष्य अस्तित्व के विषय में जो विज्ञान मूलक नियम हैं, उन पर वह स्थापित है। यह इस पृथिवी के लिए पूर्णतः नई ज्योति है। किसी ने आत्मा के विषय में आज तक ऐसा ज्ञान लाभ नहीं किया। जिन्हों ने आत्मा को माना है, उसे अविनाशी माना है, इसलिए उनके सन्मुख विनाश और विकास के दोनों नियम नहीं आए। यदि कोई आत्मा विनाशकारी नियमों के अधीन है, यदि उसकी गति नीच गति है, तो चाहे वह कुछ हि मानता रहे, वह अवश्य मर जाएगा। यदि किसी के भीतर रोग है, वह उसको माने वा न माने, यदि वह दूर न हो तो वह अवश्य उसे विनाश कर देगा। इसलिए इस सत्य से वंचित रहकर विनाश और विकास के नियमों को न पहचान कर सैंकड़ों आत्मा विनष्ट हो रहे हैं, "जीवन पथ के नेता के बिन लाखों विनष्ट होवे हैं"। तब यदि आत्मिक जीवन की रक्षा करनी हो, कि जो हमारे अस्तित्व में सत्य और सार वस्तु है, तो यह मालूम होना चाहिए, कि उसकी रक्षा कहां है और किस प्रकार हो सकती है? जो आत्मा अपनी अवस्था में सात्विक भावों को प्राप्त नहीं होता उसके भीतर उच्च गति आरम्भ नहीं होती, उसका विनाश हो जाना

अवश्यम्भावि है। यह नाना प्रकार की उच्च शक्तियां कहां से लाभ होती हैं, इसका जानना अति आवश्यक है। यदि वह लाभ न हों, तो मनुष्य किसी मत में हो, किसी विश्वास का हो, कुछ हि स्वीकार करता हो और कुछ हि अस्वीकार करता हो, धीरे २ उसका विनष्ट हो जाना, घुल २ कर मर जाना, सम्पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाना अवश्यम्भावि है। यदि यह आवश्यकता बोध हो जाए, कि हमारे अस्तित्व की रक्षा के साथ हि हमारे सब प्रकार के सुख और स्वाद सम्बन्धित हैं, तो फिर उसकी रक्षा विषयक ज्ञान पाने और उसके अनुसार चलने की आवश्यकता बोध हो। यह जान लेना यथेष्ट नहीं कि यह शरीर मर जाएगा और आत्मा रहेगा। शरीर का ज्ञान भी बड़ा ज्ञान है, उसका बोध भी बड़ा बोध है। मेडिकल कालेज में एक २ लड़के के पांच २ वर्ष व्यतीत होते हैं, हमारे डाक्टर हरनाम सिंह जी के भी पांच वर्ष लगे हैं। इन पांच वर्षों में क्या पढ़ते रहे? केवल शरीर के विषय में ज्ञान लाभ करते रहे। पेट के अन्दर क्या २ कुछ होता है। शरीर के क्या २ अङ्ग और प्रत्यङ्ग हैं, और उनका क्या २ कार्य्य है। क्योंकर एक २ रोग पैदा होता है, और क्योंकर वह दूर किया जा सकता है। इस पहलु में भी यदि अभी तक बहुत थोड़ा ज्ञान आया है, तथापि इस थोड़े से ज्ञान के लिए

भी वर्षों व्यतीत होते हैं । आत्मा का ज्ञान इस से भी कठिन है, क्योंकि वह सूक्ष्म है । उस का सारा ज्ञान सूक्ष्म है, उस सूक्ष्म ज्ञान के लिए सूक्ष्म विधि की आवश्यकता है, जो बहुत कठिन है । केवल यह कहना कि मैं आत्मा हूं, और बात है, परन्तु उसका ज्ञान पाना हो, तो उसके लिए बहुत बड़े समय की आवश्यकता है । यदि यह जानना हो कि आत्मा क्या और उसका विनाश और विकास क्या, उसकी नीच गति और उच्च गति क्या, तो यह बहुत कठिन और बहुत लम्बे समय का काम है । देव धर्म की शिक्षा इसी उद्देश्य को लेकर है । यह शिक्षा जीवन विषयक है, यदि यह पता लग जाए, कि जब तक हमारे भीतर सात्विक शक्तियां जाग्रत नहीं होवीं, तब तक हमारा कल्याण सम्भव नहीं, उच्च गति सम्भव नहीं ; यह यदि समझ में आ जाए कि कहां से और किस की शरण से यह ज्ञान और जीवन मिल सकता है, और आत्मा जो नीच शक्तियों के अधीन है, (कितने हि आत्मा यह भी नहीं जानते कि वह नीच शक्तियों के नीचे हैं; जो सेवक बन चुके हैं उन सब के लिए भी हम, यह नहीं कह सकते कि उन को नीच गति का बोध हुआ है। जिसने बचपन से मांस नहीं खाया इसलिए वह मांस नहीं खाता, इससे यह अभिप्राय नहीं कि उनको अपनी नीच गति का कोई बोध हुआ है। संस्कार के

कारण यह कहते हैं, कि ऐसा करना पाप है। असल में पाप क्या है, यह कोई पता नहीं। औरों को नीच गति का बांध कहां पैदा हो सकता है, जब अपनी हि नीच गति का बोध नहीं। ऐसी अवस्था में रहकर वह रक्षा क्योंकर पा सकते हैं) उसको क्योंकर बन से मोक्ष हो सकती है; तब आत्मा के लिए आगे मार्ग खुलने की आशा है। परन्तु ऐसी समझ रखने वाले बहुत थोड़े जन हैं, हां, ऐसी समझ वा ऐसे बोध के अधिकारी भी बहुत थोड़े हैं। कुछ दिन पहले हम एक आत्मा को एक तत्व बतलाते हैं, उसके हृदय तक कोई ज्योति की किरण पहुंचाते हैं; वही आत्मा थोड़े दिनों पीछे या तो फिर बेसुध हो जाता है, वा घमंड से भरकर हमारे पास उसके विषय में इस प्रकार वर्णन करता है, मानो वह हमें सिखलाता है। बहुत थोड़े ऐसे आत्मा हैं, कि जो इस प्रकार की अवस्था में से निकलकर सच्ची जीवन दायक ज्योति पाने के अधिकारी होते हैं; प्रत्येक इसका अधिकारी नहीं। आत्म ज्ञान, विशुद्ध ज्ञान अथवा जीवन ज्योति का कोई २ अधिकारी मिलता है। फिर उस के लाभ के अपने अटल नियम हैं। जो कुछ लाभ होगा वह नियम के अनुसार होगा। हम चाहें वा न चाहें, जो कुछ होगा नियमों के साथ होगा। किस प्रकार हमें अपने अस्तित्व का ज्ञान हो, कि हम क्या हैं, किस अवस्था में हैं?

उच्च बोध और उच्च शक्तियां क्या हैं ? और वह बोध शक्तियां हमें किसके साथ जोड़ती हैं? यह महा मूल्यवान ज्ञान पाने की आवश्यकता है। जब हमारे भीतर कोई बोध उत्पन्न होता है, तो वह हमें किसी चीज़ या जन के साथ जोड़ता है। प्यास का यदि बोध होता है तो हम पानी के साथ जुड़ते हैं, भूख का बोध होता है तो हम आहार के साथ जुड़ते हैं, खाने की वस्तु को ढूंढते हैं। अब यदि किसी के भीतर जीवन लाभ की अभिलाषा हो, उच्च गति के लाभ की आकांक्षा हो, मृत्यु से वह रक्षा चाहकर जीवन पाने का इच्छुक हो, तो उसे कहां जुड़ना चाहिए ? कौन वह ऐसा सम्बन्धी है, जहां से उसके इस बोध की तृप्ति हो, उसके सामान की प्राप्ति हो। हां, हमारी यह अभिलाषा संसार में और कहीं पूरी नहीं हो सकती। यह जीवन लाभ की अभिलाषा जीवन दाता से हि पूरी होगी। जो आत्मा अन्धकार ग्रस्त हैं, नीच हैं, अधोगति के राही हैं उनका विनाश हो जाना अवश्यम्भावी है। यह पता लग भी जाए, कि यह विकास का मार्ग है और यह विनाश का मार्ग है, यह नीच गति है और यह उच्च गति है, तो भी जब तक जो आत्मा उच्च सूत्रों की बिना पर जीवन दाता की शरण को प्राप्त नहीं होते, उनके साथ प्रीति पूर्वक बन्ध नहीं सकते ; तब तक उनका कल्याण सम्भव नहीं। शरण कौन ले सकता है ? जब

तक किसी आत्मा में आकांक्षा न हो, भूख न हो, तब तक वह आत्मा शरण प्राप्त नहीं होता। मनुष्य उस चीज़ की खोज करता है जिस की उसके भीतर चाहना हो, जिस की आवश्यकता को वह अनुभव करता हो। कितने मनुष्य ऐसे हैं कि जो बाज़ार में से वर्षों गुज़रते रह सकते हैं, कितनी चीज़ें ऐसी होंगी जो उन्हों ने कभी नहीं ख़रीदीं। कपड़े सीने की मशीन जिस दुकान पर बिकती है उस का विज्ञापन पढ़कर भी जिस को उस कल (मशीन) की ज़रूरत नहीं, वह कभी नहीं ख़रीदता, उसका नाम सुनकर भी, उस दुकान के पास से गुज़रकर भी उसे नहीं ख़रीदता। वैसे हि यदि कोई मनुष्य सुन भी ले, कि यह जीवन दाता हैं, यह आत्मिक जीवन के भण्डार हैं, यह वह सम्बन्धी हैं जो सब प्रकार का हित चाहते और करते हैं, तो भी जब तक उसके भीतर इस जीवन लाभ की गाढ़ अभिलाषा उत्पन्न न हो, तब तक वह उनके दर तक नहीं पहुंचता, उनकी शरण ग्रहण नहीं करता; प्रत्यक्ष में निकट से निकट वास करके भी आत्मिक सम्बन्ध के विचार से दूर हि दूर रहता है, और इसीलिए विनाश से रक्षा नहीं पा सकता। पानी चाहे कितना हि निकट पड़ा हो, जब तक वह हमारे भीतर न जावे, तब तक हमारी प्यास नहीं बुझा सकता। वैसे हि जीवन दाता चाहे कितने हि निकट वास करते हों, तो भी जब तक उनके साथ सच्चा

सम्बन्ध स्थापन नहीं होता, तब तक जीवन लाभ नहीं हो सकता। इस प्रकार से यदि किसी को पता लग जाए और वह जीवन दाता की शरण में आ जाए, फिर उस को लगातार उनकी नेतृत और रक्षा के अधीन रहने और चलने की आवश्यकता है। नीच गतियों से रक्षा और उच्च गतियों में विकास के लिए उनके नेतृत्व के अधीन रहने की सब से बढ़कर ज़रूरत है।

किसी यज्ञ के भीतर प्रवेश करके उसके सम्बन्ध में यदि अपने कर्तव्य कर्म्मों और वर्जित कर्म्मों का ज्ञान चाहो, अपने नाना सम्बन्धियों के विषय में अपने कर्तव्य को मालूम करना चाहो, क्योंकर कोई सम्बन्ध विनाशकारी हो जाता है और क्योंकर विकासकारी बनता है; जीवन तत्व काय है, उच्च गति और नीच गति क्या है, नेचर क्या, उसके नाना जगत् क्या और उनके साथ हमारा सम्बन्ध क्या है, यह सारा ज्ञान पाना चाहो, तो उसके लिए देवात्मा रचित देव शास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता है।

स्वास्तित्व यज्ञ और स्वास्तित्व व्रत किसी आत्मा के लिए तभी सफल हो सकता है, जब यज्ञ के दिनों में उक्त भेद को भली भान्त उपलब्ध और स्थिर किया जाए और उच्च वा धर्म्म जीवन दाता सम्बन्धी जो ज्ञान है, उसे यथेष्ट रूप से लाभ

किया जाए, उसकी तह तक पहुंच जाए। जो उच्च जीवन दाता है उसका केवल आकार हि दिखाई न दे, बल्कि उसके आन्तरिक रूप का पता लगे, और उसके साथ लगन लगे। उनकी जो कुछ महिमा है वह नज़र आवे, और उनके साथ जीवन्त सम्बन्ध स्थापन हो। ऐसी विशुद्ध आकांक्षा फूट आवे, और गहरी से गहरी होती चली जावे। उन से बढ़कर कोई सम्बन्ध दिखाई न दे, उन से बढ़कर और कहीं जुड़ने की अभिलाषा न हो। उनके देवरूप सम्बन्धी स्तोत्र गान करते समय हमें पता लगे, कि वह स्तोत्र क्या प्रकाश करता है? उसके भीतर क्या तत्व छुपा हुआ है? उस में उनकी जो प्रकृत महिमा अंकित है, वह दिखाई दे। जब प्रकृत रूप से ऐसा हो, तो आत्मा के भीतर उनके प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न होती है। और फिर इस श्रद्धा के गाढ़ होते जाने से वह आत्मा अनुरागी बनता है। जब अनुरागी बने, तब सचमुच उनकी शरण को प्राप्त हो सकता है, और तब वह सच्चा सेवक बनता है। केवल इतना जान लेना काफ़ी नहीं, कि मुझे उनकी शरण लेने की ज़रूरत है, बल्कि जब तक हमारे भीतर उनके प्रति सच्चा अनुराग पैदा नहीं होता, तब तक हम वास्तव में उनकी शरण को प्राप्त नहीं होते। जो हमारा मूल सम्बन्धी है जिस के देव शास्त्र और जिस से देव समाज निकले हैं,

उसके विषय में हम क्योंकर जानें, कि हमारा उसके प्रति अनुराग है, और हम उसकी शरण को प्राप्त हुए हैं। आया हमारा उनके साथ कोई ऐसा सम्बन्ध स्थापन हो गया है जिस को लेकर हमें उनकी ज्योति और शक्ति मिलती है? सचमुच हमें अपने जीवन की गतियों से उसका पता लगना चाहिए। अनुराग बिलकुल एक अद्भुत वस्तु है। अनुराग और लगाव बिलकुल अलग २ वस्तु हैं। आत्माओं को जितना अधिक एक दूसरे के साथ वास्ता पड़ता है, अधिक आपस में सम्बन्ध पड़ता है; अर्थात् एक कर्म्मचारी वा सहकारी किसी सेवक के लिए कुछ करता है, वा कोई सेवक वा सहकारी उनके लिए कुछ करता है, तो उस से वह एक दूसरे के साथ बन्ध जाते हैं। उनका एक दूसरे के प्रति लगाव पैदा हो जाता है, परन्तु वह यदि यहीं रह जाए, यहीं खड़े हो जावें, उस से आगे न देख सकें, कि कौन सब से बढ़कर अनुराग का पात्र है, तो उन का सम्बन्ध विनाशकारी हो जाता है। वह जीवन पथ से गिर जाते हैं, धीरे २ नीचे की ओर चलना शुरू करते हैं, आगे का रास्ता पूर्णतः बन्द हो जाता है। एक २ कर्म्मचारी एक २ सेवक के लिए दीवार की न्याईं उसके सामने खड़ा हो जाता है, जो सम्बन्धी उनके लिए जीवन का मूल है, उस तक उसे पहुंचने नहीं देता।

आप अधम बन जाता है, उस को भी अधम बनाता है। यह नियम सब के लिए है। जो आत्मा अहं और आत्म प्रशन्सा आदि भावों के वस होकर एक दूसरे के साथ बन्धते हैं, एक दूसरे की कुछ सेवा करते हैं, उस से उनका निश्चय विनाश होता है। देवसमाज में जो जन प्रवेश कर चुके हैं, वह यह जानें कि देवात्मा मूल सम्बन्धी को छोड़कर उनका कल्याण नहीं, उसको छोड़कर निश्चय वह विनष्ट हो जाएंगे। मूल रहे तो फिर और सब कुछ रह जाता है। किसी वृत्त की यदि जड़ भली भांन्त स्थिर रहे, तो पत्ते और टहनियां यदि झड़ भी जावें तो और निकल सकती हैं, परन्तु जड़ न रहे तो फिर कुछ भी नहीं रहता। मूल सम्बन्धी मिल जावे तो सब कुछ मिल जाता है, कुल के पकड़ने से फल और बीज भी आ जाते हैं। रुपए के हाथ आने से उसके सब भाग अर्थात् पूरे सोला आने हाथ लग जाते हैं। मूल सम्बन्धी (देवात्मा) यदि नहीं मिला और केवल उन से निकला हुआ कोई अंश हि मिला है, तो इस से तुम मूल के रूप में नहीं ढल सकते। अंश के पकड़ने से पूर्ण (whole) नहीं मिलेगा, पूर्ण के पकड़ने से अंश आप हि आ जाते हैं। तुम में मूल सम्बन्धी के प्रति अनुराग पैदा हुआ है, तुम उसके निकट हुए हो, यह जानना बहुत कठिन है। हम को सदा यह भय रहता है कि कहीं सेंटिमेन्टालिज़्म (Sentimentalism)

न आजावे, अर्थात् तुम्हारे साधन ख़याली न हो जावें। हमारी समाज में साधन मुसलमानों की निमाज़ न बन जावें, कि जिस पूजा का कोई फल नहीं। हमें सदा यह डर रहता है, कि यदि कोई योग्य रक्षक न पैदा हुए, सच्चे अनुरागी उत्पन्न न हुए तो कहीं हमारी शिक्षा भी ख़याली न हो जाए। जहां से हम चले हैं फिर फिराकर वहीं के वहीं न पहुंच जावें। साधन के समय जो दिल नरम हो जाता है, कुछ सरस हो जाता है, उसके यह अर्थ नहीं कि सचमुच अनुराग पैदा हुआ है। अनुराग बिलकुल प्रथक वस्तु है। कितनी सूरतों में एक २ आत्मा प्रति दिन साधन करके अपने हृदय में यह समझ सकता है, कि वह अपने जीवन दाता के निकट हो रहा है; परन्तु यह हो सकता है, कि वह जीवन दाता से दूर से दूर हो रहा हो।

तुम जीवन दाता के निकट हो रहे हो, इसका क्या प्रमाण है? इसका सबूत इन बातों से मिल सकता है कि कौनसा वह साधन था, जो तुम पहले नहीं करते थे अब करने लगे हो? कौनसा उच्च बोध है जो तुम्हारे भीतर पहले नहीं था अब आ गया है? तुम उनके सेवक कहलाकर उनके और उनके जीवन व्रत के लिए क्या करते हो? दिन भर में उनके निमित्त क्या हितकर कार्य्य तुम से निकलता है? स्वास्तित्व

यज्ञ के दिनों में इस प्रकार की चिन्ता, इस प्रकार की विचार होनी चाहिए और उस से अपने जीवन की प्रकृत अवस्था को खोजना चाहिए। यह जानना चाहिए, कि जीवन दायक सम्बन्धों को छोड़कर हमारा कल्याण नहीं। आज के स्वास्तित्व व्रत के साधन में भी अपनी अवस्था की परीक्षा करो, जिस से अपनी हीनता का बोध हो; जीवन दाता के सम्बन्ध में तुम कहां हो, इसका प्रकृत बोध हो। जो कुछ उनके सम्बन्ध के द्वारा अब तक तुम्हारा हित हुआ है उसका पता लगे, और उसकी विना पर उनके प्रति उच्च आकर्षण पैदा हो, और अपनी जो हीनता है उसका भी पता लगे, और उस से बचने के लिए प्रतिज्ञाएं उत्पन्न हों। अब तक जो तुम नहीं कर सके, जिस पहलु में उदासीन रहे हो उसके लिए दुख घड़े। इस समय जो ज्योति तुम्हें मिली है उस में कुछ अपना घाटा दिखाई दिया हो, तो उसके आगामी काल में निवारण करने के लिए आशा कर सकते हो और अपने हृदय में प्रतिज्ञा कर सकते हो। मेरी ऐसी कामना है, कि अपने अस्तित्व की रक्षा के तुम सचे आकांक्षी बन सको, अपने अस्तित्व विषयक रक्षा के नियमों को पहचान सको, और उनको पूरा करने का संग्राम कर सको। आगामी काल में अपने जीवन को अधिक से अधिक सार्थक करने का

अवसर पा सको और अधिक से अधिक अपना प्रकृत हित साधन करने के अधिकारी हो सको। यह कामना पूरी हो।

८—पशु व्रत के दिन उपदेश का एक भाग।

(जीवन पथ, आश्विन १९५८ वि०)

जीवन विषयक तत्व ज्ञान की ज्योति और यज्ञ साधन के लिए योग्यता।

पशुओं में वह बुद्धि शक्ति नहीं, जो मनुष्य में है। पशु जगत् के जीव अपनी शारीरिक रक्षा के सम्बन्ध में एक वा दूसरी चतुराई अवश्य रखते हैं, कि जो उन्हें वंश परम्परा से मिली है, परन्तु वह मनुष्य की सी विवेचना शील बुद्धि नहीं रखते। जो बुद्धि उन्नत होकर और विवेचना करने के योग्य बनकर किसी तत्त्व को देख सकती है; किसी को तत्त्ववेत्ता बना सकती है; किसी तत्ववेत्ता की शिक्षा को समझ या उपलब्ध कर सकती है, वह बुद्धि पशुओं में नहीं। मनुष्य में यद्यपि यह बुद्धि आई है, तो भी वह उसके सुमार्जित न करने से धर्म्म के सूक्ष्म और उच्च तत्वों को जानना तो एक ओर, आत्मा और आत्मा के जीवन के विषय में कुछ सोचना अथवा समझना तो एक ओर, अपने स्थूल शरीर और इस स्थूल जगत् के सम्बन्ध में भी बहुत

थोड़ा जानता है; और अनेक अवस्थाओं में बहुत भ्रांत मत रखता है। इसलिए आत्मा की रक्षा तो एक ओर, अभी वह शरीर की भी प्रकृत रक्षा करने के योग्य नहीं हुआ। तब ऐसा मनुष्य बुद्धि पाकर भी पशुओं की अपेक्षा जहां तक ज्ञान का सम्बन्ध है, वहां तक भी कुछ बड़ा दर्जा नहीं रखता। उस के अनन्तर जहां आन्तरिक अवस्था का सम्बन्ध है, उस के विचार से एक'र मनुष्यात्मा पशुओं की अपेक्षा भी अब तक बहुत नीचे है। परन्तु नीचे होकर भी वह अहंकार, कुसंस्कार और कुशिक्षा के वश होकर यह नहीं जानता और नहीं समझता, कि मैं पशुओं की अपेक्षा भी नीच हूं। इसी लिए ऐसी अवस्था में मनुष्य जगत् में भी जो जन उस . ` ऊपर की अवस्था रखते हैं, जो जन उसका एक वा . . प्रकार से उच्च हित साधन कर सकते हैं, उनको भी नहीं जानता और नहीं पहचानता। अनेक वार नहीं जानना और नहीं पहचानना चाहता। तब मनुष्य ी इस अवस्था को सन्मुख लाकर मनुष्यों में से वह लोग जिन की बुद्धि कुछ सुमार्जित हुई हो, मांजीगई हो, उन्नत हुई हो, और इस से भी बढ़कर जो विद्वान होकर ऐसी अवस्था में पहुंचे हों, कि जो केवल बाह्य क एक वा दूसरे प्रकार के पदार्थों के ज्ञान को छोड़कर-अपने देश वा अन्य देश के नदी नालों, पर्वत और

समुद्रों आदि के ज्ञान को छोड़कर—अपने जीवन के विषय में कुछ जानने के इच्छुक हो गए हों, उनका कितना बड़ा सौभाग्य है। जीवन ज्योति के मिलने से इस प्रकार के प्रश्न अवश्य उदय हो सकते हैं:— मैं क्या हूं? प्रति दिन जो मैं एक वा दूसरे प्रकार की गति कर रहा हूं, यह गति क्या है? इस गति की उत्पत्ति कहां से है? ऐसी गति मुझे जिस २ सम्बन्धी के साथ बान्धती है, उसका फल वा परिणाम क्या? उसके लिए क्या और मेरे लिए क्या? फिर यदि यह सच हो कि मैं जिस नेचर में हूं, उसके एक वा दूसरे विभाग से जुड़ा हुआ हूं, और इसीलिए सारी नेचर से जुड़ा हुआ हूं, तो फिर प्रश्न यह है, कि इस नेचर के सम्बन्ध में मेरी गति क्या है? यदि यह नेचर एक हो और मैं उसका एक अंश हूं, यदि यह कुल एक कल की न्याई हो, और मैं उसका एक पुरज़ा हूं, तो फिर प्रश्न यह है, कि मैं पुरज़ा होकर किस तरह चलता हूं? और अपनी गति से इस कल के और पुरज़ों के सम्बन्ध में क्या फल उत्पन्न करता हूं? फिर इस विशाल कल में जो विकासकारी महा नियम काम कर रहा है क्या मैं उसके पहचानने के योग्य हुआ हूं? क्या मेरे भीतर कोई ऐसा भाव वर्तमान है, जिस के द्वारा मैं विकासकारी नियम का साथ देना चाहता हूं, और जो कुछ विनाशकारी है उस

से भागना चाहता हूं और यह अनुभव करता हूं, कि जो कुछ विकास के महा नियम के विरुद्ध है, उस से न मेरा भला हो सकता है, न किसी और का ! किसी मनुष्य ने कितनी हि विद्या पढ़ी हो, कितना हि उस ने विज्ञान अर्थात् Science सीखा हो, कैसा हि माननीय हो, शासन विषयक कोई उच्च पद रखता हो, हाकिम हो, धनी हो, किन्तु यदि वह जीवन रखकर और जीवन धारी होकर अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी ज्योति नहीं रखता, कुछ भी प्रकृत ज्ञान नहीं रखता, तो उसकी कैसी कृपा पात्र अवस्था है !! सारी नेचर में श्रेष्ट जीव कहला कर भी इस महा सम्पद और जीवन ज्योति से वंचित होकर केवल यही नहीं, कि वह सांसारिक पदार्थों को पाकर भी अपने आप को नाश से नहीं बचा सकता, और इस वा उस मत का अवलम्बी कहलाकर भी नाना प्रकार के पापों से, नाना प्रकार की अधोगति दायक अवस्था से अपनी रक्षा नहीं कर सकता, किन्तु किसी प्रकार भी उसके महा भयानक और अति दुखदाई और विनाशकारी परिणाम से उद्धार नहीं पा सकता। इस लिए वह जन धन्य हैं, जिन को इस संसार में प्रगट होकर जीवन ज्योति के स्रोत से जुड़ने का अधिकार ।हो, जिन को इस संसार में विविध प्रकार की अवस्था रखने वाले मनुष्यों की तुलना में सब से मूल्य-

वान और सब से महान जीवन ज्योति के लाभ करने का अवसर मिला हो। मुझे नहीं मालूम, कि तुम में से कितने जन ऐसे हैं, जिन पर ऐसे अमूल्य ज्ञान की महिमा प्रकाशित हुई है ; और कितने जन ऐसे हैं, कि जो ऐसे ज्ञान को पाकर जो कुछ शुभ हो, जो कुछ विकासकारी हो (और जो कुछ विकासकारी है, याद रक्खो वही शुभ है) उसके लिए आकांक्षी बन गए हैं। और जो कुछ अशुभ हो, विनाशकारी हो (और याद रक्खो कि जो कुछ विनाशकारी है वही अशुभ है) उस से बचने वा भयभीत होने का भाव रखते हैं। स्मरण रक्खो कि जब तक शुभ के लिए आकांक्षा न हो, जो कुछ अशुभ है, उसके त्याग के लिए सच्ची इच्छा उत्पन्न न हो, तब तक ऐसे जीवन दाता के साथ सम्बन्ध रख कर भी तुम विविध प्रकार के यज्ञों के (जिन यज्ञों के साधन से हि शुभ आता है और अशुभ जाता है, और जिन यज्ञों के साधन से हि जीवन उच्च गति प्राप्त होता है और नीच गति से बचता है) साधन के योग्य भी नहीं हो सकते। इसलिए यज्ञ रहे और यज्ञ विषयक आदेशों को भी कोई सुनता वा पढ़ता रहे, तो भी यदि उस में अपनी योग्यता कुछ न हो, तो कल्याण नहीं होता। इसीलिए हम देखते हैं, कि ज्योति अपना काम करना चाहती है, शक्ति अपना काम करना चाहती है;

ज्योति और शक्ति के भण्डार अपनी ज्योति और शक्ति का दान भी करना चाहते हैं, तो भी कितने आत्मा ऐसी अवस्था में हैं, कि जो ऐसी ज्योति लाभ नहीं कर सकते, और ऐसी शक्ति से अपने आत्मा के भीतर कोई सच्चा परिवर्तन नहीं देख सकते। ऐसा हो कि तुम में से जिन के भीतर जीवन विषयक तत्व ज्ञान की ज्योति प्रवेश कर गई है, जिन के भीतर जीवन दाता की शक्ति से कुछ उच्च बोध जाग्रत हो चुके हैं, जिन के भीतर शुभ के लिए प्रकृत आकांक्षा उत्पन्न हो चुकी है, वह शुभ के इच्छुक हो कर प्रत्येक साधन से अपनी अवस्था के अनुसार शुभ लाभ करने के योग्य हों।

उद्बोधन।

(सेवक आषाढ़ १९६९ वि०)

[२२ अगस्त सं० १८९७ ई०]

सारी नेचर में जड़ और शक्ति का अजब खेल जारी है। शक्ति जड़ को बदल रही है, और अपने इस कार्य्य से आप भी बदल रही है। दोनों में हि परिवर्तन हो रहा है; और इस परिवर्तन से भांत २ के अजीवित और जीवित आकार प्रगट हो रहे हैं। इन लाखों और करोड़ों आकारों में कोई उच्च गति ग्रहण करके उच्च बन रहे हैं, और कोई उसके विपरीत। पशु जगत् में भी परिवर्तन

के इस अटल और सर्व्वव्यापी नियम ने अजीब खेल खेला है।

एक ओर पशु जगत् में अति निम्न से निम्न श्रेणी के जीव हैं, हां ऐसे छोटे २ जीव कि उन्हें खुर्दबीन से भी मुशकिल से देख सकते हैं। दूसरी ओर ऐसे बड़े २ डीलडौल वाले कि जिन के सामने हमारा डीलडोल बहुत तुच्छ दिखाई देता है। फिर इन सब में केवल छुटाई बड़ाई का हि अन्तर नहीं, किन्तु गठन विषयक अन्तर भी पाया जाता है। इन में कोई बेपाओं वाले। पाओं वालों में भी कोई खुर वाले हैं, और कोई सुम वाले। कितने हि अधिक उंगलियां रखते हैं, और कितने हि कम। कुछ की उंगलियां खुली हुई हैं, और कुछ की जुड़ी हुई। कोई सींग वाले हैं, और कोई बेसींग के। कुछ के कान अन्दर और कुछ के बाहर। कुछ पर वाले हैं, कुछ बिना पर के। कुछ दुम वाले हैं, कुछ बेदुम के। कुछ के शरीर पर बहुत बाल और कुछ पर थोड़े। कुछ चोटी दार हैं, और कुछ बिना चोटी के। कुछ केवल एक रंग के हैं, और कुछ नाना प्रकार के रंग रखते हैं। कुछ रेंगने वाले हैं, कुछ तैरने वाले, और कुछ उड़ने वाले। फिर जैसे इनके बाहर के आकारों में अन्तर है, वैसे हि उनकी जीवनी शक्तियों के गुणों वा स्वभाव में भी। कितनों के रूप सुन्दर और आकृष्टकारी हैं; और

किसनों के कुत्सित और घृणित। कितनें हि अच्छे गुण और अच्छे स्वभाव वाले हैं, और कितने हि बुरे। कितने हि औरों के लिए हितकर हैं, और कितने हि हानिकारक।

अब हम उच्च विकास के अनुरागी होकर पशु यज्ञ विषयक साधनों में सुन्दर रूप वाले और शुभ गुण सम्पन्न जीवों के गुणों पर चिन्तन करेंगे, और आवश्यकता के अनुसार नीच जीव धारियों के साथ उनकी तुलना करके उनके महत्व को अपने सन्मुख लाएंगे। इस विधि से जहां हम शुभ गुणधारी पशुओं के प्रति अपने अनुराग को वढ़ाकर उनके साथ अपने हितकर सम्बन्ध को गाढ़ करेंगे, वहां उनकी तुलना में अपने २ आत्माओं की हीन अवस्थाओं के देखने और इसीलिए उस से निकलने और उच्च बनने की आकांक्षा उत्पन्न करने की चेष्टा करेंगे।

इस साधन में पहले हम गौ के सुन्दर रूप और गुणों पर चिन्तन करना चाहते हैं।

गौ के अच्छे रूप और गुणों पर चिन्तन।

पशु जगत् के विकास में सैंकड़ों प्रकार के पशुओं की अपेक्षा गौ बहुत श्रेष्ट पशु है। सब से पहले जब हम उसके रूप को देखते हैं, तब वह हमें आकर्षणीय बोध होता है। पशु जगत् में कितने हि जीव ऐसे हैं,

कि उनके आकार को देखकर भय पैदा होता है; जैसे कि शेर, चीता, भेड़िया आदि। अब यदि एक ओर यह हिंसक पशु खड़े हों, और दूसरी ओर गौ, तो दोनों के रूप में साफ़ अन्तर दिखाई देता है। कहां शेर की डरावनी चितवन, उसके फाड़ खाने वाले दान्त और होंठ, और कहां गौ की भोली भाली शकल, अच्छी आंखें और सुन्दर चितवन। कितनी हि गाएं ऐसे अच्छे डील डोल और सुन्दर आकार की होती हैं, कि उन्हें लगातार देखने को जी करता है। दूध देने वाली गौ के दूध से भरे हुए स्तन कैसे प्यारे लगते हैं। उसके यह स्तन क्या होते हैं, मानो ज़िन्दगी के लिए बनी बनाई खुराक के भरे हुए बरतन होते हैं। एक २ रीछनी भी अपने बच्चों को दूध पिलाती है, परन्तु वह केवल अपने बच्चों को, पर गौ अपने बच्चे के सिवाय मनुष्य को भी अपना दूध देती है। कोई २ कहते हैं, कि गौ के दूध पर केवल उसके बच्चे का अधिकार है; मनुष्य का नहीं। परन्तु यह ठीक नहीं। मनुष्य ने गौ आदि की पालना करके और अपने कई उपायों से कितनी हि गौओं के दूध को बहुत बढ़ाया है, और वह अपने बच्चों की ज़रूरतों से बहुत अधिक दूध देती हैं। इसलिए मनुष्य ऐसी गौओं का सेवाकारी होकर अपने लिए भी उन से दूध लेने का पवित्र अधिकार रखता है। इसके भिन्न

किसी कारण से जब कई गौओं के बच्चे मर जाते हैं, और उन्हें अपने बच्चों को दूध पिलाने की ज़रूरत नहीं होती, तब भी उनके स्तनों से दूध निकलता रहता है। याद रक्खो कि नेचर में बहुत सा काम अन्धाधुन्द भी होता है। मनुष्य माताओं में भी जहां किसी में कम और किसी में बहुत दूध होता है, वहां किसी में कुछ भी दूध नहीं होता। फिर किसी २ में उसके किसी बच्चे के सारे दान्त निकल आने पर भी दूध निकलता रहता है— यहां तक कि किसी २ मां के बच्चे पांच २ छै २ साल की उमर तक उसका दूध पीते रहते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक गौ में केवल उसी के बच्चे की आवश्यकता के अनुसार दूध नहीं बनता, किन्तु बहुत सी गौओं में उस से बहुत अधिक बनता है। यहां तक कि एक २ गौ दस २ पंदरह २ सेर तक दूध देती हैं। ऐसी दशा में मनुष्य उसका सेवाकारी होकर उस से अवश्य दूध प्राप्त करने का अधिकारी है। आहा! गौ घास भूसा आदि तुच्छ पदार्थ खाकर अपने खून से एक ऐसी चीज़ पैदा करती है, कि जो और लाखों जनों के लिए ज़िन्दगी की चीज़ है। हम जब कभी गौ का दर्शन करें, तब उसके स्तनों को देखकर यह अनुभव करने का अभ्यास करें, कि वह सचमुच हमारी पालन,कर्ता माता है।

फिर नेचर के परिवर्तन विषयक अटल कार्य्य से

जहां और बहुत से पशु ऐसे दुष्ट बन गए हैं, कि वह वह्निद् जगत् की कोई चीज़ नहीं खाते, और दूसरे जीवों की हत्या करके केवल उन्हीं का मांस खाकर वा उन्हीं का खून पीकर जीते हैं, वहां उनकी तुलना में गौ की कितनी विशेषता !! शेर और भेड़िए आदि कई प्रकार के हिंसक जन्तु केवल यही नहीं, कि हमारा कुछ भला नहीं करते, किन्तु कई प्रकार से हमारी बहुत हानि करते हैं, यहां तक कि वह हमारी भेड़ बकरियों आदि के भिन्न कभी २ हमारे बच्चों को भी उठाकर ले जाते हैं, और उन्हें मारकर खा जाते हैं। किसी मनुष्य का प्यारा बच्चा सोया हुआ है। वह अपनी माता का एक मात्र पुत्र है। उसकी मां ने उसे छै महीने तक बहुत प्रीति और परिश्रम से पाला है। वह उसे सुलाकर कहीं बाहर जाती है। इतने में एक भेड़िया आता है, और उसे उठा कर चलता बनता है। एक ओर यह दृश्य देखो, दूसरी ओर एक और मनुष्य का छोटा सा बच्चा है, जिस की मां के स्तनों से दूध नहीं निकलता, और गौ उसे अपने दूध से पाल रही है। दोनों छवियों में किस क़दर आकाश और पाताल का अन्तर ! एक की क्रिया कैसी बुरी और घिनौनी, दूसरी कैसी उपकारी और सुन्दर !!

गौ किसी जीव की हत्या करके उसका मांस नहीं खाती। पर लाखों मनुष्य अन्य कई प्रकार के पशुओं

के भिन्न गौ जैसे हितकारी पशु को भी वध करके उस के मांस से अपना पेट भरते हैं। ओह! मनुष्य कहला कर उसकी ऐसी क्रिया कितनी बुरी! और वह अपनी ऐसी क्रिया के विचार से गौ जैसे उद्भिद् भोजी पशु की तुलना में कैसा निर्दई!!

गौ हमें दूध देकर हि बस नहीं करती। वह कहती है, कि तुम मेरे दूध से दही बनालो, छाछ बनालो, खोया बनालो, रबड़ी बनालो, मलाई बनालो, छाना बनालो, मक्खन निकाललो, घी बनालो। मेरे दूध से भांत २ की यह सब चीज़ें तैयार हो सकती हैं। एक २ बीमार के लिए गौ का दूध कितना मूल्यवान और कितना हित-कर प्रमाणित होता है। कितने हि रोगी तो केवल गौ का दूध पीकर हि रक्षा पाते हैं।

दूध और दूध की चीज़ों के सिवाए गौ का गोबर भी हमारे बहुत काम आता है। दीवारों के कच्चे पलस्तर पर यदि क़लई करनी हो, तो पहले उस पर गोबरी की जाती है। कच्चे फ़र्श पर यदि गोबर का लेपन किया जाए, तो वह अच्छा बन जाता है। गोबर के उपले बनते हैं। उपलों से चूना फूंका जाता है। उपलों से ग़रीबों की रोटी पकती है, और खाने की और चीज़ें तैयार होती हैं।

गौ की बछियां पलकर जब गौवें बन जाती हैं, तब

वह भी अपनी माओं की न्याईं हमारी सेवा करती हैं। गौ के बछड़े भी बहुत काम आते हैं। वह जवान होकर और बैल बनकर हल जोतते हैं। माल से भरी हुई और सवारी की गाड़ियां खैंचते हैं। कोल्हू से तेल और गन्ने का रस निकालते हैं। ख़रास में जुतकर आटा पीसते हैं। धोबी के कपड़ों की लादी और अनाज की बोरियां अपनी पीठ पर उठाकर ले जाते हैं। इत्यादि।

गौ जीकर भी हमारा नाना प्रकार से हित करती है, और मरने के बाद भी हमें अपनी मोटी खाल देकर हमारी सेवा करती है। उसके सींगों के दस्ते बनते हैं। उसके पट्ठों से सरेश निकलता है, और उसकी और बची खुची कई चीज़ें खाद के काम आती हैं। तब सोचो कि यह पशु मनुष्य का कितना हितकारी है!! हम यदि मनुष्य कहलाकर, बुद्धि और ज्ञान पाकर अपने आप को उसकी अपेक्षा भी अधिक हितकर प्रमाणित न कर सकें, तो कितना शोचनीय!! लाखों मनुष्य अपने नाना नीच भावों से परिचालित होकर क्या मनुष्यों, और क्या पशुओं आदि की जितनी हानियां करते हैं, वह गौ कहां करती है? नेचर के अटल नियम के अनुसार प्रत्येक जीव अपनी भली वा बुरी गति के अनुसार अपनी जीवनी शक्ति को भला वा बुरा, उच्च वा नीच बनाकर उसके फल पाता है। इसलिए यदि किसी मनुष्य के हृदय में

कुछ भी अपनी नीच गतियों और उनके भयानक फलों के विषय में सच्चा बोध उत्पन्न हो, और उसे मालूम हो, कि उपकार और सेवा विषयक नाना उच्च भावों के पैदा होने और उन्नत करने पर ही उसका जीवन उच्च बन सकता है, और उच्च जीवन लाभ करके ही वह किसी उच्च लोक में पहुंचने और वास करने का अधिकारी बन सकता है, तो वह निश्चय गौ के हितकर जीवन से बहुत कुछ उपदेश सीख सकता है। ऐसा हो, कि नेचर के विकास में जिन २ पशुओं में अच्छे गुण प्रगट हुए हैं, उन्हें पहचान कर हम उनकी अपेक्षा बुरा जीवन रखकर कोई अभिमान न करें। और जहां तक सम्भव हो, अपनी २ योग्यता के अनुसार नीच जीवन से ऊपर होने और उच्च जीवन में विकास पाने के लिए चेष्टा करें।

भैंस, बकरी और भेड़ पर चिन्तन।

गौ के बाद हम कुछ देर भैंस पर और फिर बकरी और भेड़ के विषय में चिन्तन करना चाहते हैं। भैंस यद्यपि गौ की न्याईं सुडौल या सुन्दर नहीं, तथापि वह बहुत कल्याणकारी पशु है। बहुत सी गाओं की अपेक्षा यह पशु अधिक दूध देता है। इसका दूध भी अधिक गाढ़ा होता है। इसके दूध में से अधिक घी और मक्खन निकलता है। इस के दूध से भी खोया, रबड़ी, दही,

मक्खन, मलाई, घी आदि चीज़ें उसी तरह प्राप्त होती हैं, जिस तरह गौ के दूध से। इसके नारी बच्चे बड़े हो कर अपनी मां की न्याई हितकर भैंस बन जाते हैं। इसके नर बच्चे यद्यपि गौ के नर बच्चों की न्याई फुरतीले, चालाक और इसलिए क़ीमती नहीं होते। फिर भी वह बहुत कुछ सेवाकारी होते हैं। वह बड़े होकर न केवल हल जोतने और बोझा उठाने का काम करते हैं, किन्तु गाड़ी और रहट आदि भी खैंचते हैं।

बकरी भी बहुत हितकर पशु है। यह जैसे गौ वा भैंस की तुलना में बहुत छोटा डीलडौल रखती है, वैसे हि उनकी तुलना में दूध भी थोड़ा देती है। यह बहुत ग़रीब होती है। इसके दूध से यद्यपि गौ और भैंस की न्याई मक्खन और घी नहीं निकलता, और यद्यपि इस का दूध प्रायः पीने के हि काम आता है, फिर भी वह बहुत अच्छा और मुफ़ीद होता है। ख़ुराक के विचार से गौ और भैंस की तुलना में यह अपने ख़र्च का बोझा अपने मालिक पर बहुत थोड़ा डालती है। यह नाना प्रकार के वृक्षों—यहां तक कि कई ज़हरीले पेड़ों, यथा आक आदि तक—के पत्तों को खाकर अपना पेट भर लेती है। परन्तु अपनी ओर से अपने स्वामी का बहुत भला करती है। इसके नर बच्चे कहीं २ मनुष्य के बच्चों की छोटी २ गाड़ियां खैंचते हैं। इसके भिन्न उनके बाल भी

काम में आते हैं।

बकरियां कई प्रकार की होती हैं। खास २ पहाड़ों पर ऐसी बकरियां मिलती हैं, जिन पर बहुत महीन और मुलाइम और गरम पशम होती है, कि जिससे पशमीने के कपड़े रुई या ऊन के कपड़ों की तुलना में बहुत मूल्यवान होते हैं। कहां रुई के कपड़े की एक मामूली चादर जो एक रुपए में बन सकती है, और कहां एक पशमीने की चादर जो दस पंदरह रुपए से लेकर पचास, साठ, सौ या इस से भी अधिक दामों की होती है। जैसे गौओं और भैंसों के द्वारा हज़ारों परिवारों का गुज़ारा चलता है, वैसे हि इन बकरियों के द्वारा भी। यह पशम वाली बकरियां हम लोगों की तिजारत में बहुत बड़ा भाग लेती हैं। इनके मरने पर इन की खाल भी बहुत काम आती है, और कितनी हि बकरियों के सींग कि जो अपनी बनावट के विचार से बहुत सुन्दर होते हैं, सजाने के काम में आते हैं।

बकरी की न्याई भेड़ भी बहुत नरम स्वभाव रखती है। भेड़ यद्यपि बकरी की न्याई बहुत दूध नहीं देती और उसका दूध भी यद्यपि कुछ बहुत काम नहीं आता तो भी वह साधारण बकरियों की अपेक्षा अपनी ऊन के द्वारा हमारा बहुत बड़ा हितसाधन करती है। कई प्रकार के कम्बल और नमदे और ऊनी कपड़े हमें इसी की बदौ-

लत प्राप्त होते हैं। और ऊनी कपड़ों को ओढ़कर एक कम्बल हि ऐसी हितकर चीज़ है, जिस के विचार से हम भेड़ को अपने लिए बहुत सेवाकारी पशु अनुभव कर सकते हैं। सैकड़ों कारखाने जिन में हज़ारों और लाखों मनुष्य काम करके अपनी रोज़ी कमाते हैं, इसी की ऊन से चलते हैं।

भेड़ की ऊन से हमें पहनने, ओढ़ने और बिछाने आदि के लिए तरह २ के सुन्दर और हितकर कपड़े प्राप्त होते हैं। इसके मरने के अनन्तर भी उसकी खाल आदि हमारे काम आती है।

मनुष्य मात्र के उपकारी इन तीनों पशुओं के हित-कर रूप को अब तुम अपने सम्मुख लाओ, और देखो कि तुम्हारे हृदय में उनके ऐसे हितकर और सेवाकारी रूप के लिए कहां तक सन्मान् और आकर्षण का भाव वर्तमान है? ज़रा सोचो क्या भेड़ की न्याई तुम में दीनता पाई जाती है? क्या बकरी की न्याई तुम में सहन शीलता मौजूद है? क्या जो बकरियां और भेड़ें जंगल के घास पात से पेट भरकर दूध आदि के भिन्न अपनी बहु-मूल्य ऊन और पशम से तुम्हारे लिए नाना प्रकार के सुन्दर और हितकर वस्त्र देती हैं, उनके लिए तुम्हारे भीतर कुछ प्यार और कृतज्ञ भाव पाया जाता है? क्या उनके इस हितकर रूप को सन्मुख लाकर तुम्हारे भीतर

कोई ऐसी आकांक्षा पैदा होती है, कि तुम उनकी अपेक्षा अपने आत्मा को किसी पहलू में केवल यही नहीं, कि नीच न रक्खोगे, किन्तु जहां तक सम्भव होगा, उनकी अपेक्षा अपने आप को अधिक उपकारी प्रमाणित करोगे? क्या यह सच नहीं कि लाखों मनुष्य ऐसे कृतघ्न हैं, कि वह इन पशुओं से इतने उपकार पाकर भी एक हिंसक भेड़िए की तरह उनके मांस के खाने के लिए उनकी हत्या करते या कराते हैं? क्या तुम्हें ऐसे लोगों का यह आचरण अत्यन्त घृणित मालूम नहीं होता? वह दिन कब आएगा जब प्रत्येक मनुष्य अपने उपकारी और सेवा-कारी जीवों की उचित रूप से रक्षा और सेवा करने के लिए अपने हृदय में सच्ची आकांक्षा और अपने आप को उनका उपकृत और शुभ चिन्तक अनुभव करेगा?

चिंउटियों और मधु-मक्खियों पर चिन्तन।

पशु जगत् में बहुत छोटे २ डीलडौल के कीड़ों में चिंउटी भी एक जीव है। जीवों के विकास के सिलसिले में इस नन्हे से कीट के भीतर जो २ सुन्दर गुण आए हैं, उन पर चिन्तन करके जैसे एक ओर हम इस जीव के प्रति अपने हृदय में सद्भाव को उत्पन्न और उन्नत कर सकते हैं, वैसे हि दूसरी ओर चिंउटियों की अति सुन्दर और हितकर सामाजिक-गठन से अपने लिए बहुत उच्च शिक्षा पा सकते हैं।

चिंउटियां अकेली नहीं रहतीं, किन्तु हज़ारों वरन् लाखों की संख्या में मिलकर रहती हैं। किसी प्रकार के लाखों जीवधारी तभी मिलकर रह सकते हैं, जब वह सब किसी विषय में एक उद्देश्य वा एक लक्ष्य रखते वा अनुभव करते हों, और अपने इस एक लक्ष्य के पूरा करने के लिए एक दूसरे की आवश्यकता और अपने आप को एक दूसरे का साथी और सहायक बोध करते हों। चिंउटियां यद्यपि देखने में बहुत नन्हीं सी होती हैं, तो भी उनका किसी हितकर उद्देश्य के पूरा करने के लिए लाखों की संख्या में परस्पर जुड़कर समाज स्थापन करना और समाज बद्ध होकर उसकी शासन प्रणाली के अधीन चलने और रहने में जहां तक व्यक्तिगत एक वा दूसरे प्रकार की वासना वा उत्तेजना वा अहंभाव के त्याग की आवश्यकता है, उसके त्याग के लिए अपने आप को पूर्णतः योग्य प्रमाणित करना मनुष्य मात्र के सन्मुख एक ऐसा उच्च दृष्टान्त है, कि जो अत्यन्त विस्मय-जनक है।

चिंउटियों के भिन्न और शायद उन से कुछ बढ़ चढ़ कर हम जिस और नन्हें से कीट का अध्ययन करके समाज-बद्धता के विषय में बहुत हितकर शिक्षा पा सकते हैं, उसका नाम मधुमक्खी है। यह भी हज़ारों की संख्या में मिलकर रहती हैं, और अपने सामाजिक शासन

विषयक नियमों के अधीन चलने और रहने की योग्यता को दिखाकर हमारे सन्मुख बाध्यता के भाव का बहुत सुन्दर और हितकर दृष्टान्त प्रदर्शन करती हैं। अब यह नहीं कि इन छोटे २ जीवों में कोई वासना, उत्तेजना वा अहं विषयक शक्तियां नहीं होतीं, और उनकी यह शक्तियां उन में किसी प्रकार की कोई प्रेरणा उत्पन्न नहीं करतीं, किन्तु इन सब शक्तियों की तुलना में उन में परस्पर के कल्याण के निमित्त समाज-बद्ध होकर और समाज के शासन विषयक नियमों के अधीन रह कर काम करने का भाव इतना प्रबल है, कि वह उन्हें उनके इस शुभ उद्देश्य से इधर उधर जाने वा बागी बनने नहीं देता।

अब क्या मनुष्य के लिए यह लज्जा का विषय नहीं, कि उसके सन्मुख यह छोटी २ चिउंटियां और मधु-मक्खियां किसी साधारण हितकर उद्देश्य की सिद्धि के निमित्त अपनी २ प्रत्येक रुचि और वासना और उत्ते-जना आदि की प्रेरणा से ऊपर होकर हज़ारों की संख्या में समाज-बद्ध हो सकती हों, और अपने २ सामाजिक शासन के अधीन रह सकती हों, परन्तु यह उनकी न्याईं किसी साधारण हितकर उद्देश्य को लेकर समाज-बद्ध न हो सके, अथवा समाज-बद्ध होकर अपनी एक वा दूसरी अनुचित वासना वा प्रवृत्ति वा उत्तेजना आदि के वशीभूत हो

कर सामाजिक शासन के अधीन न चल सके, और स्वेच्छाचारी होकर उस से फट जाए ? इसलिए जिन देशों में मनुष्य जहां तक आपस में समाज-बद्ध होने की कम योग्यता रखते हैं, और अपनी नाना वासनाओं और उत्तेजनाओं आदि के दास होकर सामाजिक शासन के जुए को खुशी २ अपने कन्धे पर नहीं ले सकते, वहां तक वह बहुत रद्दी, दुर्बल और दुर्दशा की हालत में होते हैं । कैसे शोक का विषय है, कि वह मनुष्य जो इन चिंउटियों को अपने पाओं के तले हर रोज़ कुचलता हो, और उन्हें बहुत तुच्छ जीव जानता हो, वह उनकी समाज-बद्धता और वाध्यता के उच्च गुणों की तुलना में अपने आप को इस क़दर गिरा हुआ साबित करे !!!

इस से आगे चलकर यही मक्खियां और चिंउटियां अपने साधारण उद्देश्य की सिद्धि के लिए जिस प्रकार से परिश्रम करती हैं, उससे भी हम बहुत उत्तम शिक्षा ले सकते हैं । जहां मनुष्यों में ऐसे हज़ारों आदमी पाए जाते हैं, कि जो चाहे धनवान हों, और चाहे धनहीन, बहुत आलस्य-ग्रस्त होते हैं, और सुस्त होकर पड़े रहते हैं, और अपने आत्मा के विषय में कुछ सत्य ज्ञान वा शुभ लाभ करने के लिए यत्न करना तो कहीं रहा, अपने शरीर के कल्याण और भले के लिए भी कुछ नहीं करते; वहां हम देखते हैं, कि यह छोटे २ जीव न केवल अपने लिए किन्तु औरों

के लिए भी कितना परिश्रम करते हैं। इसलिए शहद की मक्खियों में जो मक्खियां परिश्रमी नहीं होतीं, उनका परिश्रमी मक्खियों के साथ किसी न किसी समय रहना असम्भव हो जाता है, और परिश्रमी मक्खियां इन आलस्य-ग्रस्त और इसीलिए निकम्मी और रद्दी मक्खियों को मार डालती हैं, और अपनी इस क्रिया में मानो उन पर यह तत्व प्रगट करती हैं, कि यदि तुम नेचर के भीतर जन्म लेकर अपने अस्तित्व को किसी उचित काम में न लगा सको, तो तुम्हारा रहना और श्वास लेना और औरों के परिश्रम पर जीना पूर्णतः अनुचित है।

लाखों मक्खियां एक रानी के अधीन रहकर काम करती हैं। उसकी आज्ञा को मानती हैं। उस के हुक्म के अनुसार छत्ता लगाती हैं। छत्ते के बनाने में बहुत परिश्रम से काम करती हैं। और इस से भी बढ़ कर विविध फूलों तक पहुंचकर और उन से रस और रज निकाल कर क्या मधु के इकट्ठा करने और क्या छत्ते के बनाने आदि के कामों में अपनी जिस चतुराई और अपने जिस उत्साह का परिचय देती हैं, वह बहुत आश्चर्य्य-जनक है। फिर इस परिश्रम से वह जो शहद इकट्ठा करती हैं, उसके व्यवहार में उनके आपस में किसी विरोध का न होना एक और भी विचित्र

दृश्य है !! यद्यपि इतने लालच की वस्तु उनके सन्मुख धरी हुई है, परन्तु फिर भी क्या मजाल, कि उन में उसके लिए किसी प्रकार की लड़ाई हो। हम देखते हैं, कि थोड़ी सी मिठाई के पीछे मनुष्यों के कितने हि बच्चे यहां तक कि सगे भाई बहिन तक आपस में लड़ने भिड़ने और एक दूसरे को हानि पहुंचाने के बिना नहीं रह सकते, और यह नन्हें २ कीड़े शहद जैसी मीठी चीज़ का भंडार अपने पास रखकर और लालच मूलक सब झगड़ों से ऊपर रहकर किस तरह शान्ति पूर्वक एक हि छत्ते में वास करते हैं। फिर यदि उनकी इस साधारण सम्पत्ति पर कोई बाहर का जीव आक्रमण करे तो वह सार मिलकर उसकी रक्षा के लिए उस पर हमला करते हैं। समाज-बद्ध होकर परस्पर मेल, उत्तम शासन प्रणाली, शान्ति प्रियता, आज्ञा पालन और वाध्यता का जो उच्च दृष्टान्त यह कीड़े प्रदर्शन करते हैं, वह कैसा सुन्दर और कैसा हितकर है।

फिर यह मधु मक्खियां अपने अंडों और बच्चों की पालना में अपने २ कर्तव्यों को जिस प्रकार से पूरा करती हैं, वह भी बहुत हि प्रशंसनीय है।

अब हम मनुष्य होकर और उनके ऐसे सद् दृष्टान्त को देखकर यदि किसी शुभ उद्देश्य के लिए आपस में समाज-बद्ध न हो सकें और समाज-बद्ध होकर अपने

साधारण हितकर लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपनी प्रत्येक वासना, उत्तेजना वा अहं शक्ति के अधिकार से ऊपर होकर अपनी "मैं" का त्याग न कर सकें, तो हम इस विषय में उनकी तुलना में कैसे अधम और नीच जीव प्रमाणित होते हैं!! इसके विपरीत यदि मधु मक्खियों की अपेक्षा किसी उच्च तर उद्देश्य को सन्मुख रखकर हम अपने दिल में यह प्रतिज्ञा कर सकें, कि यह महान उद्देश्य सब से ऊपर और हमारी प्रत्येक "मैं" इसके नीचे, और ऐसे उद्देश्य के प्रबल अनुरागी होकर उसकी तुलना में हम अपनी प्रत्येक वासना, उत्तेजना, अकड़ और रुचि आदि का त्याग कर सकें, तब निश्चय हम ऐसे दृष्टान्त से इस विषय में एक ओर मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता प्रदर्शन और दूसरी ओर अपना कल्याण साधन कर सकते हैं।

ऐसा हो, कि तुम मनुष्य कहलाकर इन छोटे २ जीवों की तुलना में अपने आप को हीन प्रमाणित न करो, और देव समाज जैसी अद्वितीय समाज में प्रविष्ट होने का उच्च अधिकार पाकर वह जिस सर्वोच्च लक्ष्य की सिद्धि के लिए स्थापन की गई है, उस में अपने और उसके लिए हितकर और सेवाकारी प्रमाणित करो।

९—पटियाला में परलोक व्रत पर उपदेश।

[जीवन पथ, कार्तिक सन १९६० वि०]

इस सम्बन्ध में भगवान् देवात्मा ने जो उपदेश दिया, उस में उन्हों ने परलोक और वहां के जीवन का वर्णन करने के अनन्तर यह प्रगट किया, कि जो लोग यहां से देह त्याग करने के अनन्तर सूक्ष्म देह धारण करने के अधिकारी होते हैं, उन्हें यहां के जीवन की उसी प्रकार स्मृति रहती है, कि जैसी यहां पर थी, और यहां के सम्बन्धियों के साथ वह उसी प्रकार सम्बन्ध अनुभव कर सकते हैं, कि जैसे वह यहां पर करते थे। इसलिए यदि उन्हों ने यहां किसी को कोई हानि पहुंचाई हो, तो उसका बोध होने पर उन्हें उसी प्रकार दुख होता वा हो सकता है, कि जैसे यहां पर हो सकता था, और यहां वह जिस वस्तु वा सम्बन्धी का सन्मान् करते रहे हों, उसका अपमान होता देखकर, जिस शुभ कार्य्य को आरम्भ वा उत्पन्न कर गए हों, उसे हानि पहुंचती देखकर, और जिस कार्य्य को वह अधूरा छोड़ गए हों, उसे अपूर्ण अवस्था में हि पड़ा वा बिगड़ा हुआ देखकर, उन्हें वैसे हि दुख पहुंचता है, कि जैसे उन्हें यहां पहुंचता था। इसी प्रकार उच्च बोध प्राप्त होने पर वह अपनी किसी सन्तान् वा किसी अन्य सम्बन्धी की नीच गति देखकर उसी प्रकार दुखी हो सकते हैं,

जैसे कि ऐसी अवस्था में यहां होते। इसके विरुद्ध अपने किसी ऋण का परिशोध होता देखकर और अपने जारी किए हुए किसी शुभ कार्य्य की उन्नति देखकर, और अपने सम्बन्धियों की उच्च गति देखकर हर्ष और प्रसन्नता लाभ करते हैं इत्यादि। इसलिए जो लोग अपने ऐसे परलोक वासी सम्बन्धियों के साथ अपना सम्बन्ध अनुभव करते हों, और चाहते हों, कि उन्हें उनकी प्रसन्नता और निकटता लाभ हो, वह जहां अपने ऐसे सम्बन्धियों के सद्गुणों और उपकारों को सन्मुख लाकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा वर्द्धन करें, और अपने प्रति उनके उपकारों को सन्मुख लाकर कृतज्ञता और हित परिशोध के भाव को धारण करें, वहां दूसरी ओर वह उनके पापों का परिशोध करके और उनकी सद् कामनाओं को पूरा करके, उन की प्रिय वस्तुओं को सन्मान् और उनके सम्बन्धियों की रक्षा और सेवा करके, उनकी सद् चेष्टाओं की पूर्ति करके, और अपने जीवन को उच्च और श्रेष्ट बनाकर उनकी सच्ची तृप्ति लाभ करें। यही साधन सच्चे श्राद्ध और तर्पण के साधन हैं। इन्हीं साधनों के स्थापन और प्रचलित होने से सच्चे रूप में परलोक यज्ञ का पवित्र उद्देश्य पूरा होता है, और हमारे परलोक वासी सम्बन्धियों के साथ हमारा जीवन्त और कल्याणकारी सम्बन्ध स्थापित और

गहरा होता है। भगवान् देवात्मा के इस हितकर उपदेश को सुनकर कितने श्रोताओं ने परलोक वासियों के साथ अपने सम्बन्ध को हितकर बनाने के लिए और अपने परलोक वासी सम्बन्धियों के हित के लिए मंगल कामनाएं कीं। अन्त में कितने ही दरिद्रों के लिए अन्न के दान का संकल्प करके सभा विसर्जन की गई।

परलोक व्रत के अवसर पर उपदेश।

[सेवक, वैशाख १९६७ वि०]

आश्विन वदि अमावस्या सम्वत १९६६ वि० को

प्रत्येक जीवनधारी रात दिन जीने के लिए संग्राम करता है। उसका जीना उसकी जीवनी शक्ति के अस्तित्व पर निर्भर करता है। यदि उसकी यह जीवनी शक्ति विनष्ट हो जाय, तो फिर उसका न कोई व्यक्ति गत अस्तित्व रहता है, और न कोई जीवन।

जिस वृक्ष को तुम आज जीवित देखते हो, जिस में कोंपले फूटती हैं, नरम २ पत्ते निकलते हैं, कलियां बनती हैं, फूल खिलते हैं, अथवा इस से भी बढ़कर फल लगते हैं, उस वृक्ष में यह सब लक्षण उसी समय तक प्रकाशित होते हैं, जब तक उस के भीतर उसकी जीवनी शक्ति विद्यमान रहती है। परन्तु जब उसकी जीवनी शक्ति उसे त्याग करती है, अथवा वह नष्ट हो जाती है,

तब उस वृक्ष में वह सब लक्षण कुछ भी दिखाई नहीं देते—मानो जीवनी शक्ति के विनाश के साथ हि उसके कार्य्य के द्वारा जो २ लक्षण प्रकाश पाते थे, वह सब नष्ट हो जाते हैं। इसलिए प्रत्येक जीवनधारी के अस्तित्व में जीवनी शक्ति हि सार चीज़ है। मनुष्य के अस्तित्व में भी यही जीवनी शक्ति (जिसे आत्मा कहते हैं) सार पदार्थ है।

प्रत्येक जीवन्त अस्तित्व यह चेष्टा करता है, कि वह जीवित रहे, और मर न जाए। मनुष्य की जीवनी शक्ति भी सब से बढ़कर जो गाढ़ आकांक्षा रखती है, वह यही, कि मैं जीती रहूं, मर न जाऊं; मैं रहूं, मिट न जाऊं। यह आकांक्षा निश्चय स्वाभाविक है। परन्तु किसी जीवनी शक्ति का जीवित रहना वा न रहना उस की इच्छा पर नहीं, किन्तु प्रकृति के अटल नियमों पर अवलम्बित है। इसीलिए केवल जीने की आकांक्षा रखकर हि कोई मनुष्य अपने आत्मा को विनाश से नहीं बचा सकता, किन्तु उसके निमित्त नेचर ने जो ठीक और अटल पथ रक्खा है, उसके सत्य ज्ञान और उसे ग्रहण करने की योग्यता लाभ करने पर हि वह अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकता है। सारी नेचर में परिवर्तन का जो महा नियम काम कर रहा है, उसके अधीन रहकर किसी अस्तित्व के लिए सम्भव नहीं, कि

वह अपने आप को परिवर्तित न करे। उसके लिए बद-लना ज़रूरी है—ज़रूरी है, इसीलिए प्रत्येक अस्तित्व बदल रहा है। और बदल कर वह दो सूरतों में से कोई एक सूरत क़बूल करता है, अर्थात् या तो वह पहले से बेहतर हो जाता है या बदतर। या वह पहले से अच्छा बन जाता है या बुरा। परिवर्तन के इस महा नियम से कोई अस्तित्व अपना पीछा नहीं छुड़ा सकता। इसलिए जीवन विषयक नाश और विकास तत्व से बढ़कर मनुष्य के लिए और कोई श्रेष्ठ और हितकर ज्ञान नहीं है। इस ज्ञान की प्रत्येक मनुष्य को आवश्यकता है। इस ज्ञान की तुलना में मनुष्य का और सब ज्ञान और उसकी प्रत्येक विद्या बिलकुल तुच्छ है। जो जन इस ज्ञान से विहीन हैं, उस से बढ़कर कृपा पात्र और कोई नहीं। तब तुम उस अद्वितीय देवात्मा की अद्वितीय महिमा को उपलब्ध करने की चेष्टा करो, कि जिस ने मनुष्य जगत् के विकास क्रम में देव शक्तियों को प्राप्त होकर, उनकी ज्योति में जीवन के विनाश और विकास के सम्बन्ध में वह सत्य ज्ञान लाभ किया है, कि जिसे उस से पहले इस पृथिवी में किसी और ने लाभ नहीं किया था। यही वह देवात्मा हैं, कि जिस के द्वारा यह परम श्रेष्ट ज्ञान किसी न किसी अंश में कुछ और अधि-कारी आत्माओं को प्राप्त हुआ है। अधिकारी आत्मा

मैंने क्यों कहा ? इसलिए कि बिना आवश्यक योग्यता रखने के कोई जन किसी सत्य वा तत्व को उपलब्ध नहीं कर सकता । यथा, जो जन जन्म काल से अन्धा उत्पन्न हुआ है, उसके लिए सुन्दर पदार्थों का ज्ञान जैसे सम्भव नहीं, जिन पशुओं में बुद्धि विषयक कई एक मान्सिक शक्तियां वर्तमान नहीं, वह जैसे लड़कों के किसी स्कूल वा उनकी किसी जमायत के साथ हररोज़ वर्षों तक बैठकर भी गणित विद्या के नियमों को उपलब्ध नहीं कर सकते; और उनके असल तत्व को नहीं समझ सकते, और कभी भी गणितज्ञ नहीं बन सकते, क्योंकि ऐसा होना हि उनके लिए असम्भव है; वैसे हि अयोग्य जन जीवन विषयक महा तत्वों को उपलब्ध नहीं कर सकते। यह नहीं, कि गणित विद्या कोई विद्या नहीं, और उसके कोई सच्चे नियम नहीं; किन्तु बुद्धि विषयक कई मान्सिक शक्तियों से रहित होकर किसी पशु के लिए उनके विषय में ज्ञान लाभ करना जैसे असम्भव है, वैसे हि जीवन तत्व विषयक ज्ञान भी केवल उन्हीं को प्राप्त हो सकता है, कि जो उसके तत्वों के देखने और पकड़ने की योग्यता रखते हों, उनके भिन्न और किसी को नहीं।

अनधिकारी आत्मा जीवन तत्व के विषय में वर्षों तक उपदेश सुन सकते हैं। जिन पुस्तकों में जीवन विषयक तत्व ज्ञान मौजूद हो, उनका वर्षों तक पाठ कर

सकते हैं, परन्तु फिर भी वह जीवन विषयक तत्वों को उपलब्ध नहीं कर सकते। वह उनके सम्बन्ध में पहले की न्याई अज्ञान तिमिर में लिप्त रहते हैं। तब यह जीवन तत्व अथवा आत्म तत्व विषयक सत्य ज्ञान कितना महान है, कितना कीमती है, उसका कौन अनुमान कर सकता है? और अधिकारी आत्माओं के लिए उसका दान कितना महान है, कितना श्रेष्ठ है, उसका भी कौन अन्दाज़ा लगा सकता है? धन का दान, ज़मीन का दान, घर का दान, विद्या का दान इस दान के मुक़ाबिले में कोई चीज़ नहीं।

जीवन विषयक ज्ञान हमें बताता है, कि मनुष्य कब से है, और कहां से है। यदि तुम अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में इस प्रकार का प्रश्न करो, कि मेरा यह अस्तित्व कब से और कहां से और कब तक के लिए है? तो ऐसा ज्ञानी तुम्हें बता सकता है, कि एक काल था, जब कि तुम्हारे पिता माता तो थे, पर तुम न थे। तुम्हारे पिता माता के भिन्न तुम्हें और किसी ने जन्म नहीं दिया। इन्हीं के अस्तित्व से तुम्हारा अस्तित्व बना है। स्त्री के शरीर में जितने अंग होते हैं, उन में से एक का नाम अंडा दान है, जिस में एक २ सेल वाले अत्यन्त छोटे २ सैकड़ों अंडे तैयार होते है। मासिक रज के साथ यह अंडे बहकर बाहर आते हैं। अनुकूल समय में स्त्री के

साथ पुरुष का समागम होने पर जब पुरुष के शुक्र का सेल किसी अंडे में दाखिल होने का अवसर पाता है, तब स्त्री के बच्चे दान में इस गर्भित सेल में गठनकारी जीवनी शक्ति ज़ाहिर होकर भ्रूण निर्म्माण का काम आरम्भ करती है। इसीलिए जब तक यह दोनों न मिलें; तब तक उनके द्वारा कोई और अस्तित्व पैदा नहीं होता। इन दोनों के मिलने का नाम हि गर्भावस्था है, और गर्भाशय में जब यह गर्भित सेल स्थिर हो जाता है, तब उनके भीतर की जीवनी शक्ति गठनकारी रूप धारण करके बच्चे के बनाने का काम शुरू करती है। बच्चे के बनने में दो बातों की ज़रूरत है। (१) बनाने वाला (२) बनाने के निमित्त आवश्यक सामग्री। अब इस गर्भाशय में बनाने वाली वो गर्भित सेल की जीवनी शक्ति होती है, और बनाने की सामग्री गर्भवती स्त्री के वह करोड़ों जीवित सेल होते हैं, जो उसके रुधिर में विद्यमान होते हैं। गर्भाशय में जीवनी शक्ति वर्तमान रहकर स्त्री के खून के जीवित अणुओं को खैंच २ कर भ्रूण निर्म्माण करती है। यही भ्रूण जब सारे अंगों में पूर्ण हो जाता है, तब वह बच्चा बन जाता है। मां के शरीर के अन्दर जो थैली बच्चा दान कहलाती है, वह उसकी पहली दुनिया है, कि जिस में वह जन्म लेता और निर्म्माणित होता है। इस से पहले वह अपने पृथक अस्तित्व के विचार से कहीं न था। अगर

उसके मां बाप अपने दोनों तत्व को मिलाकर उसे गर्भस्थान में न पहुंचा देते, तो कोई बच्चा न बनता, और गर्भित तत्व की जीवनी शक्ति के विकसित होने से जो नया आत्मा तैयार हुआ, वह भी न होता। प्रकृति के इसी प्रकार के कार्य्य के द्वारा तुम और हम और मनुष्य जगत के और अस्तित्व तैयार हुए हैं। परन्तु जैसे उस बच्चे को जो गर्भाशय में बन रहा है, उसे गर्भाशय की दुनिया का कुछ पता नहीं होता, और जो खून उसकी खुराक बन रहा है, उसका भी उसे कुछ ज्ञान नहीं होता; और उस के निवास स्थान से अलग कोई और लोक है कि जिस में प्रसव होकर वह प्रति पालित होगा, उसकी भी उसे खबर नहीं होती, और उसके प्रसव होने पर जो स्त्री उसकी मां होकर उसका पालन करेगी, अथवा उसके जो पिता वा अन्य जन उसके भावी पालन में भाग लेंगे, उनकी भी कोई सुध नहीं होती; वैसे ही इस पृथिवी में लाखों मनुष्य अपने आत्मिक जीवन और परलोक सम्बन्धी ज्ञान के विचार से बेसुध पाए जाते हैं। वह यद्यपि परिवर्तन के महा नियम के अधीन रहकर रात दिन बदल रहे हैं, और उनके आत्मा भले वा बुरे रूप को ग्रहण कर रहे हैं, पर उन्हें उसका कुछ पता नहीं। इसी प्रकार पृथिवी से परे जो २ सूक्ष्म लोक आत्माओं के निवास के लिए हैं, उनकी भी उन्हें कोई खबर नहीं।

यहाँ की स्थूल देह छोड़ने पर उनके आत्मा का क्या परिणाम होगा, इसका भी उन्हें कुछ ज्ञान नहीं। वह जीवन विषयक तत्व ज्ञान से शून्य होकर अण्डे दान के बच्चे की तरह इस पृथिवी से परे सूक्ष्म लोकों और वहाँ के निवासियों और वहां पर विद्यमान अपने सम्बन्धियों आदि के विषय में कोई बोध नहीं रखते हैं। बच्चा जिस प्रकार बच्चे दान में रहकर उसके बाहर की दुनिया का कोई पता नहीं रखता, उसी प्रकार जीवन की फिलासफी से अज्ञानी जन परलोक विषयक सत्य ज्ञान से विहीन होते हैं। परन्तु फिर भी यह सत्य है कि परलोक है, और परलोक विषयक सम्बन्धी भी हैं और उनके साथ हमारा गाढ़ सम्बन्ध भी है।

देखो इस संसार में मृत्यु और परलोक तत्व से अज्ञानी होने के कारण लाखों मनुष्य कितने प्रकार के दुख भोगते हैं। एक २ मनुष्य जो परलोक तत्व से अज्ञानी है, वह अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में कितना भयभीत रहता है। जिस प्रकार जब तक तुम किसी रस्सी को सांप समझते हो, तब तक तुम्हारे भीतर भय उत्पन्न होकर तुम्हें आशंकित और अशान्त रखता है, और जब तक तुम्हें उसका ठीक ज्ञान न हो, तब तक तुम इस भय और अशान्ति से उद्धार नहीं पा सकते; उसी प्रकार जब तक मृत्यु और परलोक विषयक सत्य ज्ञान किसी मनुष्य

को प्राप्त न हो, तब तक चाहे वह धनी हो, विद्वान हो, वा कोई और हो, मृत्यु के भय से मुक्त नहीं होता। वह मृत्यु के ख़याल से हि डरता है, वह उसे अपने वा किसी प्यारे के लिए पसन्द नहीं करता। इसीलिए यदि उसे कोई द्वेष भाव से यह कहे "तू मर क्यों नहीं जाता" तो वह उसे अपने लिए गाली समझता है। वह एक २ सख़्त बीमारी में मृत्यु के भय से बहुत बेचैन होता है; क्योंकि, वह इस पृथिवी और यहां के घर और सम्पद, धन और सम्बन्धियों से परे अपने लिए किसी और लोक और सम्बन्धियों का ज्ञान नहीं रखता। इसीलिए वह अपने घर और धन और पदार्थ और किसी प्रिय सम्बन्धी आदि से वियोग होने का ख़याल आने से बहुत घबराता और क्लेश पाता है, और मृत्यु के द्वारा अपने नाना पदार्थों और सम्बन्धियों से छुट जाने के भिन्न अपने अस्तित्व के रहने के विषय में भी संदिग्ध चित्त होने से बहुत आशंकित रहता है।

इसके भिन्न लाखों जन मृत्यु और परलोक तत्व से अन्ध रहकर अपने किसी प्रिय सम्बन्धी के मर जाने से बहुत दुख पाते हैं और कितने हि जन इस गहरे शोक के कारण रोगी तक बन जाते हैं—और कितने हि जन उसे असह्य पाकर आप भी मर जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि परलोक और मृत्यु तत्व की

हक़ीक़त उन पर नहीं खुली। तब तुम सोचो और समझो कि यह ज्ञान किस क़दर महान है और किस क़दर हितकर है। और उसकी प्राप्ति और उसके प्रचार से मनुष्य जगत् में किस क़दर शान्ति आ सकती है, और किस क़दर दुख दूर हो सकता है।

फिर एक और बात जो इस सम्बन्ध में सोचने के योग्य है, वह यह है, कि जब किसी का सम्बन्धी इस दुनिया से उठ जाता है और उसे उसका कुछ पता नहीं होता, तब उसके साथ उसका कोई जीवन्त सम्बन्ध नहीं रहता, किन्तु धीरे २ उसकी याद तक चली जाती है। यदि इस पृथिवी में तुम्हारा कोई सम्बन्धी तुम से दूर रहता हो, तो तुम उसके साथ अपना सम्बन्ध टूटा हुआ अनुभव नहीं करते, तुम उसकी ख़बर रखते हो, उसके दुख दर्द का ख़याल रखते हो, उस से सहाय पाने और उसकी सहाय करने के लिए तैयार रहते हो; परन्तु जब वही जन मर जाता है, तब तुम मृत्यु और परलोक तत्व से अज्ञानी रहकर उसके साथ इस प्रकार का कोई सम्बन्ध अनुभव नहीं करते। पत्नी के मरने पर उसके साथ उसके पति का, भाई के मरने पर उसके भाई वा उसकी बहिन का, गुरु के मरने पर उसके साथ उसके शिष्य का, मानो कोई जीवन्त सम्बन्ध नहीं रहता, और सब कुछ साफ़ हो जाता है। परन्तु जिन्हें मृत्यु और

परलोक विषयक सत्य ज्ञान प्राप्त है, उनका जैसे इस लोक के सम्बन्धियों के साथ जीवन्त सम्बन्ध रहता है, वैसे हि उनके परलोक वासी हो जाने पर भी। उन्हें अपने बेटे, बेटी, माता, पिता, दादा दादी, भाई, बहिन और गुरु आदि के साथ जैसे यहां सम्बन्ध बोध होता है, वैसे हि उनके इस पृथिवी के त्याग करने और किसी अन्य लोक में चले जाने पर भी।

इस सम्बन्ध को जीवन्त रूप से अनुभव करने पर हम एक दूसरे के लिए सहायक बनने के आकांक्षी रहते हैं। यदि हमारा कोई सम्बन्धी हो और हमारे किसी काम न आता हो, तो हमारे लिए उसका होना वा न होना बराबर है। हमारा जो बेटा, और हमारा जो सेवक वा अन्य सम्बन्धी हमारे लिए सेवाकारी नहीं, वह हमारे लिए कुछ भी सच्चा सम्बन्धी नहीं। और यदि हम किसी के सम्बन्धी हैं, और उसके लिए हम सेवाकारी वा सहायक नहीं प्रमाणित होते, तो हमारा सम्बन्धी होना वा न होना बराबर है। और इस से भी बढ़कर यदि हमारा कोई सम्बन्धी हमारे लिए हानि-कारक और दुखदाई हो, तो वह केवल यही नहीं, कि हमारा सच्चा सम्बन्धी नहीं, किन्तु वह हमारा शत्रु और हमारे लिए राक्षस है। परलोक और मृत्यु तत्व को समझ कर जब हम यह समझते हैं, कि जो यहां हमारे

हैं, वह जहां कहीं हों, हमारे हि हैं, और हम उन्हें अपना समझ कर और वह हमें अपना समझ कर जब परस्पर के लिए सेवाकारी बनते हैं, तब हमारा यह सम्बन्ध कैसा सुन्दर और कैसा मीठा बन जाता है, और हम सब के लिए कैसा हितकर प्रमाणित होता है।

देव धर्म्म प्रवर्तक ने मृत्यु और परलोक विषयक सत्य ज्ञान को लाभ करके परलोक यज्ञ और व्रत साधन विषयक जो विधि स्थापन की है, वह कैसी निराली है और मनुष्य मात्र के लिए कैसी हितकर है। हिन्दुओं में यद्यपि परलोक वासियों के सम्बन्ध में श्राद्ध और तर्पण के नाम से जल और पिंड अर्पण करने की प्रथा प्रचलित है, परन्तु वह कैसा बेहूदा है। परन्तु हमारे यहां जिस श्राद्ध और तर्पण की शिक्षा दी जाती है, वह कैसा सत्य, कैसा श्रेष्ठ और कैसी हितकर है। याद रक्खो कि परलोक तत्व विषयक सत्य ज्ञान के बिना परलोक यज्ञ विषयक कोई सच्ची और हितकर विधि स्थापन नहीं हो सकती।

श्राद्ध क्या है ? अपने किसी सम्बन्धी के सम्बन्ध में श्रद्धा के प्रकाश का कोई हितकर साधन। जब तक किसी मनुष्य में अपने किसी सम्बन्धी के किसी उच्च गुण वा उच्च भाव के लिए श्रद्धा का भाव जाग्रत न हो, तब तक वह उसके प्रति न श्रद्धा अनुभव कर सकता है,

और न उसका प्रकाश कर सकता है; किन्तु कई बार अपनी नीच प्रकृति के वश होकर श्रद्धा के स्थान में अपमान-मूलक नाना क्रियाओं का प्रकाश अवश्य कर सकता है। धर्म्म विहीन आत्मा अपने किसी श्रद्धेय सम्बन्धी के लिए न उस के इस पृथिवी में विराजमान रहने के दिनों में श्रद्धावान हो सकता है, और न उसके परलोक वासी होने पर। धर्म्म विहीन आत्मा किसी सम्बन्धी से नाना उपकार पाकर भी अपने उपकार कर्ता की कोई महिमा नहीं देखता, और उसके प्रति श्रद्धावान वा सेवाकारी बनने के लिए कोई आकांक्षा अनुभव नहीं करता। इसीलिए जब तक तुम में अपने सम्बन्धियों के किसी शुभ गुण, वा अपने प्रति उनके किसी विशेष उपकार के लिए श्रद्धा और कृतज्ञता आदि भाव उदय न हों, तब तक उनके सम्बन्ध में तुम श्राद्ध का साधन नहीं कर सकते।

तर्पण क्या है? अपने किसी उच्च सम्बन्धी की किसी शुभ इच्छा को पूरी करके उसकी तृप्ति करना। अथवा किसी छोटे से छोटे सम्बन्धी के मंगल के लिए चेष्टा करके, उस के द्वारा अपने मंगल भाव की तृप्ति करना। इसलिए यदि हम सच्चा तर्पण करना चाहें, तो वह अंजली के द्वारा जल के उछालने से नहीं हो सकता। किन्तु इस बात के विचार के द्वारा कि हमारी गतियां कैसी

हैं, और उन्हें देखकर हमारे परलोक वासी नाना उच्च सम्बन्धी तृप्ति पावे हैं या नहीं, हम उनकी तृप्ति वा प्रसन्नता के लिए किसी नीच गति से निकलने और किसी उच्च गति के ग्रहण करने के लिए आकांक्षा अनुभव करें।

अब जिन २ साधनों के द्वारा इस प्रकार से सत्य श्राद्ध और तर्पण पूरा होता हो, वही साधन परलोक यज्ञ विषयक सत्य और श्रेष्ठ साधन हो सकते हैं। और देव धर्म्म प्रवर्तक ने ऐसे हि नाना सत्य और शुभकर साधनों की अपने स्थापित परलोक यज्ञ में शिक्षा दी है।

तब तुम देखो कि मृत्यु और परलोक विषयक तत्त्व ज्ञान से मनुष्य समाज से कितना हि कुछ भय और दुख दूर हो सकता है, और मनुष्य अपने परलोक वासी सम्बन्धियों और अपने आत्मा के लिए कितना हितकर बन जाता है। जीवनी शक्ति के सम्बन्ध में इस सत्य ज्ञान के मिलने से कि अनुकूल अवस्था में जैसे वह गर्भाशय में अपने लिए स्थूल शरीर निम्माण करती है, वैसे हि स्थूल देह के छोड़ने पर उस में से सूक्ष्म परमाणुओं को खैंचकर अपने लिए सूक्ष्म शरीर निम्माण करती है, और यह जीवनी शक्ति हि है, कि जो अपने लिए शरीर रचने का काम करती है, कोई मनुष्य स्थूल देह की मृत्यु से भयभीत नहीं होता, और नहीं हो सकता।

और परलोक विषयक सत्य ज्ञान के मिल जाने से वह यह जानकर कि परलोक विषयक जिस दर्जे उच्च लोक में पहुंचना हो, उसके लिए उतने हि दर्जे उच्च जीवन के लाभ करने की आवश्यकता है, और उस में उस से उतने हि दर्जे अधिक सुख शान्ति और आत्मा के विकास की अनुकूल सामग्री मिल सकती है, मनुष्य एक ओर नीच गति प्रद जीवन से मोक्ष और उच्च गति प्रद जीवन का आकांक्षी बनता है, और दूसरी ओर अपने परलोक वासी सम्बन्धियों के साथ धर्म्म गत सम्बन्ध स्थापन करके और परलोक यज्ञ विषयक साधन करके अपना और उनका हित साधन करता है। देवगुरु आरती के एक पद में देव धर्म्म प्रवर्तक के सम्बन्ध में "जय मृत्यु हन्ता" के जो शब्द व्यवहृत हुए हैं, वह एक ओर जैसे यह सत्य प्रकाशित करते हैं, कि उनकी धर्म्म शक्तियों को कोई मनुष्य आत्मा जहां तक लाभ करने के योग्य होता है, वहां तक वह उन्हें अपने आत्मिक विनाश से उद्धार कर्ता पाकर "जय मृत्यु हन्ता" कहकर उनकी महिमा गा सकता है, वहां दूसरी ओर उन से शारीरिक मृत्यु विषयक सत्य ज्ञान की ज्योति को पाकर उसके अनुचित भय से भी परित्राण पाकर उस पर जय लाभ करता है।

देव धर्म्म प्रवर्तक ने मृत्यु और परलोक तत्व विषयक जिस सत्य ज्ञान की शिक्षा दी है, वह ज्ञान कितना अमूल्य और कैसा निराला है, उसको वही जन अनुमान कर सकते हैं, जिन्हें इस महा श्रेष्ट ज्ञान के लाभ करने का अधिकार प्राप्त हुआ है। इस ज्ञान को पाकर तुम अपने परलोक वासी सम्बन्धियों के साथ धर्म्म गत सम्बन्ध स्थापन करके अपना और उनका आत्मिक हित साधन कर सकते हो, तुम अपने उच्च भावों के द्वारा उनके साथ हितकर योग स्थापन कर सकते हो और वह अपने उच्च भावों के द्वारा तुम्हारे साथ योग स्थापन कर सकते हैं। जिस व्योम में बिजली की लहर पैदा करके एक वैज्ञानिक जन तार के बिना सैकड़ों मील की दूरी पर एक और जन को खबर पहुंचा सकता है, उसी व्योम में तुम अपने उच्च भावों की लहर पैदा करके उन्हें अपने किसी परलोक वासी प्रिय सम्बन्धी तक पहुंचा सकते हो। यह सारी नेचर व्योम (ईथर) से भरी हुई है, और जैसे बिजली की लहर व्योम के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुंचती है, वैसे हि हमारी भाव मूलक चिन्ता की लहरें एक स्थान के सम्बन्धियों से निकल कर दूसरे स्थान के सम्बन्धियों तक पहुंचती हैं। इसी नियम के द्वारा दूर स्थान पें बैठा हुआ शिष्य, अपने हृदय का अपने धर्म्म गुरु के साथ योग करता है,

तो हमारी देव ज्योति और शक्ति उस तक पहुंचती है। और कोई धर्म्म आकांक्षी जब हमारा ध्यान करके हम तक अपने हृदय के उच्च भाव से परिचालित होकर उस की ऐसी लहर हम तक पहुंचाता है, कि "हे पूजनीय भगवान्! जिस प्रकार से आप अमुक सत्य को अपनी ज्योति में देखते हैं, उसी प्रकार तुम्हारी ज्योति पाकर मैं भी उसे उसी रूप में देख सकूं; जिस प्रकार आप अमुक पाप को घृणा करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारी घृणा शक्ति को पाकर मैं भी उसे घृणा कर सकूं; जिस प्रकार आप अमुक भलाई को प्यार करते हैं,उसी प्रकार तुम्हारी इस प्यार शक्ति को पाकर मैं भी उसे उसी प्रकार प्यार कर सकूं;" तो निश्चय हमारी ज्योति और शक्ति उसे प्राप्त होती है। और जो शिष्य इस प्रकार हृदय गत कामना कर सकता है, वही सच्ची प्रार्थना करता है, और उसी की प्रार्थना सफल होती है। देवात्मा के साथ इस प्रकार का हृदय गत योग करके प्रत्येक स्थान से उन का योग्य शिष्य उनकी सच्ची पूजा कर सकता है। तुम अपने प्रिय परलोक वासी सम्बन्धियों को भी इसी प्रकार स्मरण करके, उनके उच्च परिवर्तन, और उनके उच्च जीवन के विकास के लिए मंगल कामना करके उनका भला कर सकते हो, और वह अपनी शुभ कामनाओं के द्वारा तुम्हारे हित साधन में सहायक बन सकते हैं।

शुभाकांक्षी बनकर दोनों हि एक दूसरे के साथ कैसा मधुर, कैसा सुन्दर और कैसा हितकर सम्बन्ध स्थापन करते हैं। मेरे कितने हि सम्बन्धी जो पहले नीच अवस्था में थे, वह मेरी मंगल कामनाओं के द्वारा अब उच्च अवस्था को पाकर उच्च लोकों में पहुंच गए हैं। इस सहारा के भिन्न कई परलोक वासी सम्बन्धी यहां पहुंच कर भी अपने किसी प्रिय सम्बन्धी की बीमारी और दुखिया अवस्था में शुभ रू. से सहाय करते हैं। कैसा मनोहर दृश्य! वह हमारी सहायता करते हैं और हम उनकी सहायता करते हैं। हम उनके लिए सेवाकारी बनते हैं और वह हमारे लिए सेवाकारी बनते हैं।

अब यदि तुम्हें मृत्यु और परलोक तत्व विषयक ज्ञान प्राप्त हुआ हो, तो तुम अपने प्रिय सम्बन्धियों से उदासीन और बागी नहीं रह सकते। तुम अपने आत्मा की गतियों से बेसुध नहीं रह सकते, अपने आत्मा को नीच गतियों से मोक्ष देने और उच्च गतियों में विकासित करने की ओर से बेपरवाह नहीं हो सकते। तुम में से जिस २ ने इस सत्य ज्ञान की ज्योति पाकर अपने परलोक वासी सम्बन्धियों के सम्बन्ध में परलोक यज्ञ विषयक जहां तक किसी प्रकार का साधन किया है, वह वहां तक अपने आप को इस समय कृतार्थ अनुभव कर सकता है। तुम में से जो जन अपने आप को इस प्रकार

कृतार्थ अनुभव करते हों, उन्हें इस यज्ञ के स्थापन कर्ता की महिमा को सन्मुख लाना चाहिए। और उनकी शिक्षा से तुम्हारा जो २ कुछ उपकार हुआ हो, उसे स्मरण करके उनके साथ अपने सम्बन्ध को गाढ़ करना चाहिए। ऐसे जीवन दाता गुरु के साथ तुम्हारा जितना सम्बन्ध गाढ़ होगा, उतना हि और नाना सम्बन्धों के साथ तुम्हारा शुभकर सम्बन्ध स्थापन होगा। हमारी यह हार्दिक आकांक्षा है, कि तुम अपने जीवन दाता के अनुरागी और अधिक से अधिक अनुरागी शिष्य बनकर उनकी धर्म्म विषयक और सत्य शिक्षा के भिन्न उनके मृत्यु और परलोक विषयक सत्य ज्ञान को प्राप्त होकर और परलोक यज्ञ विषयक साधनों के अधिकारी बनकर अपने और अपने परलोक वासी सम्बन्धियों के लिए भली भांत शुभकर प्रमाणित हो।

१०—स्वजाति व्रत के सम्बन्ध में उपदेश।

[आश्विन शुदि दसवीं सं० १६५४ वि०]

जब हमारे भीतर एक ओर अपने उच्च जीवन विषयक ज्योति और शक्ति दाता, जीवन पथ प्रदर्शक और जीवन दाता के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, और दूसरी ओर हमारी अपेक्षा जो जन नीच अवस्था में पड़े हुए हैं, अथवा नीच गति के अधीन होकर धीरे २

अपने आत्मिक जीवन की शक्ति को केवल यही नहीं, कि खोते जाते हैं, किन्तु उसके साथ २ अपने लिए और औरों के लिए नाना प्रकार के अनुचित क्लेश और दुख भी उत्पन्न करते जाते हैं, उन्हें इस अवस्था में देखकर हमें सुख नहीं मिलता, हमें प्रसन्नता भी नहीं होती, और २ अपने जीवन दाता के प्रति श्रद्धा भाव के द्वारा हमारा अहं इतना चुग्ग हो जाता है, कि हम औरों को अपने से इस नीची अवस्था में, आध्यात्मिक दुर्वस्था में, अथवा शारीरिक दुर्वस्था में देखकर केवल यही नहीं, कि फूलते नहीं और उस से सुख बोध नहीं करते, किन्तु प्रकृत दीनता भाव के साथ ऐसी नीच अवस्था-प्राप्त जनों के प्रति हमारे भीतर जो शुभ का भाव उत्पन्न हो सकता है, उसके लाभ करने के अधिकारी बन जाते हैं। उस हिताकांक्षा अथवा हितैषिता के उच्च, अति सुन्दर और उच्च गति दायक भाव को प्राप्त होकर हम अपनी न्याईं औरों को भी जहां तक उनकी अवस्था के अनुसार सम्भव हो, उच्च से उच्च देखने की अभिलाषा अनुभव करेंगे। और क्या उनके शरीर और क्या उनके आत्मा को प्रत्येक अनुचित दुख और क्लेश और नीच गति से उद्धार पाने और उच्च गति दायक सुख, शान्ति, आनन्द, बल, धैर्य्य, शक्ति और सौन्दर्य्य में विकसित होने की आकांक्षा भी अनुभव करेंगे। ऐसी हितैषिता के

जाग्रत और उन्नत होने से जहां हमारा जीवन प्रशस्त होता है, हमारा आत्मा विकसित होता है, वहां हमारे द्वारा हमारे और सम्बन्धियों का भी उच्च और प्रकृत हित साधन होता है। इस हितैषिता के भाव को प्राप्त होकर जैसे एक ओर हम अपने परिवार में जो अपने से हीन हैं, उनको हीन अवस्था में देखकर सन्तुष्ट नहीं रह सकते, वैसे हि इस भाव के और भी वर्द्धित होने पर हमारी धर्म्म समाज और इस से भी अतिरिक्त हमारी जाति में जो कुछ हीनता हो, जीवन के जिस किसी अंश में हीनता हो, उस को देखकर भी हम सन्तुष्ट नहीं रह सकते। वरंच इसके विपरीत इस अवस्था के दूर करने और ऐसी नीच अवस्था से उद्धार पाने और दिनों दिन उच्च से उच्च अवस्था की ओर अग्रसर होने में हि और अग्रसर करने में हि हम सन्तोष और तृप्ति लाभ करेंगे। अपने और औरों के हित के आकांक्षी होकर हि और हित के लिए चिन्ता और कार्य्य करके हि हम अपने आत्मिक जीवन को उन्नत और अपने आत्मा को विकसित कर सकते हैं। इस हित आकांक्षा में हम दूसरों को हीन वा नीच अवस्था में देखकर सन्तुष्ट न हो सकें, तब हि हम आप किसी चिन्ता और क्रिया के द्वारा क्या अपने परिवार क्या अपनी धर्म्म समाज और क्या अपनी जाति के किसी जन को नीच गति

की ओर ले जाना अथवा उसे कोई अनुचित क्लेश देना वा हानि पहुंचाना अथवा उसके किसी प्रकृत और सच्चे अधिकार को नष्ट करना कभी भी उचित बोध नहीं कर सकते। इसीलिए प्रकृत हितैषिता के साथ हमारे लिए एक ओर जहां अपने ऐसे प्रत्येक सम्बन्ध में नीच गति मूलक सम्बन्ध सूत्र का काटना और त्याग करना स्वाभाविक हो जाता है, वहां उच्च गति मूलक सम्बन्ध सूत्र का स्थापन करना भी स्वाभाविक और सुख दायक बोध हो सकता है। इसी उच्च गति दायक हितैषिता को प्राप्त होकर जब हम धीरे २ अपनी जाति के सम्बन्ध में भी उसके कल्याण के इच्छुक हो जाएं, तब हम एक ओर उसका अपनी किसी चिन्ता और क्रिया के द्वारा कोई अहित करना नहीं चाह सकते, वहां दूसरी ओर उनके क्या शारीरिक और क्या आध्यात्मिक प्रत्येक प्रकृत कल्याण के बढ़ाने की आकांक्षा बोध करेंगे। तब हम सचमुच जातीय अनुराग अथवा जाति हितैषिता को प्राप्त करके इस उच्च गति दायक भाव के द्वारा, अपनी २ अवस्था के अनुसार, अपना और अपनी जाति का जहां तक सम्भव हो कल्याण साधन कर सकते हैं। यही कल्याण साधन करना, यही अपनी जाति के सम्बन्ध में अपने जीवनों को उन्नत और प्रशस्त करना और अपने जाति जनों के प्रति अपने उच्च अनुराग को बढ़ाना, जो कुछ

अपनी जाति के भीतर हितकर है, हज़ारों वर्षों से अपनी जाति के महा पुरुषों ने एक वा दूसरे प्रकार के उच्च भावों वा सद्गुणों को प्राप्त होकर अपनी जाति का जो कुछ कल्याण किया है, और जिस २ अंश में कल्याण [illegible]या है, उसके विषय में अवगति प्राप्त करना, और जहां [illegible] जातीय जीवन-उन्नति की ओर बढ़ा है, उसकी जांच पड़ताल करना और उसकी रक्षा करने की चेष्टा करना; और जहां तक जातीय जीवन नीच गति की ओर गया है, जिस २ अंश में नीच गति को प्राप्त हुआ है, उसकी भी छान बीन करके उस को भी हानिकारक रूप में देखना; और जो कुछ शुभ है, कल्याणकारी है उसकी रक्षा और उन्नति करने के लिए चेष्टा करना, और जो कुछ अशुभ है, उसके दूर करने के लिए यत्न करना, और इस सब से बढ़कर जो उच्च गति दायक हितैषिता, उच्च जीवन वर्द्धक हितैषिता, प्रकृत जातीयता का प्राण है, उस हितैषिता को औरों में संचार करना, अर्थात् औरों को और अपने जातीय जनों को सात्विक जीवन की ओर लाकर उनके भीतर प्रकृत जातीयता के भाव को उन्नत करना स्वजाति यज्ञ का उद्देश्य है। जहां तक इन थोड़े से दिनों में हम लोगों ने अपनी चिन्ता, अपनी मंगल कामना अथवा अपने और साधनों के द्वारा इस उद्देश्य को कुछ भी पूरा किया है, वहां तक हमारे लिए निश्चय

यह यह उत्कृष्ट हुआ है । इस समय हम जातीयता के भाव को हम अपने सन्मुख लाएं, कि यह भाव कहां तक हमारे हृदय में उन्नत वा प्रशस्त हुआ है, वा कहां तक इस भाव के द्वारा परिचालित होकर हम अपने जाति जनों के कल्याण के आकांक्षी हुए हैं । हम अपनी अवस्था के अनुसार ऐसे कल्याण साधन में जहां तक प्रीति और सुख अनुभव कर सके हों, उस को सन्मुख लाएं, और फिर इस स्वर्गीय दृश्य को सन्मुख लाकर जहां तक यज्ञ के दिनों में यह स्वर्गीय भाव बढ़ा हो, और उनके लिए कल्याणकारी हुआ हो, वहां तक अपने आप को धन्य २ अनुभव करें । और जिस यज्ञ विधाता जीवन दाता अथवा और सहायकारियों की सहायता और आशीर्वाद से जहां तक हमारा जीवन हमारे और औरों के लिए कल्याणकारी हुआ हो, जहां तक हमारा जीवन इस स्वर्गीय भाव में उन्नत हुआ हो, वहां तक उन्हें भी धन्य २ कहें और उनके प्रति, उनके पद की मर्य्यादा के अनुसार, अपनी श्रद्धा अथवा अपने स्नेह और प्रीति भाव को वर्द्धित करें । अपनी जाति की दुर्वस्था को सन्मुख लाकर उसके दूर होने के निमित्त, और जिस विधि से वह अधोगति से निकलकर उच्च गति प्राप्त हो सकती हो, उस में जातीयता का भाव पैदा हो सकता हो, उस में और सद्गुण, शुभ गुण उत्पन्न हो सकते हों, उन के

लिए मंगल कामना करें, और इस प्रकार अपने आज के इस व्रत को सफल करें।

यदि पर हितैषिता वा परोपकार का भाव किसी आत्मा के भीतर उदय हो, तो वह अपनी स्वर्गीय लीला का प्रकाश करता है, स्वर्गीय रस और आनन्द को विस्तीर्ण करता है, अर्थात् उसे दूसरों की हीन अवस्था के देखने में सुख नहीं मिलता, किन्तु उन के दुख और क्लेश से अथवा उसके अशुभ से उसका हृदय दुखित होता है, नम्र होता है। एक ओर जब कोई आत्मा उच्च गति दायक सूत्रों के द्वारा जीवन दाता, ज्योति और शक्ति दाता देवात्मा की सच्ची पूजा करने के योग्य बनता है, और दूसरी ओर इस पूजा भाव के द्वारा विशेष कर अपने अहं को चूरण करके अपने से हीन अवस्था सम्पन्न लोगों के प्रति हित आकांक्षा अनुभव करता है, तब उसके भीतर हितैषिता उन्नत हो सकती है। तब ऐसा हो, कि जिस हितैषिता के द्वारा जीवन विकासित होता है, वह हितैषिता तुम्हारे भीतर दिनों दिन उन्नत हो, तुम इस हितैषिता के चिन्तन के द्वारा, इस हितैषिता के कार्य्य और साधन के द्वारा अपने जीवनों को प्रशस्त कर सको।

हे हिन्दु जाति ! तू हमारी स्वजाति है, तेरे प्रति हमारा अनुराग वर्द्धित हो, तेरे प्रति हमारा अनुराग गहरा हो, तेरा जो कुछ अतीत काल में जीवन है, वह

हमारे सन्मुख आवे, अथवा उसके ढूंढने के लिए हम चेष्टा करें। अतीत काल में तेरी जो कुछ नीति रही है, वा जो जीवन तेरा अब है, उसे देखकर मुख्य लक्ष्य की महिमा दिखलाने वाली ज्योति के द्वारा तुझे देखने की चेष्टा करें। एक ओर यह मुख्य लक्ष्य हो, और दूसरी ओर तेरी अवस्था हो, एक ओर मुख्य लक्ष्य विषयक सात्विक और देव जीवन सम्बन्धी भाव सन्मुख हों, और दूसरी ओर उस लक्ष्य की तुलना में जो तेरी अवस्था है, अर्थात् जो तुझ में नहीं वा जो विपरीत भाव तुझ में वर्तमान हैं, उनको हम देख सकें। नीच गति दायक नीच भाव जिन से तुझे अधोगति प्राप्त हुई है, वह तेरी जिस नीति में हों, जिस क्रिया में हों, जिस अनुष्ठान में हों, जिस प्रथा में हों, जिस आचरण में हों, हम धीरे २ उन्हें जान कर हितैषिता के द्वारा परिचालित होकर उन को दमन करना चाहें, चाहे वह कैसे हि पुराने हों, चाहे उनके साथ हमारे अपने और हमारे जातीय जनों के भीतर कैसा हि मोह पैदा हो चुका हो, चाहे वह कैसे हि अन्धे होकर इस अवस्था में रहना चाहते हों, तो भी हम कटिबद्ध होकर, उत्साहित होकर, कल्याण आकांक्षी हो कर, सत्य प्रिय होकर जो कुछ नीचता-जनक है, उसको धीरे २ विनष्ट करने के लिए यत्न शील हों। और जो कुछ उच्च गति दायक है, चाहे उनके लिए हमारी जाति की

जीवन भूमि इस समय कैसी हि कठिन बोध होती हो, तो भी हम उसका बीज बोने के लिए और इस बीज को अपने जीवन के रुधिर के द्वारा, अपने जीवन की शक्तियों के द्वारा प्रस्फुटित, और उन्नत करने के लिए चेष्टा करें। और इस प्रकार हे जाति! अपनी उत्पत्ति के समय में हम में से प्रत्येक ने तुझे जिस अवस्था में पाया, अपनी इस स्थूल देह के छोड़ने पर तुझे अपनी शक्ति के अनुसार जहां तक सम्भव हो, उस से कहीं उन्नत अवस्था में देख सकें और छोड़ सकें। हमारे भीतर ऐसा हितकर जातीय अनुराग उन्नत हो, प्रकृत जाति हितैषिता का भाव उन्नत हो, ऐसे शुभ अवसर हमें प्राप्त हों, कि जिन से यह हमारा भाव पुष्टि लाभ करे, और उसके अनुसार हम कार्य्य करने का अवसर पा सकें। ऐसी दुर्घटनाएं न आएं, कि जिन से हमारे उच्च भाव दब जाएं, वा रुक जाएं। हम इस प्रकृत उच्च भाव के द्वारा दिनों दिन अपने जीवन को विकसित करके इस भाव को अपने अधिकारी जाति जनों के भीतर संचार कर सकें। हे हमारी प्रिय जाति! हम अपनी अवस्था के अनुसार तेरा न केवल आध्यात्मिक बल्कि शारीरिक कल्याण भी कर सकें। हां, प्रत्येक अशुभ के दूर करने में कुछ न कुछ सहाय हो सकें। ऐसी हि मैं मंगल कामना करता हूं, और ऐसा हि मैं आशीर्वाद देता हूं। हमारी यह मंगल कामना पूर्ण हो, हमारा यह

आशीर्वाद सफल हो। हे हिन्दु जाति! तेरा कल्याण हो, हे हिन्दु जाति ! तेरा शुभ हो, हे हिन्दु जाति ! तेरे सारे दुख दूर हों, हे हिन्दु जाति ! तेरी दुर्गति दूर हो, तेरी नीच अवस्था नष्ट हो। तेरे भीतर जो अतीत काल में गौरव था, वह फिर जीवत हो, वह गौरव तुझे फिर प्राप्त हो। और इस गौरव के प्राप्त होने के भिन्न तू इस वर्तमान काल में और जातियों की तुलना में खड़ी होकर जिस २ गौरव की और जिस २ सद्गुण की अधिकारी हो सकती है, वह सब गौरव और सद्गुण तुझे प्राप्त हों।

अम्बाला में स्वजाति व्रत पर उपदेश का सार।

(जीवन पथ पौष सं० १९६० वि०)

प्राय: आठ बजे भगवान् देवात्मा ने स्वजाति व्रत का साधन कराया। स्वजाति का सम्बन्ध और उस में "हिन्दु जाति" की जातीय दुर्वस्था और उसकी प्रकृत आवश्यकता के विषय में एक अत्यन्त तेजस्वी उपदेश दिया।

इस उपदेश में पूजनीय भगवान् ने बताया, कि यद्यपि हिन्दुओं की संख्या करोड़ों की है, परन्तु उन में अपनी किसी साधारण दुख वा क्लेश वा हानि से निकलने और किसी प्रकार के हित लाभ करने के लिए परस्पर मिलने और मिलकर उपाय सोचने और अवलम्बन करने की पवित्र कामना नहीं। इसीलिए वह हज़ारों वर्ष तक

साथ रहकर भी कोई बलिष्ट जाति नहीं बन सके, और पराधीन रहकर अत्यन्त हीन और नीच अवस्था रखते हैं। उनके भीतर कोई जातीय भाव नहीं फूटा और इसी लिए उन में कोई जातीय बल पाया नहीं जाता। जातीय बल और उनकी धर्म्म सम्बन्धी फिलासफी और उनके धर्म्म मतों और वर्ण और कुलभेद सम्बन्धी नाना सामाजिक प्रथाओं ने उन्हें जातीय भाव के साथ जोड़ने के स्थान में उलटा उन्हें फाड़ने और अलग २ करने में हि मदद दी है, जिस से उन्हें महा हानि पहुंची है। इस से भी बढ़कर उनके भीतर यहां तक नीचता आ गई है, कि अब वह अपनी किसी भलाई के कार्य्य में सहायक बनने के स्थान में उलटा उसके विरोधी बनते हैं।

हिन्दुओं की ऐसी दुर्वस्था को सन्मुख लाकर उनके कल्याण की ओर से एक २ बार अत्यन्त निराशा उत्पन्न होती है, और उनके भीतर जातीयता का भाव संचार करना अत्यन्त कठिन काम दिखाई देता है। परन्तु फिर भी जो लोग देव धर्म्म प्रवर्तक के साथ जुड़ते हैं, उनके भीतर अन्य उच्च बोधों और उच्च शक्तियों के भिन्न इस जातीयता के हितकर भाव का संचार करने का भी यत्न किया जाता है। यह इसी यत्न का फल है, कि इस समय हमारी समाज में कितने हि जन ऐसे हैं, कि जो हिन्दुओं के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक

और आध्यात्मिक हित साधन के लिए अपनी २ शक्तियां खर्च कर रहे हैं।

इस उपदेश के अनन्तर भगवान् देवात्मा ने विजातीय और विदेशीय वस्तुओं के व्यवहार के स्थान में यथा सम्भव स्वजातीय और स्वदेशीय वस्तुओं के व्यवहार करने की आवश्यकता को प्रगट किया, जिस पर बहुत से जनों ने यह प्रतिज्ञा की, कि वह जहां तक हो सकेगा, अन्य लोगों की बनाई हुई वस्तुओं के स्थान में अपनी जाति वा देश के लोगों की बनी हुई वस्तुओं का व्यवहार किया करेंगे।

११-भौतिक जगत् सम्बन्धी व्रत के अवसर पर उपदेश का सार।

[कार्तिक वदि अमावस्या सं० १९५३ वि०]

साधन का उद्देश।

कोई साधक साधन से केवल उस समय लाभ उठा सकता है, कि जब

(१) उसकी सारी चिन्तन वा Consciousness की शक्तियां इस साधन की ओर हि लगी हुई हों, अर्थात् उसका चित और सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्ति लाभ करके केवल साधन में हि प्रवृत हुआ हुआ हो।

(२) साधक ऐसी अवस्था अथवा अधिकार वा योग्यता लाभ कर चुका हो, कि जिस से वह इस साधन के भाव के साथ मेल रखकर उसे अपने भीतर ग्रहण कर सकता हो और उन तत्वों को कि जिन का साधन में वर्णन हो, समझ सकता और उन्हें अपने जीवन में ढाल सकता हो।

(३) साधन के भाव और साधन कर्ता अथवा उपदेशक वा शिक्षक के प्रति उस के भीतर गाढ़ श्रद्धा वर्तमान हो, अर्थात् जहां एक ओर वह उस साधन की अपने जीवन की उच्च गति और उसके उच्च मार्ग पर चलने की आवश्यकता बोध करता हो, और उस में अपने जीवन का हित और कल्याण देखता हो, इसीलिए उस के प्रति अपने भीतर भूख अनुभव करता हो, वहां दूसरी ओर शिक्षा दाता के प्रति उसके भीतर गाढ़ श्रद्धा का भाव वर्तमान हो, कि जिस श्रद्धा भाव के होने से वह शिक्षा दाता के साथ योग कर सकता है, और उसके साथ एकाकार होकर उस के भीतर के पवित्र भावों को अपने भीतर ग्रहण कर सकता है। जिस क़दर यह श्रद्धा का भाव किसी साधक के भीतर अधिक होगा उतना हि उसका योग गहरा हो सकेगा, और वह हृदय को भी अधिक एकाग्र कर सकेगा, और अपनी योग्यता को भी धीरे २

बढ़ाता जा सकूंगा।

हम ऐसे हि साधन होते हुए देखना चाहते हैं, और ऐसे हि साधन सचमुच सार्थक होते हैं। हर्ष है, कि अभी तक हमारे यहां पर्मीस्ट (प्रोहित) पैदा नहीं हुए, और शायद आगे को भी कोई प्रोहित बनने की हमारे यहां हिम्मत न कर सके। कम से कम मैं चाहता हूं, कि कभी हमारे यहां कोई प्रोहित पैदा न हो। प्रोहित लोग कौन होते हैं ? वह जो किसी साधन की केवल नक़ल कर सकते हैं, जो कि किसी साधन अथवा अनुष्ठान की केवल कार्य्य प्रणाली पूरी कर सकते हैं, वा उसकी केवल बाह्यक फार्म (form) को अदा कर सकते हैं। प्रोहित का काम साधन के द्वारा किसी आत्मा का विकास करना नहीं होता, किन्तु जो कुछ किसी और ने लिख दिया है, वा नियत कर दिया है, केवल उसे पूरा कर देना होता है। और ऐसी अवस्था में प्रोहिताई अति भयानक है, और मैं उसका पक्का दुश्मन हूं, और जहां अपने जीते जी ऐसी प्रोहिताई अपनी समाज में नहीं घुसने दूंगा, वहां परलोक में भी जहां तक मेरा बस चलेगा, जहां तक मेरी ताक़त में होगा, अपने पीछे इस समाज में प्रोहित को घुसने न दूंगा। हां, जो मेरे बनेंगे वह आप भी न कभी प्रोहित बनेंगे और न कभी अपने यहां प्रोहित को घुसने देंगे। प्रोहित केवल नक़ल

करते हैं, केवल रसम पूरी करते हैं। विकास नहीं करते। हमारा सारा काम विकास का है। प्रत्येक भजन, प्रत्येक पाठ, प्रत्येक चिन्ता, प्रत्येक उपदेश इत्यादि सब इसलिए हैं कि वह विकास में सहाय हो। और यदि वह इस कार्य्य को पूरा न करे, और यह उद्देश्य उस से लाभ न हो, तो वह हमारे काम का नहीं। वह पूर्णतः निकम्मी है, और उसके करने की कोई ज़रूरत नहीं। इन तत्वों को अपने सन्मुख रखकर हमें अपना हित साधन करना चाहिए और आज के साधन में प्रवेश करना चाहिए।

शुभ कामना।

हमारे साधन सार्थक हों, सत्यता का प्रेम जिस आत्मा के भीतर पैदा नहीं हुआ, सत्यता के साथ अनुराग की शक्ति जिस आत्मा के भीतर उत्पन्न नहीं हुई, ऐसा शक्ति हीन आत्मा सत्य को उपलब्ध न करके भी प्रसन्न रह सकता है, परन्तु जो देवात्मा सत्य अनुरागी हो, सत्य प्रियता औरों के भीतर संचार करने के लिए हो, सत्य की महिमा दिखाने के लिए हो, वह केवल किसी साधन की नकल को देखकर कभी खुश नहीं हो सकता। मैं यहां विकास साधन के लिए उपस्थित हुआ हूं, इसलिए मैं अपनी शक्ति के अनुसार अपने आप को, अपनी चिन्ता शक्ति को समाधान करके समाधि

को अवस्था में ले जाता हूं और चाहता हूं, कि न केवल वह स्थूल देह धारी जन कि जो यहां इस समय वर्तमान हैं, जहां तक सम्भव हो मेरी इस अध्यात्मिक क्रिया से लाभ उठा सकें, हित लाभ करें ; किन्तु मैं चाहता हूं, कि जो सूक्ष्म देहधारी आत्मा भी इस समय यहां पर वर्तमान हों, और जो यहां के स्थूल देह धारियों से अधिक लाभ उठा सकते हैं, वह भी अपने चित्त को समाधान करके ऐसी पवित्र अवस्था उत्पन्न करें, कि जिस से हमारा यह साधन जहां तक अधिक से अधिक हितकर हो सकता हो, जहां तक कल्याणकारी हो सकता हो, जहां तक अधिक से अधिक ज्योति और शक्ति दान दे सकता हो, वहां तक अधिक से अधिक ज्योति और शक्ति देने का कारण हो, हम इस आकांक्षा के साथ साधन में प्रवृत होंगे, और जिस कदर इस आकांक्षा को धारण करेंगे उतना हि हम सब का कल्याण होगा। तब अपना चित्त समाधान करो। आकांक्षा के भाव को गहरा करो, कि जिस से तुम्हारा कल्याण और मंगल होगा।

उपदेश।

आज जिस यज्ञ के शेष दिन का हम लोग साधन पूरा करने के लिए यहां उपस्थित हैं, वह यज्ञ भी और यज्ञों की न्याई बहुत मूल्यवान है, हां कितने हि और

यज्ञों की अपेक्षा कई बातों के विचार से बहुत हि मूल्य-
वान है। परन्तु क्या मूल्यवान है और क्या मूल्यवान
नहीं, उसके दर्शन के लिए आन्तरिक चक्षुओं की आव-
श्यकता है, आन्तारिक ज्योति की आवश्यकता है। ऐसी
आन्तरिक ज्योति की आवश्यकता है, कि जो इस प्रकार
दोनों का अन्तर दिखा देती है, जो किसी ऐसे यज्ञ
की जीवन के सम्बन्ध में आवश्यकता को प्रदर्शन कर
देती है। यदि हम अपने जीवन को प्यार करते हों,
और ख़ासकर यदि कुछ उच्च जीवन वा आत्मिक
जीवन की महिमा जानने के योग्य हुए हों, कि
जिस के बिना हमारा शरीर भी नहीं रह सकता,
शारीरिक जीवन भी क़ायम नहीं रह सकता, तो हम
उसकी आवश्यकता को अवश्य पहचान सकेंगे। कोई जीव
धारी ऐसा नहीं, कि जो जीवन रक्षा की आकांक्षा नहीं
रखता, परन्तु जीवन का रहना या न रहना उसकी इस
कामना या इच्छा पर निर्भर नहीं करता। यदि हम
जीवन रखना चाहते हैं, तो हम रे लिए आवश्यक हैं,
कि जहां से वह जीवन आता है जिन सामानों से जीवन
स्थिर रहता है, उनके पहचाननें के लिए ज्योति लाभ
करें और उनको देखें और पहचाने और जब वह दिखाई
दे जावें, और यह मालूम हो जावे, कि यह सम्बन्धी हमारे
जीवन के इस अंश अर्थात् आत्मा की रक्षा करता है, तो

हमारी दृष्टि में जो उसकी महिमा स्थिर होगी उसमें क्या सन्देह हो सकता है। फिर हम जिस प्रकार उसके लिए अपने भीतर अनुराग उपलब्ध करेंगे, लगन अनुभव करेंगे, फिर हम उसको जैसा चाहेंगे, और उसके अनुरागी होंगे, उस में क्या सन्देह हो सकता है। हां ज्यों २ यह अनुराग या कशिश या लगन हमें अपने ऐसे जीवन दाता और जीवन रक्षक सम्बन्धी के साथ जोड़ेगी, त्यों २ उस सम्बन्धी से हम अपने लिए आहार लाभ कर सकेंगे, और जब आहार मिले तो जीवन संगठित होता है।

पूछा जा सकता है, कि आज हम जिस जगत् को अपना सम्बन्धी जानकर उसके सम्बन्ध में यज्ञ के साधनों के बाद आज व्रत का साधन करते हैं, वह सम्बन्धी कौन है? क्या कोई सचमुच ऐसा सम्बन्धी है, कि जिस के सम्बन्ध में आज हम इस समय व्रत का साधन कर रहे हैं? हां है और सत्य रूप में है। मैंने पहले इस सम्बन्धी का नाम जड़ लोक रक्खा था, परन्तु आज उसका एक नया नाम रखता हूं, क्योंकि पहला नाम जैसा चाहिए असल वस्तु का शुद्ध वाचक नाम नहीं है, अर्थात् पूरा २ expressive नहीं है। आज मैं उसे निर्जीव वा भौतिक जगत् का नाम देता हूं। इस निर्जीव जगत् के सम्बन्ध में हमारा आज का साधन है।

क्या है निर्जीव जगत् ? क्या सचमुच वह कोई चीज़ है ? वह दर हक़ीक़त क्या है, कि जिस के साथ हमारा सम्बन्ध है ? हां निर्जीव जगत् एक शब्द नहीं, किन्तु वह जगत् है, निर्जीव जगत् सत्य और सार है। निर्जीव जगत को हम अपनी अनुभव शक्ति में ला सकते हैं, और जो कुछ हम अनुभव नहीं करते और नहीं कर सकते, वह हमारे लिए नहीं। हम निर्जीव को दो प्रकार से अनुभव करते हैं, अर्थात् निर्जीव जगत् के साथ मेल में आने से हमारे भीतर दो प्रकार के असर पड़ते हैं। यहां पर मेरे सामने एक चीज़ पड़ी हुई है, कि जिस मैं चौकी कहता हूं। अब मुझे यह बोध होता है, कि मेरे हाथ इस चौकी को स्पर्श कर रहे हैं, गोया मैं उसे स्पर्श शक्ति के द्वारा अनुभव करता हूं। इस से मालूम होता है, कि यह साकार है या फैली हुई है या उस में फैलाव पाया जाता है। इस में जगह घेरने का गुण पाया जाता है। क्या इस में केवल यही गुण है और गुण उस में नहीं ? हां इसके भिन्न मैं उस में एक और गुण भी अनुभव करता हूं। वह गुण क्या है ? यह कि उस में शक्ति भी है अर्थात् एक ऐसी चीज़ भी उस में देखता हूं, कि जिसे मैं शक्ति कहता हूं। किस तरह मैं उस को बोध करता हू ? इस तौर पर कि पहले तो अपने हाथ के साथ उस चीज़ को छूने के

साथ हि मैं यह अनुभव करता हूं, कि मेरा हाथ किसी शक्ति के साथ टकराता है। मेरा हाथ जाते २ उस के साथ लगने से रुक जाता है। दूसरे जब मैं उस चीज़ को परे करता हूं तो क्या देखता हूं, कि वह मेरे इस खयाल का मुक़ाबिला करती है। मेरे इस खयाल के विरुद्ध एक हद तक या अपनी शक्ति के अनुसार उसी स्थान पर रहना चाहती है। मेरी इच्छा की परवाह हि नहीं, किन्तु उसका मुक़ाबिला करती है। मेरे रास्ते में रोक पैदा करती है। यह जो उस में रोकने का गुण है. मेरे हाथ की शक्ति का मुक़ाबिला करने का गुण है उस मैं शक्ति कहता हूं।

अब निर्जीव पदार्थ में जो दो गुण पाए जाते हैं, वह यह हैं, (१) उन में कुशादगी या हुजम पाया जाता है, (२) उन मैं शक्ति या ताक़त पाई जाती है। इन में से पहला गुण साकार रूप में प्रगट होता है, और दूसरा निराकार रूप में। फिर क्या यह निर्जीव जगत् कोई छोटा सी चीज़ है? क्या उसकी सीमा कहीं निकट पाई जाती है? कदापि नहीं। जीवन रखने वाले कुल अस्तित्वों को छोड़कर जिस क़दर और पदार्थ हैं और जिन की सीमा कोई बता नहीं सकता, वह सब निर्जीव जगत् से सम्बन्ध रखते हैं। वह पानी कि जो प्रति दिन हमारे नहाने धोने और पीने के काम आता है, वह ज़मीन

कि जिस पर मैं और तुम बैठे हुए हैं, और इस ज़मीन और पानी के भिन्न एक और सूक्ष्म चीज़ है, कि जिसे रोशनी कहते हैं; और फिर एक और बारीक और सूक्ष्म वस्तु है, कि जिस में मैं, तुम और सब जानदार श्वास लेते हैं, और इसके भिन्न और भी अधिक सूक्ष्म एक और चीज़ अर्थात् ईथर है। इन प्रकार की सब वस्तुओं को सन्मुख रखकर मैं यह बोध करता हूं, कि यह निर्जीव जगत है। यह निर्जीव जगत् जैसे निराकार और साकार के भेद से दो प्रकार का है, वैसे हि यह साकार भाग भी नाना प्रकार के पदार्थों के भेद से, कि जिनको रसायनिक पदार्थ कहते हैं, नाना प्रकार का बोध होता है। यथा अपनी अवस्थाओं के भेद से यह साकार भाग चार अवस्थाओं में बोध होता है। एक ठोस अवस्था में, दूसरे तरल अवस्था में, तीसरे वाष्पीय अवस्था में और चौथे ईथरीय अवस्था में। जो पदार्थ ठोस अवस्था में प्रकाशित होते हैं, वह यह हैं:- पृथिवी, चांद और बाज़ ऐसे हि और सैयारे यथा शुक्र, बृहस्पति और शनिश्चर आदि, और न केवल यह किन्तु उनके सिवाय और जितने स्थूल सैयारे विज्ञान ने मालूम किए हों, और फिर इस पृथिवी के अन्तरगत लोहा, तांबा, चांदी, सोना, पीतल, कोयला पत्थर आदि। और फिर हमें यह भी याद रखना चाहिए, कि यह सब ठोस वा घन पदार्थ जो हमें अनु-

भव होते हैं, वह सब एक तरह के नहीं किन्तु भिन्न२ प्रकार के हैं। आम तौर पर हम जिस को पत्थर कहते हैं, यह पत्थर सब एक प्रकार के नहीं, उनकी बहुत सी विविध प्रकार की क़िसमें हैं। और बाज़ चीज़ें एक हि पदार्थ से बनी हैं, परन्तु वह नाना अवस्थाओं में नाना शकलें और नाम ग्रहण कर गई हैं। यथा जो चीज़ कोयला कहलाती है,वही एक और अवस्था में हीरा बन गई है आदि। अब थोड़े से दृष्टान्त तरल अवस्था के देता हूं, उस में पानी, तेल, दूध और कई प्रकार के रस आदि हैं। इस से आगे जो वाष्पीय अवस्था है, उसके भीतर हवा है, और उस हवा के भीतर भी कई चीज़ें हैं, कि जिन को गैसिज़ कहते हैं, और जो बहुत सूक्ष्म परमाणुओं से बनी हुई हैं। अब इस से ऊपर सूक्ष्म तर अवस्था है, उस में वह पदार्थ है कि जिस का नाम ईथर है, उसके परमाणु सब से बारीक हैं। यह जगत् है, कि जिसे निर्जीव जगत् कहते हैं, और यह इतना बड़ा जगत है, कि जिस की सीमा नहीं कर सकते। इतना बड़ा जगत् हमारे सन्मुख प्रकाशित हो रहा है, कि यदि हम उसकी हद पर पहुंचना चाहें तो नहीं पहुंच सकते। और इसलिए उस जगत् को असीम कहते हैं। इस असीम साकार जगत् के भीतर हम और क्या देखते हैं? वही कि जिस का नाम हम ने शक्ति

रक्खा है. और जिस को हम ने निराकार कहा है। यह वह चीज़ है, कि जिस में फैलावट नहीं, लम्बाई चौड़ाई और गहराई नहीं. इसका नाम हम ने फैलावट वाली साकार वस्तु की तुलना में निराकार रक्खा है। यह शक्ति जब तक जीव रूप में प्रकाशित नहीं होती, तब तक निर्जीव में प्रवेश करने से निर्जीव कहलाती है, परन्तु धीरे २ विकास क्रम के द्वारा वह सजीव भी हो जाती है। परन्तु हम इस समय अजीव जगत् को छोड़ देते हैं, कि जिस के भीतर सब पशु, उद्भिद् और मनुष्य जगत् शामिल हैं। उस सब को छोड़कर जो केवल निर्जीव शक्ति है, हम उसे हि इस समय सन्मुख लाते हैं। यह निराकार वस्तु कि जिस का नाम हम ने शक्ति रक्खा है, दो रूप में हमारे सन्मुख प्रकाश पाती है, आकर्षण और विकर्षण Attraction और detraction या repulsion, संयोजक और वियोजक अर्थात् जोड़ने और तोड़ने के काम करने वाली। और यही वह शक्ति है, कि जिस ने साकार जगत् के अन्दर कार्य्य करके यह संसार रच दिया है, और जिस से इस संसार में नाना प्रकार के भिन्न २ रूप के अस्तित्व प्रगट हो गए हैं, और उसके लगातार कार्य्य से इस विशाल ब्रह्मांड का काम चल रहा है। यही शक्ति शीत और उष्ण रूप में निर्जीव जगत् के सब पदार्थों में प्रकाशित होती है। जैसे आकर्षण और

विकर्षण का प्रकाश सब जगह है, संयोग और वियोग सब जगह है, वैसे हि शीत और उष्ण सब जगह है। जहां कहीं इस ब्रह्माण्ड में साकार पदार्थ वर्तमान हैं, वहां यह निराकार शक्ति संयोग और वियोग रूप में और शीत और उष्ण रूप प्रकाश कर रही है।

अब तुम एक बार सोचो कि यह महान निर्जीव जगत तुम्हारे सामने किस तरह प्रकाशित होता है। पृथिवी से लेकर अन्तरिक्ष तक और स्थूल तर से लेकर सूक्ष्म तर तक सब अपने सन्मुख लाओ। उन्हें सन्मुख लाकर उनके भीतर जो महा क्रिया जारी है, उसे सन्मुख लाओ और इस प्रकार उसे सन्मुख लाकर यदि उस दृष्टि से उसे देख सको, कि जो तत्व द्रष्टाओं की दृष्टि है; तो तुम मालूम कर सकते हो, कि यह निर्जीव जगत् जो इस प्रकार हमारे सन्मुख आता है, और उसके सम्बन्ध में यह यज्ञ कि जिस का आज शेष दिन है, उसकी किस क़दर महिमा है, वह किस क़दर महान है। अज्ञानी और मूढ़ वह पुरुष है कि जो इस असीम निर्जीव जगत् के साथ अपने सम्बन्ध को नहीं पहचानता और बहुत मूर्ख है, वह आत्मा कि जिस ने कुछ काल हमारे साथ रहकर भी, इस यज्ञ की और यह यज्ञ जिस जगत् के साथ हमारा सम्बन्ध स्थापन और गाढ़ करता है, उस जगत् की महिमा नहीं देखी, और इसका सम्बन्ध किस तरह

विकासक अथवा विनाशक बन सकता है, उसकी हक़ीक़त नहीं पहचानी। निश्चय रक्खो, कि निर्जीव जगत् के साथ उचित सम्बन्ध तुम्हें विकास की ओर ले जाता है, वरना आत्मा का विनाश होता है। मूर्ख और अन्धा है वह जन कि जिसे यह सब तत्व दिखाई नहीं देते। मैं जितना इस सम्बन्ध पर विचार करता हूं, जितना निर्जीव जगत् का सम्बन्ध मेरे सामने प्रकाश पाता है, उतना ही मैं उसे सार उपलब्ध करता हूं। मेरे लिए निर्जीव जगत् फ़र्ज़ी चीज़ नहीं। मेरे लिए निर्जीव जगत् कोई केवल एक शब्द नहीं, मेरे लिए यह जगत् सार है, और इसीलिए मैं उसके द्वारा औरों का भला करना चाहता हूं, और ऐसा ही वह औरों को, कि जिन के लिए यह यज्ञ है, बोध होना चाहिए। जिन को निर्जीव जगत् और उसके साथ आत्मा का विकास मूलक सम्बन्ध सार बोध नहीं होता, उनके अन्दर मेरी ज्योति नहीं पहुंचती। मेरी ज्योति जिस के अन्दर गई है, वह इस सम्बन्ध को उपलब्ध करेगा और विनाश से बचेगा। आहा! यह निर्जीव जगत् जो मेरे सामने सार रूप में प्रकाशित है, यदि न हो तो मेरा अस्तित्व नहीं रह सकता। मेरी ज़िन्दगी इस के सहारे क़ायम है। मेरी ज़िन्दगी इस से आती है, मेरी ज़िन्दगी का यह आश्रय स्थान है। मेरी ज़िन्दगी इस से बिगड़ती

वा बनती है। यदि मैं इसके साथ अपने सम्बन्ध को उचित रूप में न रक्खूं तो मेरा जीवन बिगड़ता है और यदि मेरा सम्बन्ध उसके साथ ठीक हो, तो मेरा जीवन विकास के द्वारा उन्नत होता है। निर्जीव जगत् के साथ सम्बन्ध को न उपलब्ध करके विनाश होता है। मैं विकास का साथी होकर चाहता हूं, कि कोई नष्ट न हो, परन्तु मेरी यह कामना पूरी नहीं हो सकती। जब तक कि सम्बन्ध तत्व को पहचानने वाले, सम्बन्ध तत्व को प्यार करने वाले आत्मा मुझे न मिलें। मेरी यह इच्छा पूरी नहीं होती, जब तक कि जिन का विकास साधन हो सकता है, और जो मेरी ज्योति को लाभ करके अपने जीवन की गति में मेरे पीछे चल सकते हैं, वह आत्मा मुझे प्राप्त न हों। निर्जीव जगत् का मेरे साथ बहुत बड़ा सम्बन्ध है। आहा ! मेरे साथ कितना गहरा सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध को जैसा मैं उपलब्ध करता हूं, मेरी कामना है, कि उसे और भी वैसा हि उपलब्ध करें। ऐ आत्माओ ! सोचो, कि इस निर्जीव जगत् से इस क़दर उपकार पाकर तुम खुद उन के लिए क्या कर रहे हो। देखो यह जो पृथिवी है क्या यह तुम्हें अपनी ज़िन्दगी के लिए ज़रूरी मालूम होती है ? सुबह से शाम और शाम से सुबह हो गई, क्या तुम ने इसका कुछ ख़्याल किया? यदि, यह पृथिवी न हो तो क्या हो? ज़रा सोचो और ज़रा

विचारो। हम थोड़ी देर के लिए पृथिवी तुम्हारे नीचे से हटा लेते हैं। देखो तुम्हारी क्या हालत हो जाती है। ज़रा तुम को रस्सी से बांधकर लटकादें तो तुम्हारा क्या हाल होगा? तुम्हारा स्थूल शरीर यदि पृथिवी को आधार रूप बनाकर काम में न लावे तो उसका क्या हाल हो? तब वह कहां ठहर सकता है? गले में रस्सी बांधकर लटका दिए जाओ या शरीर के किसी और भाग में हि रस्सी बांधकर कहीं मुअल्लिक लटका दिए जाओ, और कहीं तुम पैर न लगा सको, तो अनुभव करो कि तुम्हारी क्या हालत हो? हां थोड़ी देर में तुम्हारे प्राण निकल जाएंगे। तब सोचो कैसा गहरा सम्बन्ध! जिस को हम घर कहते हैं जिस में हम वास करते हैं, जिस घर में हम मौसम से रक्षा पाते हैं, वह घर पृथिवी पर है। पृथिवी से बना है। उसकी ईंटें, उसका गारा, उसका चूना, उस के किवाड़, उसका लोहा, उसकी छत, अतएव उसकी प्रत्येक वस्तु इसी निर्जीव जगत् से आई है। सोचो जबकि बाहर अत्यन्त शीत हो या अत्यन्त ताप हो, और तुम्हारा शरीर जिस समय शिथिल हुआ जाता हो, उस समय तुम कैसी बेचैनी के साथ यह चाहते हो, कि कोई झोंपड़ी मिल जाए, कोई फूस का हि घर मिल जाए। उस समय तुम फूस की भी महिमा समझते हो। किन्तु चाहे मकान फूस से बना हो, और चाहे लकड़ी या

पत्थर से बना हो, सब पृथिवी माता की कृपा से बना है। क्योंकि यही पृथिवी माता जैसे पत्थर आदि को पोषण किए हुए है, वैसे हि नाना प्रकार के वृक्षों को भी धारण किए हुए है। इन वृक्षों की लकड़ी से तुम दरवाज़े और छतें बनाते हो, और पृथिवी के लोहे से और नाना प्रकार की वस्तुएं तयार करते हो। अतएव हर तरह से वह चीज़ कि जिसे तुम घर कहते हो और जो तुम्हारी ज़िन्दगी की रक्षा के लिए इस क़दर आवश्यक है, वह सब पृथिवी के बिना नहीं हो सकता। तब पृथिवी किस क़दर ज़रूरी है। वह और भी करोड़ों अत्यन्त आवश्यक पदार्थों को धारण किए हुए है। वेलों और वनस्पतियों को धारण किए हुए है, पशुओं और पक्षियों को सहारा दे रही है। और केवल इन्हीं चीज़ों को धारण किए हुए या आधार दिए हुए नहीं, किन्तु वह एक और अत्यन्त आवश्यक पदार्थ अर्थात जल को भी धारण किए हुए है। यदि जल न होता और पृथिवी होती भी तो क्या हाल होता? जल के अभाव से मनुष्य तड़पता है, पशु और पक्षी तड़पते हैं, वनस्पति नहीं उग सकती, अन्न नहीं हो सकता और अन्न के अभाव से मनुष्य तड़पता है। आज इस देश के भीतर दुर्भिक्ष के कारण हज़ारों और लाखों मनुष्य दुखी हैं, परन्तु क्या जल का अभाव हि इसका कारण नहीं? महसूस करो कि इस जल के साथ हमारा कैसा

सम्बन्ध है। यह जल दो प्रकार से हमारे लिए आवश्यक है। एक जो इस पृथिवी पर है, और दूसरे जो बादल बनकर ऊपर चला जाता है। वह जो बादल बनकर ऊपर जाता है उसके न गिरने के कारण हम किस क़दर दुख अनुभव करते हैं? कहा गया है और ठीक कहा गया है, कि अन्न के बिना कुछ देर जी सकते हैं, किन्तु जल के बिना नहीं जी सकते। क्योंकि हमें अपने शरीर की रक्षा के लिए अन्न से बहुत अधिक जल की आवश्यकता है, क्योंकि हमारे शरीर में ७० फ़ी सदी पानी वर्तमान है। तब जल हमारे लिए किस क़दर ज़रूरी!

जल की तरह क्या हमारे लिए रोशनी भी निहायत ज़रूरी नहीं? थोड़ी देर के लिए उसे इस पृथिवी से ग़ैर हाज़िर करके मालूम करो कि हमारी क्या हालत होती है। रात के समय जब अन्धेरा होता है, उस समय जब हमें चलना पड़ता है, तब हमारा क्या हाल होता है? हम अपने आप को सम्भाल नहीं सकते, इसलिए अन्दर से कष्ट में रहते हैं, और हमारे लिए सारा जगत् और उसका सौन्दर्य्य केवल अन्धकार में रहता है। हम ज्योति के बिना पढ़ नहीं सकते, लिख नहीं सकते। ज्योति के बिना सौदा पत्ता नहीं हो सकता। सब कारख़ाने बन्द हो जाते हैं। सेहत जाती रहती है। ज्योति के बिना जैसे हम मुसीबत में पड़ जाते हैं, वैसे

हि और जीवनधारी यथा पौदे आदि भी विनष्ट होते हैं। ज्योति के बिना हमारी आंखें बिलकुल निकम्मी हो जाती हैं। आंख उसी समय तक बहुत बड़ी नियामत है, कि जब तक ज्योति है वरना कुछ नहीं। आहा! तब ज्योति हमारे जीवन के लिए किस क़दर आवश्यक वस्तु! क्या ज्योति के सिवाय कोई और चीज़ भी है, कि जिस के साथ हमारा सम्बन्ध है? हम अभी बता चुके हैं, कि एक और चीज़ है, कि जिसे वायु कहते हैं। इस को आंख से नहीं देख सकते, केवल स्पर्श के द्वारा उसे अनुभव कर सकते हैं। वायु से हमारा जीवन है, इसी से हमारे फेफड़े चल रहे हैं। जो वायु हमारे अन्दर जीवन पैदा करती है हमारे जीवन को क़ायम रखती है, और न केवल हमारे लिए किन्तु और सब जीवधारियों के लिए अति आवश्यक और लाभ दायक है, उसके साथ हमारा किस क़दर घनिष्ट सम्बन्ध है। क्या इस से भी परे कोई और चीज़ है, कि जिस के साथ हमारा सम्बन्ध है? हां है; वह चीज़ कि जिसे ईथर कहते हैं इसी निर्जीव जगत् से सम्बन्ध रखती है। ईथर को हम अपनी इन आंखों से नहीं देख सकते, परन्तु सूर्य्य की रोशनी उसी के द्वारा हम तक पहुंचती है। और हम लोग जब इस स्थूल देह को त्याग कर देते हैं, तो हम इस ईथर की सूक्ष्म देह को धारण करते हैं और

इस सूक्ष्म देह को देखने की योग्यता भी लाभ करते हैं। इस से बोध होता है, कि यह ईथर भी हमारे लिए किस क़दर आवश्यक पदार्थ है और हमारे जीवन का इस से किस क़दर गहरा सम्बन्ध है।

तब हम ने अनुभव किया, कि यह निर्जीव जगत् कितना महान है। और इस निर्जीव जगत् के पदार्थ हमारे साथ किस क़दर गहरा सम्बन्ध रखते हैं? किस तौर पर इस निर्जीव जगत् के पदार्थों से हमारा स्थूल शरीर बना है, और किस तौर से स्थूल शरीर के उपरांत हमारा सूक्ष्म शरीर भी इसी निर्जीव जगत् के पदार्थ से बनता है। जैसे यह हमारा स्थूल शरीर या हमारी स्थूल देही निर्जीव जगत् के परमाणुओं से बनती है, बढ़ती है, सेहत की हालत में रहती है, वैसे हि उनके साथ सम्बन्ध न रखकर अथवा अनुचित सम्बन्ध रखकर बिगड़ती है, अर्थात् मौत की अवस्था में चली जाती है। अर्थात् हमारे शरीर के परमाणु निर्जीव जगत् के जिस २ प्रकार के पदार्थ से आए थे, उसी प्रकार के पदार्थों में वह फिर जा मिलते हैं। परन्तु हमें जिस नितान्त आवश्यक सत्य की तरफ़ ध्यान देने की आवश्यकता है वह यह है, कि निर्जीव जगत् के साथ हमारा जो विशेष सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध में एक वा दूसरी अवस्था के आ जाने से वही सम्बन्ध हमारी सेहत को कैसे

बिगाड़ देता है ? हमारे शरीर के अंग शिथिल होने लगते हैं, वह धीरे २ मर जाता है, अर्थात् उस अस्तित्व का कि जो निर्जीव जगत् के परमाणुओं ने एक प्रकार की सम्बन्ध युक्त अवस्था को धारण करके निर्माण किया हुआ था, कुछ बाकी नहीं रहता। इसी तरह से जब हम स्थूल शरीर के अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर को देखते हैं, कि जो सूक्ष्म परमाणुओं को लेकर बना है, तो उस में भी यही क्रिया प्रदर्शन करते हैं।

अब निर्जीव जगत तुम्हारे सन्मुख है, उसके साथ अपने सम्बन्ध को पहचानो। उसके बाहर के आकार को छोड़कर उसके शक्ति विभाग को देखो कि उसका तुम्हारे जीवन के साथ कैसा गहरा सम्बन्ध है?मालूम करो, कि उसके भीतर जो संयोजक और वियोजक शक्तियां कार्य्य कर रही हैं, उनके साथ उचित सम्बन्ध के रहने से हमें सेहत की अवस्था मिलती है, वरना हमें रोग की अवस्था प्राप्त होती है। हम ऊपर बता चुके हैं, कि यही निराकार शक्ति प्रत्येक साकार पदार्थ में शीत(Negative) और उष्ण (Positive) रूप में काम करती है। जितने परमाणु हैं चाहे वह किसी प्रकार के हों सब में यह शक्ति शीत और उष्ण रूप में काम कर रही है। और इसीलिए प्रत्येक पदार्थ में किसी एक वा दूसरे अन्तर से अर्थात् किसी में कम और किसी में अधिक शीत वा उष्ण

पाया जाता है। कोई अस्तित्व ऐसा नहीं कि जिस में यह वर्तमान नहीं है। अब थोड़ी देर के लिए इस शीत और ताप के परस्पर सम्बन्ध को सन्मुख लाओ। यदि यह आवश्यक तुलना में सम रूप से तुम्हारे भीतर न हों, तो तुम्हारा शरीर स्थिर नहीं रह सकता। अर्थात जितने दर्जे तुम में ताप रहने की आवश्यकता है, यदि तुम्हारे शरीर में उस क़दर ताप वर्तमान न हो, तो वियोग शुरू होजाएगा, और यदि आवश्यकता से अधिक ताप हो तो भी यही नतीजा पैदा होगा। परन्तु यदि जिस क़दर ताप का होना आवश्यक है, उसी क़दर हो तो संयोग कार्य्य होगा ; अर्थात् जिस क़दर संयोग कार्य्य का होना और जिस क़दर उसके साथ २ वियोग कार्य्य का होना उचित है उस क़दर संयोग और वियोग कार्य्य होगा। यह संयोग और वियोग कार्य्य जब उचित रूप से जारी हो, तब ही सेहत स्थिर रहती है। हां सेहत इसी संयोग और वियोग कार्य्य, आकर्षण और विकर्षण कार्य्य अथवा शीत और उष्ण की Equilibrium की अवस्था का नाम है, इसी का नाम साम्यवस्था है। इसलिए एतदाल को ढूंढ़ना, तरतीब वा नियमता में अपने सम्बन्धियों को लाना, अर्थात् संजम लाना ज़रूरी है।

अब तक मैंने कोशिश की है, कि तुम पर प्रगट करूं, कि निर्जीव जगत् क्या है और उसके साथ

हमारा क्या सम्बन्ध है ? और वह हमारे लिए क्या करता है ? क्या अब मैं दिखलाऊं, कि तुम उसके लिए क्या करते हो ? वह मनुष्य मेरे निकट खुद ग़र्ज़, कमीना और पापी कहलाते हैं, कि जो किसी से उपकार पाकर उसके लिए प्रत्युपकार नहीं करते। जिन में यह गुण नहीं है, उन में भलाई नहीं है, पवित्रता नहीं है, वह मूर्ख विनाश की ओर गति रखने वाले हैं। विद्वान और मूर्ख एक चीज़ नहीं। वह लोग महा अन्धकार में ग्रस्त हैं, कि जो नहीं जानते कि जो उपकार पाकर प्रत्युपकार नहीं करते वह विनाश हो जाते हैं। उनके अंग और शक्तियां विनष्ट हो जाती हैं; उनके भीतर का कार्य्य function ख़राब हो जाता है। वही जाता है, कि जो देता है और लेता है। अपने शरीर में हम देखते हैं, कि पेट जीता है, इसलिए कि वह ख़ुराक हज़म करने का काम करता है, और इस प्रकार जहां वह और अंगों के लिए रक्त के तैयार होने में सहायता करता है, और इस तौर पर उन को जीवित रखने का हेतु बनता है, वहां खुद भी उसी रक्त के द्वारा परवरिश पाता है। यदि यह ज्योति तुम्हारे सामने आती हो, तो तुम जान सकते हो कि उपकार सब से महान है। प्रत्युपकार उस से निकृष्ट है, और जिस में प्रत्युपकार भी नहीं वह पूरा स्वार्थ परायण है। जिस

के अन्दर केवल प्रत्युपकार है, वह आधा वा एक चौथाई स्वार्थ परायण है। इसलिए यह आवश्यक है, कि यदि किसी सम्बन्धी से हम उपकार लाभ करते हों, परन्तु उसके सम्बन्ध में कोई प्रत्युपकार अथवा परोपकार न करते हों, तो हमारा नाश होगा। नेचर के नियमों को जानना और उन्हें पूरा करना हमारा कर्तव्य है। हम नियम और साधन के द्वारा ताप को कम और शीत को अधिक कर सकते हैं। हम उष्ण को सुन्दर कर सकते हैं, और ख़राब भी कर सकते हैं। वायु को हम अच्छी भी कर सकते हैं, और ख़राब भी। यह ज्योति तभी मिल सकती है, यदि तुम अहङ्कार रहित हो। अहङ्कार के वश में होकर आत्मा अन्धा हो जाता है। वह कोई रोशनी प्राप्त करना नहीं चाहता। अन्धकार में रहकर भी यह समझता है, कि वह सब कुछ जानता है। यह समझकर वह स्फार्त भाव से भरा रहता है, और कोई उच्च ज्योति लाभ नहीं कर सकता। इसलिए जितना कोई आत्मा अहं-कार रहित होता है, जितना अपने आप को हीन देखता है, उतना हि उस का कल्याण होता है, और जितना अधिक कोई अकड़ा हुआ है, उतना हि उसका विनाश होता है। ऐसे हि ज्योति रहित आत्मा अपने सम्बन्धियों को न पहचानकर और स्वार्थ

परता और नीचता का जीवन व्यतीत करके अपने जीवन से इस वायु मंडल को गन्दा कर देते हैं। तुम विचार करो कि जिस पृथिवी ने तुम्हारा उपकार किया है, उसके लिए तुम ने क्या किया है ? तुम ने उसको गन्दा तो नहीं होने दिया ? क्योंकि गन्दगी मे तुम्हारी भी हानि है। गन्दगी दूर होने के लिए है, वरना वह विनाश की हेतु है। यथा अन्न आदि खाकर उस में से जो हिस्सा हमारे जीवन का भाग नहीं बन सकता, हम उसे अपने शरीर से तो निकाल देते हैं, परन्तु यदि वह हमारे निकट पड़ा रहेगा तो हमारे लिए विनाशकारी होगा। वह अब हमारे जीवन के लिए सहायकारी नहीं बन सकता। इसी प्रकार हम और भी विविध वस्तुओं को ख़राब करते हैं, यदि हम इस प्रकार ख़राब की हुई वस्तु को अपने से परे न करें, तो वह हमारे विनाश की हेतु बनती है। स्वार्थ परायण मनुष्य यह नहीं समझते कि जो हमारे जीवन की वस्तु नहीं, उसे परे करने के लिए हरकत करना उनके लिए आवश्यक है वरना हानि होगी। क्या जिस मकान में बैठकर अब तुम उसकी वायु को गन्दा कर रहे हो उस का तुम पर असर नहीं ? अवश्य है। और वह गन्दी वायु फिर तुम्हारे फेफड़ों में प्रवेश करके तुम को हानि पहुंचा रही है। तब इसका क्या इलाज है ? यही कि जो वस्तु हम ने ख़राब करदी है, उसे हमें साफ़ करना चाहिए।

इसीलिए लोग पाखाने और पेशाब के लिए अलग स्थान नियत करते हैं, और उनके साफ़ रखने का प्रबन्ध करते हैं। शरीर के भीतर से पेशाब और पाखाना के भिन्न पसीने के द्वारा भी बहुत से गन्दे स्वाद निकलते हैं। वह जहां शरीर की ऊपर की खाल को ख़राब करते हैं, वहां जो कपड़े तुम ने पहने हुए हैं, उनके साथ भी चिमट जाते हैं। अब उनका लगातार शरीर के साथ रहना अत्यन्त हानिकारक है। परन्तु कितने हि लोग हैं कि जो कई २ दिन तक स्नान नहीं करते और शरीर नहीं पूंछते, और ऐसे लोग तो इस देश में बहुत से हैं, कि जो छै २ महीने तक एक हि कपड़ा पहने रहते हैं, और ऐसा करने में कुछ तकलीफ़ नहीं मालूम करते, परन्तु बेहतर दर्जों के लोग ऐसा नहीं कर सकते। उन से इस क़दर गन्दा रहना बरदाश्त नहीं हो सकता। एक के निकट जो गन्द है, वह दूसरे के निकट साफ़ है, और जो एक के निकट साफ़ है वह दूसरे के निकट गन्दा है। इस तरह एक मनुष्य जिस को तरतीब समझता है, दूसरे के निकट वह तरतीब नहीं। क्योंकि एक बोधी अवस्था का आत्मा है, और दूसरा अबोधी अवस्था का। अब यदि कोई अबोधी अवस्था का आत्मा बोधी आत्माओं के अधिकार में आ जावे, तो उस के अन्दर भी उसकी योग्यता के अनुसार वैसे श्रेष्ट बोध जाग सकते

हैं। परन्तु जिस के भीतर जितना नम्र भाव होगा, श्रद्धा भाव होगा, उतना हि वह बेहतर हो जाएगा। यदि किसी आत्मा के अन्दर उच्च आत्मा के लिए श्रद्धा की कमी होगी, तो चाहे वह घर छोड़कर आवे और केवल उसके पास हि सदा रहे तो भी उसका अधिक कल्याण न होगा। इसके विरुद्ध एक और मनुष्य कि जो अपने सब दुनियवी काम भी करता हो, किन्तु श्रद्धा पूर्व्वक किसी उच्च आत्मा के जीवन के असरों को अपने भीतर जज़्ब करता हो, वह अधिक श्रेष्ट हो जाएगा। प्रश्न केवल यह है, कि कहां तक खैंचने की शक्ति तुम में है? बच्चा यदि मां की छातियों से दूध खैंचता रहे, तो उसका जीवन बढ़ता है। यदि वह दूध खैंचने की शक्ति खोता जाय तो आखिरकार उसकी मृत्यु हो जाती है। हां जब मां भी देखती है, कि बच्चा दूध खैंचने की शक्ति खो चुका है, और स्थन मुंह में देने से भी वह दूध नहीं खैंचता, तब वह लाचार शोकग्रस्त और निराश हो जाती है। जितना कोई आत्मा किसी उच्च आत्मा से उच्च जीवन का आहार खैंच सकता है, उतना हि उसका जीवन संगठित होता है। इसलिए अहंकार को दूर करो, दीन बनकर हि तुम्हारा कल्याण है। क्योंकि तुम दीन बनकर हि कुछ उपलब्ध कर सकते हो, और अभिमानी बनकर तुम कुछ नहीं पा सकते। मनुष्य

फूलता है, कि मैं चेतन हूं इसलिए निर्जीव पदार्थों से ऊंचा दर्जा रखता हूं। अरे मूर्ख तू क्या ऊंचा है? इसके साथ नम्र होकर तू अपना सम्बन्ध स्थिर करे तो तुम्हारा कल्याण होगा।

मकान आदि की तरह वायु को भी हम ख़राब करते हैं। जल को भी हम ख़राब करते हैं। इस लिए तालाब और कुएं आदि साफ़ कराए जाते हैं। इसी प्रकार वायु भी दूषित हो जाती है। अब इस समय भी हम कितने हि आदमी इस कमरे में बन्द होकर बैठ जाएं, और ताज़ा हवा की आमदो रफ़्त बन्द करदें, तो थोड़ी देर में हम देखेंगे, कि हवा ख़राब हो गई और कमरे के अन्दर केवल ज़हरीली हवा बाक़ी रह गई, कि जिसे हम कारबोनिक ऐसिड गैस कहते हैं। अब हम बार २ इस ज़हरीली हवा को यदि अन्दर ले जाएं तो नतीजा यह होगा, कि हमारी मृत्यु हो जाएगी। तब वायु के साथ हमारा कितना गहरा सम्बन्ध है। इसी प्रकार और भी पदार्थों को कि जिन के साथ हम सम्बन्ध रखते हैं, हम अपनी दुर्गति से गन्दा कर देते हैं। अब हम देखें, कि जहां इस क़दर लाखों और करोड़ों की संख्या में मनुष्य ख़राबी पैदा करने वाले हों, वहां किसी एक वा कई मनुष्यों की मेहनत क्या फल उत्पन्न कर सकती है। एक २ जन की गन्दगी से एक २ जन ख़राब होता है, और

शहरों की ख़राब और गन्दी अवस्था से शहर ख़राब और ग़लीज़ होते हैं। इसलिए केवल अपने घर की नालियों को हि शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं, किन्तु सारे शहर की नालियों के शुद्ध होने की आवश्यकता है। हम एक दूसरे के साथ इस क़दर जुड़े हुए हैं, कि एक की ख़राबी का दूसरे पर बहुत असर पड़ता है। यदि हमारा मकान मैला और गन्दा है, तो केवल हम हि हानि नहीं उठाएंगे, किन्तु आस पास के मनुष्य भी हानि उठाते हैं। पस यदि हम अपने घर की ग़िलाज़त और ख़राबी को दूर नहीं करते, तो हम अपनी हि नहीं, किन्तु औरों की भी हानि करते हैं। यदि अंटपन के इन पक्षपातों नहीं बनते, तो हमारी कैसी विनाश की गति है। जब तुम यह जानते हो, कि इस वा इस निर्जीव पदार्थ, कि जो अब केवल हानि का हेतु हो रहा है और हित का साथी कुछ भी नहीं बन रहा, और उस से ख़राबी पैदा हो रही है, तब भी तुम उस में बेहतर परिवर्तन उत्पन्न नहीं करना चाहते, तो तुम पाप करते हो, पाप के साथी बनते हो। इसीलिए उच्च जीवन न आए। जब तक पाप दूर न हो और तब तक सच्चा धर्म भी नहीं आ सकता। इसीलिए, जो उच्च जीवन का दान देता है, वह सब से उच्च दान कर्ता है, और जो उच्च जीवन का पथ ग्रहण करते हैं, वह सब से उच्च पथ ग्रहण करते हैं। ज्यों २ हम उच्च बनते जाएंगे, त्यों २ अपनी प्रत्येक

वस्तु को शुद्ध रखना और शुद्ध करना चाहेंगे। एक उच्च आत्मा के पास यदि धन हो, तो वह सुन्दर मकान तैयार करेगा, उसे साफ़ रक्खेगा, हवादार रक्खेगा, रोशनी के लिए उस में जगह रक्खेगा और ग़िलाज़त आदि के दूर रखने के लिए प्रबन्ध और सामान पैदा करेगा। अपनी २ अवस्था को तुम इस समय बोध करो। जो छवि मैंने तुम्हारे सामने पेश की है, उसे यदि तुम ग्रहण करोगे, तो तुम्हारा कल्याण होगा, विकास होगा, और तुम्हारा आत्मा विनाश से बचेगा। निर्जीव जगत् सम्बन्धी आदेशों में केवल निजके पालन से तुम्हारा जीवन बेहतर होता है, विकास पाता है। और जिन बातों से तुम्हारा आत्मा ख़राब होता, विनाश प्राप्त होता है, उन से बचने की आज्ञा है। यह इन आदेशों की सारी फ़िलासफ़ी है, यह इन सब का सार है। यह आदेश एक साधारण वस्तु नहीं, यह बहुत अमूल्य वस्तुएं हैं। वह केवल सियाही और काग़ज़ नहीं, किन्तु महा अमूल्य हितका भंडार हैं। ऐसा हि महा अमूल्य प्रत्येक आदेश को देखो और उसकी तुलना में अपने जीवन का मुक़ाबिला करो। यदि बोध हो, कि उनके मुक़ाबिले में तुम्हारा जीवन बहुत नीच है, ख़राब है, तो अहंकार रहित होकर, नम्र होकर अपनी नीचता को बोध करो, और इस शिक्षा के अनुसार जिस क़दर शुद्ध होने की आवश्यकता है, उस क़दर शुद्ध होने का यत्न करो, तो तुम्हारा विकास

होगा। और यदि तुम उस उच्च शिक्षा की तुलना में अकड़ रहोगे, अभिमानी रहकर उसे ग्रहण नहीं करोगे, तो तुम्हारा विनाश होगा। इसलिए बार २ इन आदेशों की तुलना में अपनी अवस्था को सन्मुख लाओ और देखो, कि यह जो साल तुम ने व्यतीत किया था जो समय तुम ने अब तक गुज़ारा है, वह निर्जीव जगत् के सम्बन्ध में कैसा गुज़रा है? बार २ अपने भीतर प्रश्न करके अपनी असल अवस्था को देखने का यत्न करो। जिस क़दर तुम्हें अपनी हीनता बोध होगी, उतना हि तुम्हारा अभिमान चूरण होगा, और उतना हि तुम विकास की ओर जाने के आकांक्षी बनोगे। एक ओर तुम्हें अपने नीच जीवन से घृणा हो, और दूसरा ओर जिस उच्च जीवन का आदर्श इन आदेशों में दिया गया है, और जिस ने इस आदर्श को दिखाया है, उसके प्रति अनुराग पैदा करो, और ऐसी कामना करो, कि मैं अपनी नीच प्रकृति को चूरण करूंगा, मैं अभिमान को चूरण करूंगा, और इस उच्च शिक्षा को अपने ऊपर अधिकार दूंगा। आहा! यह अनुराग तुम्हारे भीतर पैदा हो, कि जो अनुराग आत्मा में जान और ज़िन्दगी लाता है, जिस के आने से ज़िन्दगी बनती है। जितना यह अनुराग होगा उतना हि तुम्हारा कल्याण होगा।

१२—मनुष्य मात्र ब्रत पर उपदेश ।

(१६ नवम्बर १८६७ ई०)

नेचर के चारों विभागों के साथ हम अपने सम्बन्ध की आवश्यकता को, सम्बन्ध विषयक जीवन को और सम्बन्ध विषयक फलों को पहचान कर अपने जीवन बिषयक नियमों की महिमा को जान सकते हैं, और उनके विरुद्ध गति करने से बचने और इन नियमों के अनुसार चलने की योग्यता लाभ कर सकते हैं। यह चारों विभाग क्या हैं, जिन के साथ सम्बन्ध के पहचानने से हि और उचित सम्बन्ध के धारण करने से हि और अनुचित सम्बन्ध सूत्रों के काटने से हि, जहां एक ओर हम अपने जीवन का बिकास कर सकते हैं, जीवन को विनाश से वचा सकते हैं; वहां नेचर के विकास विषयक नियम के साथ अपना शुभ मेल और उसके साथ एकता स्थापन कर सकते हैं? वह चारों बडे विभाग अथवा जगत् यह हैं:—
(१) भौतिक जगत् (२) उद्भिद् जगत (३) पशु जगत् (४) मनुष्य जगत् ।

इन चारों जगतों में से मनुष्य जगत् के साथ हि मनुष्य का सब से बढ़कर सम्बन्ध है। इस मनुष्य जगत् के भीतर हमारे विविध प्रकार के सम्बन्धी और उनके साथ हमारे विविध प्रकार के सम्बन्ध हैं। इसीलिए मनुष्य जगत् के सम्बन्धियों के सम्बन्ध

में यज्ञ विषयक हमारे जितने साधन हैं, उनकी संख्या सब से अधिक है। मनुष्य मात्र यज्ञ जो आज पूर्ण होता है, और जिस का आज व्रत है, वह भी इसी मनुष्य जगत् के अन्तर गत है। इसी मनुष्य जगत् से हि सम्बन्ध रखता है। मनुष्य मात्र चाहे वह किसी देश के हों, किसी जाति के हों, किसी सम्प्रदाय अथवा मत के हों, किसी रंग वा रूप के हों, कोई भाषा बोलते हों, कैसे हि उनके आचरण हों, उनके साथ हम बन्धे हुए हैं। उन सब के साथ हमारा सम्बन्ध है। इस सत्य को हमें भली भांत उपलब्ध करना चाहिए। यह हम जानते हैं, कि हम अपने जन्म काल से हि, हां जब हम वीर्य्य रूप में थे, तब हि से हम मनुष्य के साथ सम्बन्ध रखते रहे हैं। वीर्य्य रूप में भी हम मनुष्य के साथ सम्बन्धित थे, और वीर्य्य रूप में जब अपनी २ माता के गर्भ में प्रस्फुटित हुए, तो भी हम मनुष्य के साथ सम्बन्धित रहे। उस समय में भी हम अपनी माता के साथ जुड़े रहे। माता के रुधिर से पालना लाभ करते रहे, और फिर गर्भ में अपनी गठन के पूर्ण हो जाने के अनन्तर जब हम इस भूमि में आए, तो भी हम देखते हैं, कि हम मनुष्य के साथ हि जुड़े रहे—माता के साथ भी, पिता के साथ भी, और पारिवारिक जनों के साथ अथवा उन के न होने पर और जनों के साथ भी। परन्तु इस पृथिवी

में आकर भी ज्यों २ हम ने अपनी गठन में उन्नति की है, त्यों २ हम ने हर समय मनुष्य के सम्बन्ध का परिचय पाया है। मनुष्य जीवन पाकर, मनुष्य के अस्तित्व को प्राप्त होकर, मनुष्य के सम्बन्ध से हमारा जीवन क्या २ प्रभाव और क्या २ अवस्था लाभ करता है, उस का पूरा २ ज्ञान प्राप्त होना बहुत कठिन है, हां लाखों और करोड़ों मनुष्यों को तो यह भी पता नहीं, कि जीवन किसे कहते हैं, जीवन के नियम क्या होते हैं, जीवन का घटना क्या और बढ़ना क्या है, उसका विनाश क्या है, और विकास क्या है, जीवन विषयक ज्योति और शक्ति क्या है? पृथिवी के प्रत्येक देश में हम परीक्षा करके देख सकते हैं, कि ऐसे लाखों मनुष्य हैं कि जो जीवन रखकर भी, प्रत्यक्ष रूप से जीकर भी जीवन तत्व को उपलब्ध नहीं करते, जीवन तत्व के विषय में कोई ज्योति वा कोई ज्ञान नहीं रखते, जीवन तत्व उनके सामने छिपा हुआ है। यही उनकी अज्ञान की अवस्था है, अन्धकार वा प्रमाद की अवस्था है। कुछ वृक्ष जैसे जीवन रखते हैं, परन्तु वह जीवन के विषय में कुछ नहीं जानते और पूर्णतः अन्धकार में रहते हैं, वैसे हि लाखों और करोड़ों मनुष्य जीवन रखकर जीवन तत्व के विचार से अन्धकार में रहते हैं। वह जीवन रखते हैं, जीवन की एक वा दूसरी गति भी करते हैं, क्योंकि जहां जीवन है वहां

जीवन की गति भी है। जहां जीवन की गति है, वहां वह गति केवल दो हि प्रकार की है—नीच अथवा उच्च, जीवन वर्द्धक और विकासक अथवा जीवन घातक और विनाशक। परन्तु जब जीवन तत्व के विषय में अन्धकार हो, जीवन की गति का कुछ बोध न हो, नीच गति और उच्च गति का कुछ पता न हो, तब फिर जीवन के पथ में उचित रक्षा क्योंकर सम्भव है। इसीलिए क्या वृक्षों में अथवा उद्भिद् जगत में, क्या जन्तुओं में अथवा पशु जगत में, क्या मनुष्यों में अथवा मनुष्य जगत्,में जीवन रखकर भी जीवन को नियमावद्ध करने की शक्ति न पाकर, जीवन के विषय में सच्ची ज्योति न पाकर वा न रखकर हज़ारों और लाखों जीवधारी अपना २ जीवन विनष्ट कर देते हैं। जीवन रखकर मनुष्य के लिए जीवन से बढ़कर मूल्यवान वस्तु और कोई नहीं हो सकती। इसलिए उस के लिए इस से अधिक मूल्यवान शिक्षा और क्या हो सकती है, कि उसे जीवन तत्व के विषय में कुछ ज्योति प्राप्त हो, उसके भीतर कुछ ऐसी रोशनी जावे, कि वह जीवन के विनाशकारी वा विकासकारी एक वा दूसरे नियम को देख और पहचान सके, उसके भीतर कोई ऐसा भाव जाग्रत हो, जो उसे उच्च गति की ओर ले जाए, नीच गति से उसे बचाए। वस्तुतः कोई जीवन हो, वह जैसे

नीच गति मूलक सम्बन्ध से दिनों दिन घटता वा विनष्ट होता है, वैसे हि उच्च गति मूलक सम्बन्धियों से सदा ज्ञान और उच्च शक्ति को पाकर हि विकास लाभ करता है। जब कोई जीवन पथ प्रदर्शक न हो, नीच गति से रक्षा अथवा नीच गति के मिटाने के लिए और उच्च गति की ओर ले जाने के लिए जिन २ उच्च भावों के जाग्रत होने की आवश्यकता है, जिन २ उच्च बोधों के पैदा होने की आवश्यकता है, ऐसे उच्च भावों वा बोधों का कोई दाता न हो, उनका कोई उत्पादक न हो,तो हम आप हि समझ सकते हैं, कि ऐसे जीवन की अवस्था आखिरकार क्या होगी,ऐसे जीवन का फल क्या होगा?

साधारण रूप से मनुष्य इस पृथिवी में उत्पन्न होकर अपनी शारीरिक अथवा पाशविक प्रवृत्तियों आदि के चरितार्थ करने के भिन्न और किसी को कुछ नहीं समझता, और कुछ नहीं जानता। यहां तक कि जिस माता के गर्भ में माता के रुधिर से बालक का शरीर संगठित हुआ है, जिस माता पिता के द्वारा उस ने नाना प्रकार का उपकार लाभ किया है, और अभी जबकि रात दिन उन्हीं के सहारे वह रहता है, उन्हीं से रक्षा और पालना लाभ करता है, तो भी हम क्या देखते हैं, कि वह अपने से बाहर नहीं जाता। अपने से बाहर माता पिता को जानता है, कि वह हैं, भाई

बहिनों को देखता है कि वह हैं, परन्तु यदि उस माता पिता को कोई क्लेश है, कोई दुख है, उसके भाई बहिनों को कोई रोग और पीड़ा है, तो उसका उस को कोई बोध नहीं होता। वह बराबर खुश बराबर सुखी रहता है। यहां तक कि वह खुद अपनी एक वा दूसरी क्रिया से उन्हें जो एक वा दूसरा अनुचित दुख देता है, उसका उसे कोई बोध नहीं होता। यह उसे कुछ प्रतीत नहीं होता, कि मैंने इस से अपने जीवन की कोई हानि की है। उसे यह कोई बोध नहीं होता, कि मैंने अपने जीवन के नियम को तोड़कर अपने लिए कोई अनुचित फल पैदा किया है। इस को निर्बोधता कहते हैं। इस कपड़े में यदि एक सुई चुभो दें, तो इसको जैसे कोई बोध नहीं, ऐसा हि इस बालक को कोई बोध नहीं, उसे कुछ चुभता नहीं। उसके भीतर अब तक कोई ऐसा बोध नहीं जागा, जिस पर उसकी ऐसी क्रिया का सदमा लग सके। वही लड़का धीरे २ शरीर में बढ़ जाता है, परन्तु बज़ाहिर अपने से अलग हज़ारों मनुष्यों को देखकर भी वह किसी के साथ सम्बन्ध अनुभव नहीं करता। इस से हमारा अभिप्राय यह है, कि वह जीवन विषयक उच्च गति से नहीं बन्धता अर्थात् मां का दुख उसे कुछ तकलीफ़ नहीं देता। वह जवान होकर खुद बहुत अच्छे कपड़े पहनता है, परन्तु मां के पास यदि कोई कपड़ा

नहीं, तो उसका उसे कोई ख़याल नहीं। आप बहुत अच्छा खाता है, परन्तु मां को सूखी रोटी मिलती है। यह नहीं कि उसके भीतर स्त्रियों के लिए कोई आकर्षण नहीं है। हां यदि मां को सर्दी लगती है, तो उसे तकलीफ़ नहीं होती, परन्तु एक और स्त्री जिस के साथ उसका विवाह हो चुका है, वह उसे कशिश करती है, और उसका सुख दुख उसे अनुभव होता है। वह मां के लिए कुछ नहीं कर सकता, परन्तु वह स्त्री जिस ने कभी उस को नहीं पाला, उस पर कोई उपकार नहीं किया, उस को रुपया लाकर देता है और उसकी विविध प्रकार की सेवा करता है। अपनी ओर से यदि वह अपनी मां के कपड़े के लिए आठ आने ख़र्च नहीं कर सकता, तो दूसरी जगह दो रुपए, दस रुपए ख़र्च कर देने के लिए तैयार रहता है। इस प्रकार मनुष्यों की गति है, कि जिस का अध्ययन करने से पता लगता है, कि कहां उसकी कशिश का सामान है, वह किस ओर कशिश किया जाता है। यद्यपि सारी नेचर में हरकत है, मगर सब से बढ़कर जो बात जानने के योग्य है, वह अपने जीवन की गतियों के विषय में है, अर्थात् कौनसी गति हमें कहां ले जाती है, हमारे और औरों के लिए वह क्या फल पैदा करती है। यदि उस नौजवान को कोई उच्च आत्मा कहे, कि तुम्हारी गति बहुत नीच है, तुम्हें अपनी मां पर कुछ

तरस नहीं आता। शराब पीने के लिए तो रुपए निकाल कर दे सकते हो, परन्तु यदि तुम्हारी मां बीमार हो तो उस के लिए दो पैसे शर्बत के लिए नहीं निकलते। क्या ऐसा कह देने मे उसकी गति बदल जाती है? नहीं, ऐसा कदापि नहीं होता। ताज़ीरात हिन्द में बुरे कर्म्मों के लिए सज़ा भी लिखी है, परन्तु उससे भी कोई परिवर्तन नहीं आता। लोग जुर्म करते हैं और सज़ा पाते हैं। कितनी हि बार २ जुर्म करते हैं और बार २ सजाएं पाते हैं। कारण भीतर की शक्ति (force) है, जिस के बस में होकर वह ऐसी गतियां करते हैं। कौन उन्हें ऐसी गतियों से बचावे? क्या एक वा दूसरी सोसाइटी वा मत का विश्वास उन्हें बचा सकता है? जिस को क्षयी रोग हो, वह चाहे किसी जाति का हो, किसी मत का हो, वह क्षयी रोग से अवश्य नष्ट होगा। यदि उसके इस रोग में कोई बेहतरी आनी सम्भव हो, तो बच सकता है, वरना कोई मत, कोई विश्वास वा कोई पुस्तक उसे नहीं बचा सकती। इसलिए हम देखते हैं, कि नीच गति भी सच है और उसके फल भी सच हैं, परन्तु जिसे उसका बोध नहीं वह उन नतीजों से बच नहीं सकता। कोई उच्च बोध पैदा हो तो विकास होता है। विकास का अभिप्राय यही है, कि उसके अस्तित्व से कोई और अच्छी चीज़ निकल आवे। परन्तु उसके भीतर यह विकास कहां से आवे? हमारी धमकी

वा हमारा ऐसा कहना उसके अन्दर कोई बोध पैदा नहीं करता। परन्तु उसके भीतर यदि बोध पैदा हो जावें तब हि असल मनोर्थ पूरा होता है । एक मनुष्य को देखते हैं कि यदि उसके बच्चे को तकलीफ़ है तो उसे भी तकलीफ़ है । वहां वह अपनत्व के द्वारा उसके साथ जुड़ गया है । एक मूर्ख को यद्यपि आप कुछ पता नहीं, किन्तु एक दूसरे जन को दुख है कि किसी प्रकार उसको विद्या आजावे। ऐसे मनुष्य को चाहे उसका कुछ पता न लगे,मगर यह सच है कि उसे उस मूर्ख को विद्या देने में हि तृप्ति मिलती है। एक २ जन को किसी मैली जगह को देखकर उसे साफ़ करने में हि तृप्ति मिलती है, वह किसी के डर से सफ़ाई नहीं करता। यदि हमारे पाख़ाना लग जावे, तो हम उसे साफ़ करते हैं, यह नहीं देखते कि कोई हमें देखता है वा नहीं,सराहता है वा नहीं। इसी को sense वा बोध कहते हैं । जंगल में जाकर यदि तुम्हारे पांव में कांटा लग जावे; तो वहां भी तुम उसके दर्द को अनुभव करते हो। किसी के पास होने की आवश्यकता नहीं। अपने हि जीवन में अपने अस्तित्व में जो शक्ति वर्तमान होती है वह काम करती है , किसी दूसरे की शक्ति कुछ काम नहीं देती। तब जो चीज़ हमारे अपने अस्तित्व में पैदा होती है उसे हम अनुभव करते हैं। इसलिए एक मनुष्य जो उच्च बोध रखता है वह जो

कुछ अनुभव करता है दूसरा वैसा अनुभव नहीं करता। मनुष्य मात्र के सम्बन्ध में हमारी अवस्था इन्हीं नीच वा उच्च भावों पर निर्भर करती है। कितने हि नीच भाव हैं, कि जिन से परिचालित होकर केवल यही नहीं, कि मनुष्य दुखी नहीं होते किन्तु बहुत खुश होते हैं। जहां उसे कुछ सुख दायक मालूम होता हो, वहां उसके लिए चले जाना स्वाभाविक बात है। वह एक नीच स्त्री को तो अच्छा कपड़ा दे सकता है, परन्तु अपनी बूढ़ी मां को एक मोटा कपड़ा तक नहीं दे सकता। परन्तु जो कुछ स्वाभाविक है वह आवश्यक नहीं, कि हितकर भी हो। हम देखते हैं, कि जीवन विद्या सब से श्रेष्ट और लाभ करने की वस्तु है, और उस में भी सब से बढ़कर जो उच्च वस्तु है, वह यह है, कि हमारे भीतर उच्च भाव पैदा हों। परन्तु कोई अंकुर वहां फूटता है, कि जहां बीज वर्तमान हो। जहां बीज है नहीं, वहां कोई अंकुर फूट कहां से आवे। जो जन देवगुरु के साथ शिष्य के महा पवित्र और सब से उच्च सम्बन्ध में जुड़ते हैं, उन में यदि बीज हो, तो उच्च बोध फूटते हैं। उसके साथ दूसरी बात यह है, कि वह उचित सम्बन्ध से जुड़ें, उन्हें यथेष्ट प्रीति और श्रद्धा भाव से उनके साथ जुड़ने की आवश्यकता है। बिजली की तार की तरह उसके दिल की तार यदि देवगुरु के दिल की तार से जुड़े, तब

शिष्य के भीतर परिवर्तन हो सकता है, नहीं तो परिवर्तन नहीं होता। इस सम्बन्ध के होने पर मनुष्य के दिल में उच्च बोध धीरे २ पैदा होते हैं, एक बोध नहीं किन्तु अनेक बोध जाग्रत होते हैं।

केवल यही काफ़ी नहीं कि किसी दूसरे मनुष्य का रुपया उठाना बुरा है, किन्तु कोई भी पर हानि करना पाप है, यह बोध होना आवश्यक है। फिर किसी एक सम्बन्ध में नहीं, किन्तु सत्य के सम्बन्ध में अनुचित हानि आत्मा के लिए विनाशकारी है। एक आध सम्बन्ध में यदि भय आदि के कारण कोई किसी को हानि नहीं पहुंचाता तो उसका यह उच्च बोध नहीं है। जब तक किसी के अन्दर उच्च बोध नहीं है, तब तक उसकी कोई उच्च गति नहीं होती। कई बार एक बोध होता है और दूसरा नहीं होता, अर्थात् यदि हम बाज़ार से तुम से दो पैसे की कोई चीज़ मंगवाएं, तो तुम डेढ़ पैसे की नहीं लाओगे। परन्तु अवस्थाओं में ख़राब अवश्य ले आओगे। यह दूसरा बोध है, कि जो न होने से तुम्हें पता नहीं लगेगा, कि तुम ने कोई पाप किया है। यदि तुम डेढ़ पैसे की चीज़ लाओगे, तो समझोगे कि तुमने हमारा धेला हर लिया। किन्तु दूसरी सूरत में कुछ हानि बोध नहीं करेगा। हम कहते हैं, कि तुम ने हमारी हानि की है, किन्तु तुम अनुभव नहीं करते और कई बार उलटा कितनी बातें

आगे में बनाकर सुनाने की कोशिश करते हो। यह और भी भयानक रूप है जिस से तुम्हारा और भी नाश होता है। इस तरह नाना प्रकार के नीच गति मूलक और उच्च गति मूलक बोध नसल दर नसल मनुष्य के भीतर आते हैं। कितनों को कुछ बातों का बोध होता है, तो कुछ को होता हि नहीं। एक प्रकार के झूठ को बुरा समझते हैं, तो दूसरी प्रकार के झूठ का explanation (जवाब) देने के लिए तैयार रहते हैं। इस तौर पर मनुष्य जीवन की जो कल है, जैसे वह सब से श्रेष्ट है, वैसे हि बहुत complicated (पेचीदा) भी है। जीवन तत्व का ज्ञान पाने के लिए विनाश और विकास तत्व का ज्ञान होना आवश्यक है, और इन दोनों का ज्ञान बिना नेचर तत्त्व के ज्ञान के होने के नहीं होता है। मनुष्य यज्ञ सम्बन्धी आदेशों के पाठ से बहुत से जन तो यह समझते हैं, कि यह तो वही बातें हैं, कि जो और लोग भी कहते हैं, किन्तु ऐसा नहीं। यह आदेश अपनी बुनयाद में एक २ शक्ति रखते हैं। वह शक्ति वा भाव यदि न हो, तो वह अमल नहीं हो सकता। एक२आदेश का पाठ करके यह देखने की ज़रूरत है, कि आया हम में कोई ऐसा भाव है, कि जिसे उस आदेश का पालन करें। यदि ऐसा कोई भाव नहीं है, तो क्या वह केवल कहने से आ जाएगा? ऐसा नहीं! यह एक सूत्र है जिस के द्वारा जुड़ने की आवश्यकता है। जितना हृदय अधिक शुद्ध

होगा, उतना हि अधिक दिखाई देगा। इस प्रकार जहां अपने भीतर योग्यता होनी चाहिए, वहां सम्बन्ध सूत्र भी ठीक जोड़ना चाहिए। जहां सम्बन्ध सूत्र ठीक जुड़ता है, वहां ठीक फल पैदा होता है।

ऐसा हो कि मनुष्य जगत् के साथ हमारा जो सब जगतों से अधिक गाढ़ सम्बन्ध है, उस के विषय में प्रमाद की अवस्था में न रहें। सम्बन्ध तत्व का यदि कुछ भी बोध हो, तो सब से बड़ी कामना यह होनी चाहिए कि प्रत्येक सम्बन्ध के विषय में जो आदेश हैं, वह जिन भावों से पूरे हो सकते हैं वह भाव हमारे भीतर आवें, और जिस तरह वह पैदा हो सकते हैं, उसी तरह हम उनको पैदा करने का यत्न करें। इस समय विचार करो, कि मनुष्य मात्र के सम्बन्ध में वीर्य रूप से सम्बन्ध पैदा करके तुम्हारा आत्मा अब तक पाशविक जीवन से ऊपर कहां तक सात्विक जीवन के लाभ करने के योग्य हुआ है। और कहां तक तुम्हारे भीतर अभी तक पाशविक जीवन की वासनाएं भरी हुई हैं, जिन के द्वारा तुम क्या अपना और क्या और मनुष्यों का नाश कर रहे हो। तुम क्या २ अपराध करते हो, कि जिन से तुम्हारा जीवन विनष्ट होता है। यह भी विचार करना चाहिए, कि बाल्य काल से अब तक तुम्हारा जीवन क्या बना है? कौनसा उच्च वा नीच भाव पैदा हुआ है? जो २ आदेश पाठ हुए हैं,

उनमें से कौनसे तुम अमली तौर पर पर कर सके हो, और कौनसे ऐसे हैं जो नहीं कर सके। और जो नहीं कर सके, उन के विषय में आया यह भी प्रतीत हुआ है, कि उनके फलों से तुम नहीं बच सकते।

भाव प्रकाश।

मनुष्य मात्र! मेरे उपकार कर्ता तुम धन्य हो!! मनुष्य जगत् में जिस २ से मैंने जो २ कल्याण लाभ किया है, वह किसी विषय में हो, मेरी इस समय एक मात्र इच्छा है, कि वह सब धन्य हों। प्रत्येक ऐसा आत्मा जिस ने मेरा कुछ भी भला किया है, जिस ने कभी खड़े होकर मेरी तरफ़ करुणा की दृष्टि से, मेहरबानी की निगाह से देखा है, जिस ने झुककर कभी ज़मीन पर पड़ी हुई कोई चीज़ हि उठाकर मुझे दी है, वह भी धन्य है। मैं उसके लिए मंगल कामना करता हूं। मैं चाहता हूं, कि ऐसे घटिया से घटिया उपकार कर्ता का भी कल्याण हो। उस तक भी मेरा मंगल भाव पहुंच सके। मेरे शरीर के पालन में, रक्षा में, सेवा में शुभ भावों के द्वारा परिचालित होकर जिन्हों ने कुछ भी भाग लिया हो, उन सब का कल्याण हो, उनका मंगल हो। मेरे जीवन के पथ में किसी चीज़ से सहाय होने में जिन्हों ने भाग लिया है, जिन को मैं चाहे न भी जानता हूं, उन सब का भला हो। जिन की पुस्तकें मैंने आज तक पाठ की हैं, ऐसे

सब पुस्तक रचयिता जिन के लेखों से मैंने कुछ भी लाभ उठाया है वह सब धन्य हैं। जितना मैं शुभ को पहचान सकूं, उतना ही जो मेरे शुभ कर्त्ता हैं, वह मुझे अच्छे दिखाई देंगे। जिन्हों ने मेरा शुभ किया है, उनके कल्याण के लिए यदि मैं अपनी अपनत्व को कुछ भी खो न सकूं, अपनी स्वार्थ परता को कुछ भी भेंट न कर सकूं, तो मेरी उच्च गति कहां है? अपने उपकारी के लिए यदि कल्याण की इच्छा नहीं, तो मैं औरों का कहां कल्याण कर सकता हूं। ऐसी सूरत में मेरे जीवन का विकास कहां? मेरी अपनी उच्च गति कहां? केवल कल्याण चाहकर भी मैं बच नहीं सकता, जितना किस के लिए मैंने कल्याण करना है, जितना किस के लिए मैंने परि-शोध करना है, जब तक यह सब कुछ हो न जावे, मेरा उन के साथ मेल कहां? मेरे एक कर्म से, मेरी एक चितवन से भी यदि किसी को अनुचित क्लेश वा हानि पहुंची है, तो जब तक वह हानि वर्तमान है, उसका जब तक परिशोध न हो, और जिनसे मैंने कल्याण लाभ किया है, उन के लिए पूरी प्रीति न हो, तब तक मुझ में उच्च जीवन क्योंकर पैदा हो सकता है, और बढ़ सकता है? इसलिए मेरे जीवन के पथ में जिन्हों ने कुछ भी सहायता की हो, उनकी वह सुन्दर छवि मेरे सन्मुख आवे, और मेरा कल्याण हो। जिस से कुछ भी मेरे भीतर शुभ आया हो,

इसके लिए मेरे भीतर कृतज्ञता का भाव आवे। मेरे जन्म देने में, पालन करने में, जीवन के सारे पथ में जिस २ ने सहायता की हो,वह सब मेरे सन्मुख आवें। जिन्हों ने कल्याण जानकर कल्याण किया हो, ज्योति रखकर ज्योति दी हो,उनकी वैसी हि शुभकर और सुन्दर छवि मेरे सन्मुख आवे। उनके रूप की अधिक से अधिक-झलक मेरे सामने आवे। मैं अधिक से अधिक उनका शुभाकांक्षी हो सकूं। जिन्हों ने मेरा कल्याण किया हो, मैं उनका कृतज्ञ हो सकूं। वह चाहे सब इस लोक में हों, चाहे परलोक में हों, मैं उनके प्यार की चीज़ बन सकूं। उनके निकट हो सकूं। ऐसा हो, कि मनुष्य जगत् के सम्बन्ध में मेरा सम्बन्ध और हितकर हो जावे, और भी सुन्दर बन सके, यही मेरी कामना है पूर्ण हो।

मनुष्य मात्रव्रत के अवसर पर उपदेश।

(जीवन पथ कार्तिक १६६१ वि०)

मनुष्य जगत् क्या भौतिक, क्या उद्भिद् और क्या पशु प्रत्येक जगत् से ऊपर है। इस जगत् के भीतर प्रकाशित होकर मनुष्य ने बुद्धिकोष सम्बन्धी जो विशेषता लाभ की है,वह निश्चय बहुत बड़े आदर और सन्मान की वस्तु है। बुद्धिकोष विषयक मनुष्य की जो विशेषता है,और

इस विशेषता को पाकर उसने और जगतों पर जो अधि-
कार लाभ किया है, उस को सन्मुख लाने से हम समझ
सकते हैं, कि एक इसी कोष के मिल जाने से वह धीरे२
कितना बड़ा और कितना क्षमता-शील और शक्तिवान्
बन गया है। जल वायु आदि पदार्थों और ताप और
ताड़ित आदि भौतिक शक्तियों के ऊपर मनुष्य ने अपनी
बुद्धि शक्ति के द्वारा जो कुछ आधिपत्य लाभ किया है,
उस से स्पष्ट रूप से जाना जाता है, कि उस की यह
बुद्धि शक्ति कितनी मूल्यवान और उसका बुद्धिकोष कितना
आदरणीय पदार्थ है। क्योंकि मनुष्य के नीचे पशु जगत्
में और कितने जीवधारी इस बुद्धिकोष से वंचित हैं।
वह उसकी न्याईं भौतिक पदार्थों और भौतिक शक्तियों
के ऊपर कोई आधिपत्य नहीं रखते। परन्तु जहां मनुष्य
बुद्धिकोष के द्वारा इतनी बड़ी शक्ति पाकर और भौतिक
जगत् के विषय में इतना ज्ञान बढ़ाकर, सूर्य्य की ज्योति
और उसकी गति को पहचान कर, इस पृथिवी से करोड़ों
मील की दूरी पर जो नक्षत्र हैं, उनकी गठन के विषय में
अवगत होकर अपना इतना बड़ा गौरव प्रतिष्ठित करता
है, वहां अपने जीवन की गति के विचार से कैसा कुछ
अन्धकार की अवस्था में है !! क्या यह सत्य नहीं, कि
जब तक अपने जीवन के विषय में तत्वज्ञान लाभ न हो,
तब तक कोई जन भी धर्म्म का प्रकृत रूप नहीं जान

सकता और नहीं जानता? इसीलिए इस पृथिवी में यद्यपि सैकड़ों धर्म्म सम्प्रदाय हैं, परन्तु वह प्रकृत धर्म्म तत्व के विचार से बहुत बड़ी अज्ञान की अवस्था में हैं। जीवन तत्व की ज्योति से विहीन होकर वह धर्म्म तत्व विषयक प्रकृत ज्ञान से हि विहीन हैं, इसीलिए धर्म्म विषयक नाना प्रकार की कल्पनाओं में फंसे हुए हैं। और जब तक उन्हें प्रकृत धर्म्म का ज्ञान न हो, और इस बात का पता न हो, कि धर्म्म जीवन आत्मा की एक विशेष अवस्था से प्रस्फुटित और प्रकाशित होता है, और वह भी प्रत्येक मनुष्य के आत्मा से नहीं, और जहां कहीं वह उत्पन्न हो सकता है, उसके उत्पन्न और विकसित होने के अपने नियम हैं, तब तक मनुष्य न ऐसे नियमों के जानने की चेष्टा करता है और न वह ऐसे धर्म्म स्रोत के साथ सम्बन्ध स्थापन करने की आवश्यकता अनुभव करता है, कि जहां प्रकृत अथवा विज्ञान मूलक धर्म्म की ज्योति और अनुराग शक्ति लाभ होती है; और जुड़ने के उचित नियमों के पूरा होने से उच्च जीवन की अधिक से अधिक उत्पत्ति और उन्नति होती है। इस समय में भी जहां तुम में से कुछ आत्मा ऐसे होंगे, जिन्हों ने जीवन तत्व विषयक ज्योति के मिल जाने से, धर्म्म के सत्य और प्रकृत रूप का कुछ ज्ञान हो चुका है, वहां आज के दिन इसी भारत भूमि में

मेरी दृष्टि के सन्मुख यह लाखों और करोड़ो मनुष्य हैं, कि जो इस ज्योति से सर्व्वथा वंचित हैं, और इसीलिए धर्म्म के नाम से अधर्म्म संचय कर रहे हैं। इस भारत भूमि से बाहर और देशों में भी विविध सम्प्रदायों के लोग जीवन तत्व से अन्धकार में रहकर धर्म्म के नाम से क्या कुछ नहीं कर रहे हैं। जीवन तत्व के ज्ञान के बिना, जीवन सम्बन्धी नाना प्रकार की नीच गतियों के बोध के बिना, उच्च गति विषयक एक वा दूसरे ज्ञान और अनुराग के बिना मनुष्य मात्र की महा भयानक अवस्था है। वह धर्म्म का नाम लेकर भी, धर्म्म ग्रन्थों का पाठ करके भी, धर्म्म के नाम से और कितनी हि क्रियाओं का प्रकाश करके भी जीवन की जिस निम्न अवस्था में पड़ा हुआ है, वह अत्यन्त शोचनीय है। और जगतों को छोड़कर मनुष्य का मनुष्य के साथ हि क्या व्यवहार हो रहा है! सारे मनुष्य जगत् को सन्मुख लाने के स्थान में एक २ देश अथवा एक २ नगर और एक २ परिवार के भीतर हि हम मनुष्यों की क्या अवस्था देखते हैं? जहां मत हैं, सम्प्रदाय हैं, उपदेशक हैं, पुरोहित हैं, पाठ और पूजन हैं, वहीं क्या पाप विषयक बोध न होने से लोग एक वा दूसरे पाप की ओर नहीं जा रहे हैं? और तो और, क्या एक २ परिवार के विविध सम्बन्धों में नीच गति और नीचता का राज्य

नहीं दिखाई दे रहा है? निश्चय इस दृश्य को सन्मुख लाकर तुम समझ सकते हो, कि मनुष्य जन्म लाभ करना यद्यपि और जगतों की अपेक्षा श्रेष्ट जगत् में उत्पन्न होना है, परन्तु मनुष्य जगत् में उत्पन्न होकर भी मनुष्य जगत् की प्रकृत श्रेष्टता उस समय तक अनुभव नहीं होती है; जब तक उस प्रकृत और सत्य धर्म्म की ज्योति लाभ न हो, जिस की आधार भूमि और जिस की शिक्षा जीवन और उसके अटल नियमों पर हो। क्या तुम इस समय अपने सौभाग्य को अनुभव करते हो, कि तुम्हें ऐसे प्रकृत और सत्य धर्म्म की कुछ न कुछ शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार मिला है, और एक ऐसे पुरुष के चरणों में आने और उसके साथ जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ है,—जो इस जीवन दायक धर्म्म के स्रोत हैं? निश्चय तुम में से कुछ ऐसे जन अवश्य होंगे, जो अपने आप को बहुत धन्य २ अनुभव करते होंगे। परन्तु फिर भी क्या यह सत्य नहीं, कि इस प्रकृत धर्म्म की ज्योति में तुम्हें विश्व के विविध विभागों के साथ सम्बन्ध रखने के विषय में जो ज्ञान मिला है, उसके द्वारा तुम्हीं जान सकते हो, कि इस मूल सम्बन्धी के साथ जीवन्त सम्बन्ध स्थापन करने और उस में उन्नत होने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, उनके जानने और ग्रहण करने के बिना तुम विविध यज्ञों के साधन के निमित्त

योग्यता और अधिक से अधिक योग्यता लाभ नहीं कर सकते ? मनुष्य मात्र यज्ञ तो बहुत बड़ा यज्ञ है। मनुष्य मात्र के साथ तुम जिस २ प्रकार से जुड़े हुए हो, उसका ज्ञान होने पर तुम आप हि समझ सकते हो, कि मनुष्य मात्र के सम्बन्ध में नाना प्रकार की नीच गतियों से बचने के निमित्त और उच्च भावों के लाभ करने और उन में उन्नत होने के निमित्त प्रत्येक आत्मा के लिए कितनी बड़ी उच्च अवस्था के लाभ करने की आवश्यकता है। जब हम किसी सम्प्रदाय में देखते हैं, कि मनुष्य मात्र के सम्बन्ध में उसका स्थापक दस आदेश देकर चुप हो जाता है, तब उसकी तुलना में हम विज्ञान मूलक सत्य वा देव धर्म की शिक्षा में यह देखकर, कि मनुष्य मनुष्य के साथ एक हि नीच भाव के साथ जुड़ कर जितने प्रकार के अपराधों और पापों का भागी बनता है, वही दस से बहुत अधिक होते हैं, विस्मित रह जाते हैं; और सोचने लगते हैं, कि जीवन सम्बन्धी नीच और उच्च गतियों के प्रकृत रूप का पहले जैसे किसी को ज्ञान नहीं हुआ, वैसे हि संख्या के विचार से भी नाना प्रकार के पापों का किसी को कुछ पता नहीं लगा। एक २ शिशु जो अभी केवल बच्चा कहलाता है, जो अभी कुछ खड़े होने और बोलने के योग्य हुआ है, वह अपने माता पिता और पारिवारिक जनों के

सम्बन्ध में हि एस वा दूसरे नीच भाव के उत्पन्न और उन्नत हो जाने पर कितने प्रकार की नीचता का प्रकाश करता है। एक २ दिन में कितनी बार नीच गति की ओर जाता है, और नीच बनता है। एक २ बच्चे का अपनी किसी रुचि और अपने अहं के वश होकर एक२ अनुचित बात के लिए आग्रह और हठ करना, उचित आज्ञा को न मानना और न सुनना, जिह्वा के स्वाद के वश होकर किसी २ खाने की वस्तु को चुराकर वा अपने से छोटे के हाथ से छीनकर खा जाना, इस बात का प्रमाण है, कि मनुष्य बहुत छोटी अवस्था से हि पाप और नीच गति की ओर जाने लगता है। और युवा होकर केवल दो चार पारिवारिक जनों के साथ हि नहीं, किन्तु और कितने हि जनों के सम्बन्ध में जितने प्रकार की नीच गतियों की ओर जाने और नीच बनने के लिए प्रस्तुत हो जाता है, उनका कौन अनुमान कर सकता है ? तुम एक २ बार अपनी अवस्था पर विचार करो और देखो कि बाल्य काल से तुम ने एक वा दूसरे नीच भाव से परिचालित होकर मनुष्य मात्र के सम्बन्ध में क्या कुछ नीच चिन्ताएं की हैं, अनुचित वाक्य बोले हैं और नाना प्रकार के दुराचार किए हैं।

मनुष्य जगत् में उत्पन्न होकर मनुष्यों का मनुष्य के साथ हि प्रायः और सब जीवों से बढ़कर अधिक

वर्तीव होता है; और इसीलिए मनुष्य मात्र के सम्बन्ध में एक २ मनुष्य जितना नीच, जितना दुराचारी और पापी बनता है, उतना प्रायः किसी और जगत् के सम्बन्ध में नहीं बनता। मनुष्य इस जगत् के साथ जिन२सम्बन्ध सूत्रों में बन्धकर नीच और पापी बनता है उन में से कुछ का दृष्टान्त रूप से यहां वर्णन करते हैं, यथा :—

मनुष्य का मनुष्य के साथ बातचीत विषयक सम्बन्ध है। इसके विषय में नाना प्रकार के आदेश हैं। वह आदेश तब हि पूरे हो सकते हैं, कि जब उस में उच्च भाव वर्तमान हों। नहीं तो. अपने आप को अनुचित अवस्था में ले जाकर वह क्या अपने आप को और क्या औरों को नाना प्रकार से नीच बनाता है। बातचीत के द्वारा एक २ मनुष्य दूसरे मनुष्य के भीतर विविध प्रकार के नीच भाव उत्पन्न और वर्द्धन करके उन्हें नाना प्रकार की नीच क्रियाओं की ओर प्रवृत कर देता है।

मनुष्य का मनुष्य के साथ व्यवसाय अथवा किसी पेशे को लेकर सम्बन्ध होता है। इस विषय में भी कितने हि आदेश हैं। मनुष्य अपने एक २ व्यवसाय में धन आदि पदार्थों का लालची बनकर नाना प्रकार के पाप कर्म्म करता है, और नाना प्रकार से नीच बनता है।

मनुष्य का मनुष्य के साथ विश्वास को लेकर

सम्बन्ध है। एक २ मनुष्य, एक २ मनुष्य पर अनुचित रूप से विश्वास स्थापन करके अथवा विश्वास के स्थान में अनुचित रूप से संदिग्ध चित्त होकर नाना प्रकार की हानियों का कारण होता है।

मनुष्य का मनुष्य के साथ एक वा दूसरी कामना विषयक सम्बन्ध है। जिस में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से किसी से किसी सुख, प्रशंसा, सन्मान् और पद आदि लाभ करने के निमित्त अनुचित रूप से आकांक्षा करता है। और ऐसी नीच आकांक्षाओं के अधिकार में आकर नाना नीच गतियों को प्राप्त होता है।

मनुष्य का मनुष्य के साथ काम प्रवृति विषयक सम्बन्ध है। और वह अपनी ऐसी प्रवृति के द्वारा परिचालित होकर पुरुष होने पर जैसे एक २ स्त्री को जिस अनुचित दृष्टि से देखता है, और उसके प्रति अनुचित भाव पोषण करता है और व्यभिचार आदि क्रियाओं के पाप में लिप्त हो जाता है; वैसे हि स्त्री होने पर किसी एक वा दूसरे पुरुष के प्रति ऐसे हि अनुचित चिन्ता, भाव और कुकर्म के द्वारा भयानक पाप की भागी बनती है।

मनुष्य मनुष्य के साथ अनुचित घृणा के द्वारा सम्बन्ध स्थापन करके नीच बनता है। एक २ मनुष्य किसी एक सम्प्रदाय अथवा मत वा वर्ण वा कुल वा

जाति का बनकर अपने भिन्न दूसरे सम्प्रदाय वा मत वा वर्ण वा कुल वा जाति के मनुष्य को अनुचित रूप से घृणा करता है। और ऐसी घृणा और घृणामूलक चिन्ता और कार्य्य के द्वारा दिनों दिन नीच बनता है।

एक २ मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ ईर्षा के द्वारा सम्बन्ध स्थापन करता है। अर्थात् इस महा नीच उत्तेजना से परिचालित होकर वह किसी और जन को धन, धरती, मान सम्भ्रम, वस्त्र, आभूषण, विद्या और धर्म्म आदि के विचार से अच्छी अवस्था में देखकर भीतर हि भीतर कुढ़ता है, और इस महा भयानक भाव को धारण करके दिनों दिन नीच होता जाता है।

इसी प्रकार और भी कितने हि सम्बन्ध सूत्र हैं, जिन में मनुष्य, मनुष्य के साथ बन्धकर एक वा दूसरे प्रकार की नीच गति को प्राप्त होता है, और नीच बनकर अनेक बार औरों को भी नीच बनाता है। आप अपने जीवन का नाश करता है, और औरों के नाश का हेतु बनता है। दृष्टान्त के लिए हम उसके कितने हि अनुचित सम्बन्ध सूत्रों और कार्य्यों का उल्लेख करते हैं, यथा :—

अनुचित पक्षपात, अनुचित खान पान, अनुचित अनुकरण, अनुचित प्रशंसा, अनुचित खेल वा कौतुक,

अनुचित पाठ, अनुचित लेख, अनुचित याचना, अनुचित दान, अनुचित परिहास, अनुचित अङ्गीकार, अनुचित अभिसन्धि प्रयोग, अनुचित शास्ति, अनुचित अनुराग, अनुचित संकोच इत्यादि २।

इन सब अनुचित क्रियाओं से वह नाना प्रकार के पाप और दुराचार करके विविध प्रकार से पापी और नीच बनता है।

फिर मनुष्य का मनुष्य मात्र के साथ उच्च गति मूलक भी नाना प्रकार का सम्बन्ध है। और यह उच्च गति उस समय तक प्राप्त नहीं होती, जब तक उसके भीतर विविध प्रकार के हितकर अनुराग जाग्रत न हों; यथा, परहित अनुराग, आदर्श अनुराग, कृतज्ञता अनुराग इत्यादि। इसीलिए इस प्रकार के उच्च अनुरागों के विना जैसे कोई मनुष्य किसी मनुष्य के साथ उच्च गति दायक कोई हितकर सम्बन्ध स्थापन नहीं कर सकता, वैसे हि विविध प्रकार की नीच गतियों से अच्छी मोक्ष भी नहीं पा सकता।

अब मनुष्य जगत् के सम्बन्ध में इन नाना प्रकार के नीच गति और उच्च गति दायक सम्बन्ध सूत्रों का संक्षिप्त वर्णन सुनकर तुम अपनी २ वर्तमान अवस्था पर विचार करके देखो, कि जिन विविध प्रकार की नीच गतियों का वर्णन किया गया है, उन में से कितनी नीच

गतियों का तुम्हें कुछ भी बोध नहीं है और किस २ नीच गति के बोध को प्राप्त होकर तुम उसके विनाशकारी फलों से उद्धार लाभ करने के निमित्त अपने भीतर किसी प्रकार का कोई संग्राम अनुभव करते हो ? इसी प्रकार उच्च गति दायक कोई अनुराग तुम में उत्पन्न हुआ है वा नहीं ? यदि हुआ है तो कौन २ सा और कहां तक ? मनुष्य मात्र यज्ञ के साधनों में बैठकर तुम आत्म-परीक्षा करके अपनी सच्ची अवस्था का जितना ज्ञान लाभ कर सको और इस यज्ञ के साधन के निमित्त उसके विधाता के साथ जीवन्त सम्बन्ध स्थापन करने, और उस में उन्नत होने की आवश्यकता को जितना अनुभव कर सको, उतना हि तुम्हारे लिए हितकर है, और उतना हि तुम्हारा इस यज्ञ में योग देना सफल हो सकता है। ऐसा हो, कि इस प्रकार के सत्य ज्ञान से, तुम्हारे भीतर अपनी २ विविध प्रकार की नीच गतियों से मोक्ष पाने और उच्च अनुरागों के द्वारा उच्च जीवन के लाभ करने के निमित्त प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो। ऐसा हो कि तुम अपने नीच गति विनाशक और उच्च गति विकासक धर्म्म दाता की महिमा को कुछ और अधिक देख सको और उन के साथ धर्म्म गत सम्बन्ध स्थापन करने की आवश्यकता को उपलब्ध कर सको।

———

१३—भगवान् देवात्मा के सम्बन्ध में मोगा में महा यज्ञ और महा व्रत ।

(जीवन पथ, सं० १६५१ वि०)

भगवान् देवात्मा ने बतलाया कि आज मेरे इस पृथिवी में आविर्भूत होने का बावनवां और मेरे जीवन व्रत ग्रहण करने का तीसवां वार्षिक दिन है। क्या इस दिन की कोई विशेषता वा महानता है ? यदि है, तो वह क्या है ? क्या वह विशेषता इसलिए है, कि मैं उस दिन जन्मा था ? नहीं, उसी दिन इस पृथिवी में और भी बहुत से बच्चे उत्पन्न हुए थे, जैसे कि प्रति दिन अब भी उत्पन्न होते रहते हैं। किन्तु उस दिन की महानता अथवा विशेषता इसलिए है, कि उस दिन एक ऐसे बच्चे का जन्म हुआ था, कि जिस ने जन्म लेकर अपने भीतर से धीरे २ ऐसी उच्च और महान और हितकर शक्तियों का प्रकाश किया, कि जो अपने कार्य्य और फलों के विचार से न केवल असाधारण किन्तु अद्वितीय है। इसलिए ऐसे जीवन के आविर्भूत होने के साथ जिस दिन का संयोग है, वह दिन भी निश्चय विशेष दिन है। मैं इन निराली और अद्वितीय उच्च शक्तियों के बीज को लेकर उत्पन्न हुआ, और साधारण बच्चों की न्याईं पलने लगा। आयु बढ़ने के साथ २ मेरी यह मान्सिक और हृदय की शक्तियां विकासित होने

होने लगीं। बचपन से हि मेरी कुछ न कुछ विशेषता प्रगट लगी, और बड़े होने के साथ २ वह विशेषता और भी अधिक से अधिक प्रकाश पाने लगी; यहां तक कि जवानी में पहुंचकर मेरी प्रकृति जो कुछ बन गई, वह मुझ पर हर समय यह प्रगट करती थी कि नौकरी करना, रुपया इकट्ठा करना, मान और यश लाभ करना इत्यादि तुम्हारे जीवन का लक्ष्य नहीं है। और इसीलिए मैं उन्हें अपना लक्ष्य नहीं समझता था, किन्तु धर्म्म अथवा उच्च जीवन को हि अपना मुख्य लक्ष्य अनुभव करता था, और उसी को सन्मुख रखकर उसकी सिद्धि के लिए और सब कुछ विसर्जन करने के लिए प्रस्तुत रहता था। इस सब का फल यह हुआ, कि जब मैं ३२ वर्ष की आयु में पहुंचा तो मुझे यह अनुभव होने लगा, कि मेरा जीवन जो कुछ अब तक बन चुका है, वह पूर्ण रूप से औरों के काम आने के लिए है। मेरे भीतर से यह आकांक्षा बार २ और प्रबल रूप से उठने लगी, कि मैं किसी प्रकार औरों के उच्च से उच्च हित साधन के काम आ सकूं, और मेरे जीवन से औरों को जीवन मिल सके। यह वह समय था, जब कि मेरे भीतर कोई वासना और कोई उत्तेजना ऐसी न थी कि जिस का मुझ पर अधिकार हो, और जो मुझे नीचे ले जा सके, अथवा इसके भिन्न कोई और भाव वा ख्याल

न था, कि जो मेरे रास्ते में रोक बन सके। हां, ऐसी सब वासनाएं और उत्तेजाएं आदि एक पालतू और दास कुत्ते की न्याईं मेरे पांवों के नीचे खेलती थीं। उन में कोई मेरी स्वामी न थी, किन्तु मैं उन सब का स्वामी था। इधर मेरे भीतर सत्य ज्ञान के लाभ करने और सत्य को निर्णय करके ग्रहण करने का भाव बहुत प्रबल रूप से वर्तमान था। इसलिए मैं चारों ओर जो कुछ देखता, सुनता अथवा जो कुछ पढ़ता वा अध्ययन करता था (और मैं अब की न्याईं बहुत कुछ पढ़ता, सुनता, और देखता रहा हूं) वही सब कुछ सत्य नहीं मान लेता था; किन्तु उस सब को तीक्ष्ण विचार और आलोचना के द्वारा जांच पड़ताल करके जो कुछ सत्य जानता अथवा अनुभव करता, केवल उसी को ग्रहण करता था। और जो कुछ सत्य जानकर ग्रहण करता था, उसकी अपने जीवन की प्रत्येक चाल वा गति के द्वारा (हज़ार रोकों के आने और विरोधिता के उत्पन्न होने पर भी) पोषकता करता था। इसके भिन्न शुभ और सौन्दर्य्य का प्यार भी मुझ में इतना प्रबल था, कि मैं अपने किसी सम्बन्ध में जो कुछ अशुभ जनक वा कुत्सित अनुभव करता, उसे दूर करने और उसके स्थान में शुभ, सौन्दर्य्य और मेल के लाने के लिए बहुत व्याकुलता के साथ यत्न करता। इन्हीं महान और अत्यन्त उच्च भावों ने मुझे बस व्रत

के ग्रहण करने के लिए साहस किया, कि जिस का दृष्टान्त इस पृथिवी के किसी देश के इतिहास में नहीं मिल सकता। इसलिए आज के हि विशेष दिन में आज से बीस वर्ष पहले सरकारी नौकरी से अलग होकर और यह मन्त्र गाके २,

" सत्य शिव सुन्दर हि मेरा परम लक्ष्य होवे;

जग के उपकार हि में जीवन यह जावे।"

मैंने अपना जीवन व्रत ग्रहण किया। इस व्रत सम्बन्धी अनुष्ठान के सम्पन्न होने से पहले हि मेरे इस्तेफ़ा देने की खबर पाकर लोगों ने अपने २ विरोधी मत प्रकाश करने प्रारम्भ कर दिए थे। कोई कहता था पागल हो गया है, कोई कहता था खब्ती है, कोई कहता था नहीं, इसे एक राजा ने सौ रुपया मासिक देना स्वीकार किया है। इसी प्रकार जो कुछ जिस के जी में आता था, वह कहकर अपना दिल खुश करता था। इस समय से लेकर इस बीस वर्ष के लम्बे काल में अपने जीवन व्रत को पूरा करने के लिए मुझे जितना घोर से घोर संग्राम करना पड़ा है, जितने घोर से घोर दुख सहने पड़े हैं, जितने बड़े से बड़े आघात् और घाव अपने हृदय पर खाने पड़े हैं, कि जिन के कारण मेरा शरीर भी चकनाचूर होकर नाना रोगों का घर बन गया है, उन सब का इस समय वर्णन करना असम्भव है। इस महा संग्राम और उत्पीड़न

के भीतर से गुज़रने के लिए भी मेरे भीतर जो विशेष शक्तियां वर्तमान थीं, उनकी सहायता से केवल यही नहीं, कि मैं उन में पड़कर मिट नहीं गया, और अपने लक्ष्य से भ्रष्ट नहीं हो गया, किन्तु एक २ इंच भेट होकर, मैं आज तक उसी परम लक्ष्य को पूरा करने के लिए चेष्टा करता आया हूं। और उस में अधिक से अधिक कृत-कार्य्य भी होता गया हूं। और इसी का यह फल है, कि मैं इस समय देखता हूं, कि तुम में से वह लोग कि जो पहले चोरियां करते थे, अपने पेशों में बददयानती करते थे, तरह २ के नशे सेवन करते थे, मांस खाते थे, पशुओं का वध करते थे, जुआ खेलते थे, झूठी गवाहियां देकर लोगों को नाना प्रकार का कष्ट देते थे, रिश्वतें लेते थे, व्यभिचार करते थे, और तो और कोई २ अपने सगे भाइयों की स्त्रियों को भी छोड़ना नहीं चाहते थे, वह सब ऐसे २ महा पापों से मुक्त हो गए हैं। जहां जिन घरों में शान्ति के स्थान में रात दिन दंगे और झगड़े रहते थे, पारिवारिक जन एक दूसरे को सताकर एक दूसरे को दुख देकर पिशाचत्व की अवस्था रखते थे, एक २ जन आत्म घात करने के लिए तैयार फिरता था; वहां अब ऐसे नारकी अवस्था के स्थान में शान्ति राज करती है। कितने हि जन जो अपनी अनुचित क्रियाओं से अन्य लोगों को नाना प्रकार की हानियां

पहुंचाते थे, उनके यह सब महा पाप छूट गए हैं, कितने हि जन जो पहले निकम्मे पड़े रहते थे। वह अब काम करने लगे हैं। कितने हि जन जो अपव्यय करके अपने धन का वृथा नाश करते थे, वह अब ऐसा कर्म नहीं करते। कितने हि जन जो नाना प्रकार के कुसंस्कारों में फंस रहकर अपने और अन्य जनों के लिए हानिकारक बने हुए थे, वह अब उन से मुक्त हो चुके हैं। कितने हि जनों को अपनी सन्तान के विवाह के लिए जहां पहले सुयोग्य वर और कन्या नहीं मिलते थे, उन्हें अब अपेक्षा कृत सुयोग्य वर और कन्या प्राप्त करने का अवसर मिल रहा है। कितने हि लोग, जो पहले केवल मूर्ख थे, वह अब पढ़े लिखे बन गए हैं। और जो पहले से कुछ पढ़े लिखे थे, उनकी मान्सिक शक्तियां बहुत उन्नत हो गई हैं। और अब देव समाज के क्या पुरुषों और क्या स्त्रियों में से बहुत थोड़े जन ऐसे मिलेंगे कि जो पढ़ना लिखना कुछ भी न जानते हों। यह हाई स्कूल हि, कि जिस के सुन्दर हाल में हम इस समय सभा कर रहे हैं, कुछ वर्ष पहले नहीं था। इसके भिन्न बड़ी उमर की स्त्रियों और अन्य लड़के और लड़कियों के लिए जो कई और स्कूल जारी हैं, वह सब भी पहले कहां थे? यह सब कुछ यूंहि नहीं हो गया, किन्तु कितनी हि उच्च शक्तियों के कार्य्य का फल है, कि जिन्हों ने मेरे जविन

के द्वारा काम किया है। इस सार कार्य्य के भिन्न कितने हि जनों के भीतर सेवा का भाव उत्पन्न हुआ है, और वह रोगियों की चिकित्सा करने और उन्हें औषधि आदि देने का काम करते हैं। फिर कितने हि जन ऐसे पाए जाते हैं, कि जो अपने धर्म्म उपदेशों आदि के द्वारा औरों के आत्माओं का विविध प्रकार का हित साधन करते हैं। यह सब कुछ यद्यपि अति उच्च, निराला और अद्वितीय कार्य्य है, फिर भी जो दान मैं आत्माओं को देना चाहता हूं, जिस विज्ञान मूलक प्रकृत और पूर्ण धर्म्म की, उसके विविध अंगों के विचार से शिक्षा देने की आकांक्षा रखता हूं, और विश्व के विविध सम्बन्धों में जो कुछ नीच गति नाशक बोध और उच्च गति विकासक अनुराग उत्पन्न और उन्नत करने की इच्छा रखता हूं; उसके लाभ करने के लिए अत्यन्त शोक का विषय है, कि जिस योग्य अवस्था के और जिस संख्या में आत्मा प्राप्त होने चाहिएं थे, वह मुझे प्राप्त नहीं हुए। मेरी उमर बहुत कुछ जा चुकी है, परन्तु हाय! ऐसी अद्वितीय शिक्षा सम्बन्धी ज्योति के जितने अंश मुझ से निकलकर योग्य शिष्यों में अब तक पहुंचने की आवश्यकता थी, वह नहीं पहुंची, और उन में जितना उच्च जीवन आना चाहिए था, उतना नहीं आया!!

मैं सत्यवादी और सत्यानन्द होकर तुम लोगों को

अन्धेर में नहीं रखना चाहता। तुम लोगों की जो प्रकृत अवस्था है, उसे आज के विशेष दिन में तुम पर प्रगट कर देना चाहता हूं, और तुम्हारा सच्चा नेता होकर मैं यह आवश्यक बोध करता हूं, कि मैं तुम लोगों को तुम्हारी प्रकृत अवस्था का सच्चा ज्ञान दूं, और तुम में से जिन के लिए जहां तक सम्भव हो, उन्हें आगे बढ़ाने के लिए चेष्टा करूं। तुम में से बहुत से जन वह हैं, कि जो पहली श्रेणी के निम्न विभाग के सेवक हैं, कि जिन के भीतर से केवल कुछ मोटे २ पाप दूर हुए हैं, और इस से ऊपर अब तक उनके भीतर धर्म्म वा उच्च जीवन लाभ करने के लिए कोई आकांक्षा जाग्रत नहीं हुई। वह केवल उस खेत की न्याईं हैं, कि जिस के भीतर की कुछ बड़ी २ (सब नहीं) कांटेदार झाड़ियां काटी गई हैं, परन्तु उन में गेहूं के हरे २ पौदे कहीं दिखाई नहीं देते। इसलिए उन में अभी धर्म्म वा जीवन दाता के सम्बन्ध में कोई आन्तरिक आकर्षण वर्तमान नहीं। इस से ऊपर बहुत से सेवक उच्च विभाग में हैं, कि जिन में कुछ २ धर्म्म अभिलाषा जागी है और सम्भावना है, कि अनुकूल अवस्था के प्राप्त होने पर उनके भीतर धर्म्म दाता के लिए आकर्षण भी प्रस्फुटित हो जावे। फिर दूसरी श्रेणी में पहुंचकर अवश्य ऐसे जन मिलते हैं, कि जिन में धर्म्म वा जीवन दाता के लिए कुछ सात्विक

श्रद्धा जाग आई है। और तीसरी में कुछ जन ऐसे भी पाए जाते हैं, कि जिन के भीतर जीवन दाता के प्रति कुछ थोड़ा सा लगाव भी उत्पन्न हो चुका है, और वह एक वा दूसरे प्रकार का परहित साधन भी करते हैं। परन्तु यह श्रद्धा वा लगाव अभी ऐसा गाढ़ नहीं, कि जिस से गुरु जीवन अर्थात् उन के गुरु में जो देव जीवन वर्तमान है, उसके साथ जुड़कर उनके देव प्रभावों को पाना उन सब का परम वा मुख्य लक्ष्य बन गया हो, और वह उसके सिद्ध करने के लिए सब प्रकार के त्याग और सब प्रकार के आत्म-समर्पण के लिए यथेष्ट आकांक्षा अनुभव करते हों।

अब यह प्रत्यक्ष है, कि जब तक विश्व के नाना विभागों के सम्बन्ध में नीच गति बराबर जारी रहे, और जब तक उन सम्बन्धों में नीच गति विनाशक बोध उत्पन्न न हों, और उच्च गति विकासक अनुराग विकसित न हों, तब तक किसी जीवन की रक्षा क्योंकर हो सकती है, और उसके विकास का प्रकृत मार्ग क्योंकर खुल सकता है? हां, ऐसी अवस्था में मेरे जीवन व्रत के ग्रहण करने का महान उद्देश्य भी भली भांत सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए जब तक तुम में से किसी हृदय के भीतर से व्याकुलता के साथ यह गहरी आकांक्षा उत्पन्न न हो, कि "मैं विनष्ट न हूं, मुझ में नीच गति

विनाशक सब प्रकार के बोध उत्पन्न हों, मुझ में उच्च गति विकासक सब प्रकार के भाव जाग्रत हों, मैं विश्व के नाना विभागों के सम्बन्ध में जहां २ अन्धकार में पड़ा हुआ हूं, वहां मुझे ज्योति प्राप्त हो, जहां २ उन सम्बन्धों में मेरी नीच गति जारी है उसका मुझे बोध हो, और वह मेरी नीच गति दूर हो। ऐसे प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में मेरे भीतर उच्च गति दायक अनुराग उत्पन्न हों, मैं विश्व के साथ उच्च गति दायक एकता लाभ करूं" और वह इस आकांक्षा के पूरा करने के लिए जीवन दाता के साथ जोड़ने वाले चारों भावों की उत्पत्ति और उन्नति के साधनों को पूरा न करे, अथवा उनके पूरा करने में जो कुछ बाधा हो, उसे त्याग करने के लिए प्रस्तुत न हों, तब तक जैसे उस के प्रकृत उद्धार और कल्याण की आशा नहीं हो सकती, वैसे हि किसी ऐसे जन के द्वारा मेरा जीवन व्रत भी पूरा नहीं हो सकता। तब क्या तुम में से ऐसे योग्य जन नहीं निकलेंगे, कि जो स्थान और धन और किसी नीच सुख के मोह और वृथा भय आदि को छोड़कर क्या अपने परम कल्याण और उसकी सब से बढ़कर सफलता और क्या मेरे जीवन व्रत के पूरा होने के लिए और उस जीवन व्रत के साथ इस देश और जाति और मनुष्य मात्र का हित विषयक जो सम्बन्ध है, उस हित साधन के लिए अपने आप को

अर्पण कर सकें? क्या मेरी यह सब शक्तियां निष्फल जाने के लिए हैं? क्या मैं इस पृथिवी के लिए प्रगट नहीं हुआ? क्या मेरा जीवन व्रत केवल परलोक निवासियों के लिए है? ऐसा हो, कि इस महा व्रत पर आ कर तुम्हारी आंखें खुल सकें। और तुम मेरे और अपने देश और मनुष्य मात्र के सम्बन्ध को उपलब्ध करके ऐसे प्रत्येक सम्बन्ध में तुम्हारा जो कर्तव्य है, उसे अनुभव कर सको, और जिस देव जीवन को लाखों वर्ष के संग्राम के अनन्तर प्रकृति ने तुम्हारे गुरु भगवान् देवात्मा के द्वारा प्रगट किया है, उस को तुम में से जिन के भीतर जहां तक जानने और उनके देव प्रभावों के लाभ करने की योग्यता वर्तमान हो, वहां तक तुम उसे जान और लाभ कर सको।

भगवान् देवात्मा के इस तेजस्वी उपदेश ने जिस का केवल सारांश ऊपर दिया गया है। क्या कर्म्मचारी सेवकों और क्या अन्य सेवकों और क्या कितने हि श्रद्धालुओं के हृदयों को हिला दिया, और उन्हें उच्च ज्योति के प्रकाश में पूजनीय भगवान् के सम्बन्ध में अपनी २ त्रुटियों को विशेष रूप से देखने का अवसर दिया। उपदेश के समाप्त होने के साथ हि दो कर्म्मचारियों और एक श्रद्धालु ने बहुत व्याकुलता के साथ अपने भावों का प्रकाश करना आरम्भ किया और जीवन दाता के अधिक

मे अधिक अधिकार में आने के लिए आशीर्वाद प्रार्थना की। कितने हि जन अपनी २ हीनताओं को देखकर आंसु बहा रहे थे, और कितने हि जन फूट २ कर अपनी व्याकुलता का प्रकाश कर रहे थे।

महा यज्ञ सम्बन्धी दान।

सं० १९६२ वि० के महा यज्ञ के दिनों में भगवान् देवात्मा ने अपने सेवकों के हित के लिए एक अत्यन्त कल्याणकारी और दुर्लभ दान अर्थात् एक अति हितकर पत्र प्रदान किया था, कि जिस के पाठ और श्रवण से न केवल बहुत से सेवकों ने बहुत विशेष हित लाभ किया, किन्तु उस दिन से देवाश्रम में महा यज्ञ सम्बन्धी साधनों में एक नई जान और एक नई गति उत्पन्न हो गई, कि जिस से प्रायः सब साधकों का हि बहुत कल्याण साधन हुआ। भगवान् देवात्मा ने यह पत्र अपनी अति रोगी अवस्था में रोग शय्या पर पड़े २ अपने एक पुत्र के हाथों मे लिखवाकर दान करने की कृपा की थी। भगवान् देवात्मा का यह महा मूल्य दान यह था :—

प्रिय नर नारी सेवको !

महा यज्ञ का एक सप्ताह व्यतीत हो गया। महा यज्ञ का प्रथम लक्ष हृदय की शुद्धि है। इसीलिए यह दिन तुम्हारे दिल धोने के दिन हैं। किसी के सम्बन्ध में जब कोई मनुष्य अपनी किसी नीच गति से परिचालित

होकर कोई दुश्चिन्ता करता है, अथवा उसे कोई दुख या हानि पहुंचाता है, तो ऐसी गति से उसका हृदय मैला वा विकार युक्त हो जाता है । यह मैल वा विकार उसके आत्मा के लिए महा हानिकारक और विनाशकारी होती है । इस तत्व को ज्योति जब किसी आत्मा तक पहुंचती है, तब वह किसी के सम्बन्ध में केवल यही नहीं, कि अपनी प्रत्येक दुश्चिन्ता वा पाप क्रिया से अत्यन्त डरता है, किन्तु यह आकांक्षा करता है, कि मुझे लगातार वह ज्योति मिले, कि जिस से मुझे उसके सम्बन्ध में अपने पाप वा विकार दिखाई दें, और मेरे भीतर उन्हें देखकर उनके लिए घृणा और दुख उत्पन्न हो । और मैं उस दुख से कातर होकर इतना रोऊं और चिलाऊं और सन्ताप अग्नि से जलकर इतना दुख पाऊं, कि उसके द्वारा मेरे हृदय का पहला सारा विकार नष्ट हो जावे । और जैसे सोना आग में तपाए जाने के बाद शुद्ध हो जाता है, वैसे हि मेरा हृदय भी भीतर के अनुताप मे पिघलकर और दुख के आंसुओं से धुलकर शुद्ध और साफ़ हो जावे ।

जैसे मैले और चीकट वस्त्र को धोकर उजला करने के बिना उस पर कोई रंग नहीं चढ़ता, वैसे हि तुम अपने विकार युक्त वा मैले हृदय को धोने के बिना उस पर जीवन दायिनी धर्म्म प्रीति का कोई रंग नहीं चढ़ा

सकते। महा यज्ञ के साधनों में बैठकर सब से पहले इस बात की आवश्यकता है, कि तुम्हारे हृदयों का मैला धोया जाए और नीचता के विकार से उनकी भली भांत शुद्धि की जाए। क्या इस यज्ञ के साधनों में यह लक्ष्य पूरा हो रहा है? क्या तुम्हारे मैले दिल धुल रहे हैं? क्या तुम्हारे साधन ऐसे होते हैं, कि जो तुम्हारे भीतर उपरोक्त प्रकार की ज्योति को लाकर और घृणा, अनुताप और दुख उत्पन्न करके और तुम्हारी आंखों से आंसुओं की धार को बहाकर तुम्हारे हृदय को शुद्ध करने में सहाय हो रहे हैं? क्या तुम अपने साधनों में ऐसी अवस्था के लाने में एक दूसरे की कुछ सच्ची सहाय करते हो? सोचो और उत्तर दो। विचारो और साधनों का सच्चा तत्व और उद्देश्य सीखो और इस महा यज्ञ के उपरोक्त प्रथम लक्ष्य को पूरा करने के योग्य बनो।

तुम्हारा शुभाकांक्षी,

स० न० अ०

महा यज्ञ के १९२५ ई० के आरम्भिक दिन में एक बहुत बड़े प्रभाव शाली उपदेश का संक्षिप्त सार।

(सेवक पौष १९८२ वि०)

परम पूजनीय भगवान् ने फ़रमाया, कि

देवात्मा ने मनुष्यात्माओं के कल्याण के लिए जो

सोलह यज्ञ स्थापन किए हैं, और जिन के साधन के सम्बन्ध में देव शास्त्र में आदेश दिए गए हैं, उन में से आज जिस यज्ञ का आरम्भ होता है, उसे देवगुरु यज्ञ वा महा यज्ञ कहते हैं। यही यज्ञ मूल यज्ञ है; क्योंकि इसके निमित्त मनुष्यात्मा में जिस २ प्रकार के उच्च वा सात्विक भावों की ज़रूरत है, उनकी प्राप्ति के बिना शेष यज्ञों के सम्बन्ध में साधन करने की कोई सच्ची और यथेष्ट योग्यता हि पैदा नहीं होती। प्रत्येक मनुष्य को नेचर के विविध विभागों के विविध सम्बन्धियों के सम्बन्ध में अपनी प्रकृत आत्मिक अवस्था के देखने के लिए और उसके आत्मा में जिस २ प्रकार के नीच अनुराग और जिस २ प्रकार की नीच घृणाएं वर्तमान हैं, और उन से जिस २ प्रकार की मिथ्या और जिस २ प्रकार के अहित की उत्पत्ति होती है, उनके हानिकारक वा विनाशकारि रूप को उपलब्ध करने के लिए जिस अद्वितीय देव ज्योति की प्राप्ति की ज़रूरत है, वह एक मात्र देवात्मा से हि प्राप्त हो सकती है। इसी तरह उन से सच्ची मोक्ष पाने और उस से भी बढ़कर किसी आत्मा को अपने जन्म जात किसी एक वा कई सात्विक भावों को विकसित करने के लिए भगवान् देवात्मा के जिस अद्वितीय देव तेज की प्राप्ति की ज़रूरत है, उस की प्राप्ति भी एक मात्र देवात्मा से हि हो सकती है।

इसलिए इन दोनों की हि प्राप्ति के लिए देवात्मा के साथ आत्मिक सम्बन्ध के स्थापन करने की मूल और लाज़मी आवश्यकता है।

देवात्मा में इस देव ज्योति और इस देव तेज का विकास उन की जिन हित और सत्य विषयक सर्व्वाङ्ग और अद्वितीय देव अनुराग और अहित और मिथ्या विषयक सर्व्वाङ्ग और अद्वितीय देव घृणा शक्तियों से हुआ है, उन देव शक्तियों से दुनिया के सब कहलाने वाले उपास्य देवते वा माबूद खाली थे। इसीलिए देवात्मा ने अपनी इन देव शक्तियों से विकसित इस देव ज्योति और अपने इस देव तेज के द्वारा नेचर के अटल नियमों के अनुसार मनुष्यात्माओं में जिस २ प्रकार के आश्चर्य्य जनक उच्च परिवर्तन उत्पन्न किए हैं, वह कोई माबूद पैदा नहीं कर सका, और उनके सिवाय ऐसे कहलाने वाले देवताओं का कहलाने वाला कोई अवतार वा उनका भेजा वा नियत किया हुआ कोई गुरु वा हादी आदि भी नहीं कर सका और न अब कर सकता है।

मेरी शिक्षा यह है, कि प्रत्येक मनुष्य को उसके अपने दिल के विविध भाव हि चलाते हैं। अब यदि किसी जन के भीतर यह भाव हो, कि किसी दूसरे जन का रुपया वा उसका माल मेरे पास आ जावे और मैं

उस से एक वा दूसरा सुख लाभ करूं, मैं किसी की बेटी वा किसी की पत्नी वा किसी की बहिन के साथ अनुचित ताल्लुक़ पैदा करके अपना काम वासना का सुख लाभ करूं, तब पहले उनका दिमाग़ उसके किसी ऐसे भाव के हाथ में औज़ार बनकर उसके लिए तजवीज़ सुझाएगा; फिर उसका वही भाव यथेष्ट बलवान् होने पर उसके शरीर के हाथ पांव को हरकत में लाकर उस से उन बुरी तजवीज़ों को पूरा कराएगा। अतएव प्रत्येक मनुष्य अपनी एक वा दूसरी अनुराग वा घृणा शक्ति के द्वारा एक वा दूसरी प्रकार की हरकत वा गति करता है। इसलिए मनुष्य अपने विविध प्रकार के नीच सुखों के अनुराग भावों से क्या अपनी ज़ात और क्या नेचर के अन्य अस्तित्वों के सम्बन्ध में जिस २ प्रकार की बुराइयों वा हानियों का मूजब बनता है, उस से सिवाय देवात्मा की अद्वितीय देव ज्योति और अद्वितीय देव तेज के किसी मज़हब वा गवर्नमेंट का कोई हुक्म मोक्ष नहीं दे सकता।

इसलिए यह महा यज्ञ मूल यज्ञ है, क्योंकि किसी जन के भीतर विविध सम्बन्धों में जिस क़दर मोक्ष और विकास लाभ करने की योग्यता हो, उसे जब तक देवात्मा की देव ज्योति और उनका देव तेज न मिले, तब तक वह उतने दर्जे विकास लाभ नहीं कर सकता।

अब प्रश्न यह है, कि देवात्मा की यह देव ज्योति और उनका यह देव तेज किसी जन को अपनी कोशिश वा अपने किसी साधन के द्वारा कैसे प्राप्त हो सकता है? इसका उत्तर यह है, कि देवात्मा के साथ आत्मिक सम्बन्ध स्थापन करने से। फिर दूसरा प्रश्न यह है, कि देवात्मा के साथ आत्मिक सम्बन्ध कैसे स्थापन हो? इसका उत्तर यह है, कि देवात्मा के देवरूप के प्रति किसी जन में कुछ आकर्षण वा कशश महसूस हो। परन्तु जो जन नीच सुखों का अनुरागी है, उसके भीतर से पहले तो देवात्मा के प्रति कोई आकर्षण पैदा नहीं हो सकता, दूसरे यदि उसे इस प्रकार के आकर्षण का कोई भाव बीज रूप में अपने जन्म काल से मिला हो, तो वह उनके देव प्रभावों के द्वारा फूटने पर भी विरोधी सामानों में मर जाता है।

मनुष्यों के भीतर जिन २ नीच सुख विषयक अनुरागों की भरमार है, उन में से कितने हि यह हैं :—

(१) कई प्रकार के शारीरिक सुख विषयक अनुराग, यथा स्वाद अनुराग, काम अनुराग, आलस्य वा आराम अनुराग, विविध नशों का अनुराग।

(२) कई प्रकार के अहं मूलक सुख अनुराग, यथा स्वार्थ अनुराग, स्वेच्छाचार अनुराग, घमंड अनुराग आदि।

(३) अपने से बाहर धन सम्पत्ति के लिए अनुराग, पत्नी वा पति वा बच्चो के लिए अनुराग आदि ।

और इन से जो कई प्रकार की नीच घृणाएं पैदा होती हैं, उनका अधिकार । इसी सिलसिले में पूजनीय भगवान् ने इन में से प्रत्येक नीच अनुराग की किसी क़दर व्याख्या की, और इन सुखों के दासत्व से जिस २ प्रकार के भयानक नतीजे पैदा होते हैं, उनका बयान फ़रमाया। शारीरिक सुख विषयक अनुराग के कुछ खौफ़नाक पहलुओं को पेश करते हुए उन्हों ने फ़रमाया कि अपने२ शारीरिक सुखों के अनुरागी जिस तरह से नशई बनते हैं, बदचलन बनते हैं, कितने हि लोग जो बदचलन नहीं बनते,वह अपने जोड़ के रिश्ते में काम सुख की ज़्यादतियां करके अपने २ शरीरों की सेहत का नाश करते हैं, कि जिस से कितने हि जन जवानी की उमर में हि अति दुर्बल और बीमार होकर तरह २ के दुख पाते हैं, खाने पीने के सुख के पीछे अन्धे बनकर तरह २ के असंयम करते और अपने २ शरीर का नाश करते हैं, और उस में कई प्रकार के बड़े २ रोगों को पैदा करके बिन आई मौत मरते हैं ।

इस प्रकार विविध नीच रागों की भयानक छवि खैंच-कर भगवान् ने फ़रमाया, कि

ऐसे नीच अनुरागियों के भीतर देवात्मा के लिए

कशश क्योंकर पैदा हो ? इसीलिए मेरी यह बहुत पुरानी शिकायत है, कि देव समाज के लोग सिवाय किसी २ जन के जो गिनती में आने के योग्य नहीं, क्या अपने आत्मा और क्या अपने शरीर और क्या अपने पारिवारिक जनों के आत्मिक जीवन वा किसी भी भले काम के सम्बन्ध में मेरे पास आकर कोई बातचीत नहीं करते, वह अपना कोई हाल मुझे नहीं बताते, क्योंकि उन्हें यह डर लगता है, कि देवात्मा किसी के सम्बन्ध में हमारी किसी अनुचित क्रिया वा नीच गति को प्रगट न कर दें, और हमारे किसी सुख दायक अनुराग की गुलामी को दूर करने के लिए अपने देव प्रभाव हम तक न पहुंचा दें। बेशक वह ऐसों के साथ खूब मिलते जुलते हैं, और उनके साथ मिलकर खूब बातचीत करते हैं, कि जिन के साथ उन की प्रकृति का मेल होता है, जैसा कि कहा गया है :—

" कुनद हम जिन्स बा हम जिन्स परवाज़,

कबूतर बा कबूतर बाज़ बा बाज़ ।"

अर्थात् जिन की प्रकृति एक जैसी होती है, वह आपस में मिलते हैं।

इसीलिए लोग अपने बीवी बच्चों और अपनी जैसी प्रकृति रखने वाले दोस्तों के साथ रहने में खुश रहते हैं। क्योंकि उनके भीतर जो २ नीच अनुराग वर्तमान होते

हैं, उनकी वह उन में तृप्ति वा अपना सुख महसूस करते हैं। अब जिस सूरत में देवात्मा के लिए किसी जन के आत्मा में कोई आकर्षण वा अनुराग न हो, तब साफ़ जाहर है, कि उनके साथ उसका कोई आत्मिक सम्बन्ध नहीं। देवात्मा उसकी पत्नी नहीं कि वह उसकी तरफ़ आकृष्ट हो; देवात्मा उसका बेटा नहीं कि वह उसके लिए कोई कशश महसूस कर सके; देवात्मा रुपया नहीं; जायदाद नहीं कि वह उसकी तरफ़ मायल हो।

फिर प्रश्न यह है, कि आया देवात्मा के लिए किसी मनुष्यात्मा में कशश पैदा हो भी सकती है? हां बाज़ में उसका कुछ जन्म जात माद्दा होता है, जो अनुकूल हालात में फूटकर विकसित भी हो सकता है। परन्तु यह बात याद रखने के योग्य है, कि जिस वस्तु के लिए कशश हो, उसके विरुद्ध वस्तु के लिए घृणा का होना लाज़मी है। यह दोनों शक्तियां साथ २ चलती हैं। इसी लिए नीच अनुरागों की ज़मीन में से उच्च अनुरागों का कोई अंकुर या तो फूट हि नहीं सकता, और यदि फूट आवे, तब वह उन नीच अनुरागों के जारी रहने वा बढ़ते रहने से विकसित नहीं होता, और आख़िरकार धीरे २ मर जाता है।

इसी बयान के सिलसिले में भगवान् देवात्मा ने श्रीमान् देवरत्न सिंह जी की ज़िन्दगी की कुछ घटनाएं

सुनाई। अर्थात् पहले पहल जब उनके देव प्रभावों को पाकर उनके आत्मा में उच्च परिवर्तन उत्पन्न हुआ, तब उनके भीतर अपने जन्म जात सात्विक बीज के फूटने पर एक ओर देवात्मा के लिए आकर्षण का सात्विक भाव जाग्रत हुआ और उसके साथ हि उनके परम लक्ष्य की सिद्धि में सेवाकारी बनने का भाव भी पैदा हुआ और वह रुड़की में शिक्षा पाने के दिनों में हि अपने साथी विद्यार्थियों में प्रचार का काम करते थे, और उस में केवल यही नहीं कि अपनी पढ़ाई में कोई हानि नहीं देखते थे, किन्तु फायदा देखते थे। फिर जब वह वहां की परीक्षा में पास हुए और सब-इन्जनियरिंग ग्रेड में तारीफ़ के साथ पास हुए, और अपरेन्टिस ओवरसियर होकर अमृतसर में आए, तब वह अपने इस सात्विक आकर्षण के कारण वहां से रेल का सफ़र करके और रेल का कराया देकर उन से मिलने के लिए इसी लाहौर में पहुंचा करते थे, जबकि अमृतसर की तुलना में जो लोग यहां मेमोरियल मन्दिर के हाते में हि रहते हैं, वह देवात्मा के प्रति एक ओर इस सात्विक आकर्षण के न रखने और दूसरी ओर कई प्रकार के नीच सुखों के अनु-रागों के दास होने के कारण उनके पास आने के लिए कोई भाव नहीं रखते, और अपने वा अपनी सन्तान् वा अपनी पत्नी वा पति के किसी प्रकार के हित को सन्मुख

रखकर वा देव समाज की हि किसी सेवा के काम को मुख्य रखकर उनके पास पहुंचना नहीं चाहते और अपने विकर्षण के कारण वह क्या देवात्मा और क्या आत्मा दोनों के हि सम्बन्ध में बहुत कुछ अज्ञानी और बहुत अन्धकार ग्रस्त हैं। फिर उन में से जिस किसी में देवात्मा के सम्बन्ध में कभी कोई सात्विक भाव भी जागा था, वह उनके सुख विषयक नीच अनुरागों से जो नीच घृणा पैदा होती है, उसके पैदा होने और देवात्मा से फट जाने से बिलकुल नष्ट हो गया। देवत्व सिंह भी इसी रूहानी मौत का शिकार होने वाले थे। क्योंकि उन के भीतर पहले पहल घमंड भाव का ज़ोर था और वह अपनी किसी नीच गति के विरुद्ध कोई बात देवात्मा से भी सुनना पसन्द न करते थे, और जब एक मात्र सच्चे गुरु होने के कारण देवात्मा उनके आत्मिक उद्धार के लिए उन की एक वा दूसरी बुरी क्रिया को अपनी देव ज्योति के द्वारा उसके बुरे रूप में उनके सन्मुख दिखाने का संग्राम करते, तो वह अपने उस महा नीच भाव के कारण उन से फट जाते, जिस से एक तरफ़ उनका वह सात्विक आकर्षण बहुत कुछ नष्ट हो गया, और दूसरी तरफ़ उनका आत्मा अपने विषय में रोशनी पाने के योग्य न रहा और इसीलिए वह अन्धकार ग्रस्त होता चला गया। अब यदि कुछ काल तक उनकी यह बिनाश-

कारी हालत और भी जारी रहती, तो उनके इस आकर्षण के सात्विक सूत्र का जिस के द्वारा वह देवात्मा से अपना आत्मिक सम्बन्ध स्थापन करने के योग्य हुए थे, और जिस के द्वारा वह उनके देव प्रभावों के पाने का अवसर पाकर मोक्ष और उच्च जीवन में विकास लाभ कर सकते थे, वह पूर्णतः नष्ट हो जाता; मगर बहुत खैर हुई। अर्थात् एक दिन देवात्मा के उपदेश से उन्हें इस घमंड रूपी महा विनाशकारी राक्षस का असल रूप दिखाई दे गया और उनके आत्मा में उसके लिए गहरी उच्च घृणा पैदा हो गई। तब से उनकी ज़िन्दगी का रास्ता बिलकुल बदल गया और वह देवात्मा के सम्बन्ध में आत्मिक साधन करने के योग्य बन गए और कई २ घण्टे वह उनके सम्बन्ध में प्रति दिन निज का साधन करके उनके देव प्रभाव लाभ करने के अधिकारी हो गए। वह भगवान् देवात्मा के सम्बन्ध में वर्षों तक हानि परिशोध और हित परिशोध के कार्य्य गत साधन करते रहे, कि जिस से एक तरफ़ उनका आत्मा (जो पहले मर रहा था) फिर से ज़िन्दा होकर धीरे २ श्रेष्ठ बनने लगा, और दूसरी तरफ़ उन में उन आत्माओं के भले के लिए जिन में उच्च परिवर्तन लाने के निमित्त देवात्मा व्याकुल थे, उपकार विषयक सात्विक भाव भी बढ़ने लगा और वह गिरे हुए आत्माओं के उठाने और

उन में आत्मिक हित का भाव पैदा करने के काम में लग गए, और इसीलिए उनके द्वारा बहुत से आत्माओं का कल्याण हुआ। वह सचमुच के प्रचारक कर्मचारी थे, और इसीलिए उनकी यादगार में वह सामने का कर्मचारी निवास बनाया गया है।

शोक कि अब उन्हें श्रीमान् देवरत्नसिंह जैसे सुयोग्य प्रचारक प्राप्त नहीं हैं। हां देवसमाज के किसी विभाग का चार्ज लेने के लिए जिस प्रकार के सात्विक अनुरागी और कर्तव्य परायण कर्मचारियों की आवश्यकता है, वह उन्हें अब प्राप्त नहीं हैं। बेशक देव समाज में कुछ आदमी ऐसे हैं, कि जो परिश्रमी हैं, काम चोर नहीं हैं, पूरे इयानतदार हैं; मगर वह देव समाज के किसी विभाग का चार्ज लेने के योग्य नहीं हैं।

मुझे सब से बढ़कर बहुत बड़ा फ़िकर प्रचार विभाग के सम्बन्ध में रहता है। कितने ही काम तो रुपए के द्वारा हो सकते हैं, मगर आत्मिक परिवर्तन का काम रुपए से नहीं हो सकता। इसके लिए सात्विक भाव धारी ऐसे आत्माओं की ज़रूरत है, कि जो एक तरफ़ देवात्मा और आत्मा के सम्बन्ध में देव ज्योति से रोशन हों, और जो लोग इस रोशनी से खाली होने के कारण तरह २ के मिथ्या विश्वासों में फंसे हुए हैं, और उनके कारण तरह २ से अपनी और औरों की सदा हानि कर

रहे हैं, उन तक वह सत्य ज्ञान की रोशनी पहुंचा सकें, और दूसरी तरफ़ वह खुद भी नीच रागों और नीच घृणाओं की दासत्व से मोक्ष चाहते हों और औरों तक भी देवात्मा के देव तेज को पहुंचाकर उन्हें उनके पतित जीवन से निकाल सकते हों।

इन उच्च गुणों से जो लोग खाली हैं, वह न देवात्मा के साथ कोई सम्बन्ध रखते हैं और न और आत्माओं की भलाई का हि कोई सच्चा और प्रबल भाव रखते हैं। मगर मैं यह जानता हूं, और साफ़ तौर से देखता हूं, कि नेचर का विकासकारी नियम और काम अटल है। मेरी जो शुभ इच्छा आज पूरी नहीं हो सकती, वह कल पूरी होगी, मगर ठीक समय के आने पर ज़रूर पूरी होकर रहेगी। मूल वस्तु यह है, कि यदि तुम किसी तरह देवात्मा वा नेचर के विकास के कार्य्य के अनुरागी और नेचर के विकास (evolution) पर विश्वास रखकर उसके रास्ते के मुसाफ़िर बनो, तो नेचर के उस विकासकारी विभाग की ओर से तुम्हे हालात के अनुसार अवश्य प्रत्येक सहायता मिलेगी। इस सच्चे विश्वास की बिना पर यदि तुम काम करने के योग्य बन सको और देवात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापन करने के लिए जिन सात्विक भावों की आवश्यकता है, उन्हें यदि तुम अपने आत्मा में विकसित कर सको, तो

निश्चय तुम्हारा आत्मा ऊपर को आ सकता है, और पतन से उद्धार पा सकता है; और वह देवत्व सिद्ध की न्याईं आत्मिक परिवर्तन का काम करने के योग्य बन सकता है।

तब क्या हमें ऐसे आदमी मिलेंगे, कि जो नाम, इज्ज़त, धन और शारीरिक सुखों के लालच और उन की दासत्व के प्रति घृणा अनुभव करके हमारे काम में लग सकें। याद रक्खो कि मैं सब प्रकार की परोहिताई को नष्ट करने के लिए प्रगट हुआ हूं। मैं स्वाद अनुराग, काम अनुराग, आलस्य अनुराग आदि शारीरिक सुखों की दासत्व को मिटाने के लिए ज़ाहर हुआ हूं, मैं स्वेच्छा-चारिता को नष्ट करने के लिए आया हूं। मैं स्वार्थ परता को ग़ारत करने के लिए पैदा हुआ हूं। मैं घमंड से अधिकारी जनों का उद्धार करने के लिए आया हूं। आदि। आया नेचर से मुझे ऐसे आदमी मिलेंगे, जो इस प्रकार के नीच अनुरागों से उद्धार पाने के आकांक्षी बन सकें, और सत्य धर्म्म जीवन को अपने लिए मुख्य और सार वस्तु बना सकें, जो औरों की भलाई के लिए जीना पसन्द करें, जो अपनी आत्मिक भलाई और औरों की आत्मिक भलाई को मुख्य और शेष सब सम्बन्धियों और अपने नीच सुखों को गौण रख सकें? मेरा यह पूर्ण विश्वास है, कि नेचर के प्रबन्ध के अनु-

सारे समय के आने पर ज़रूर ऐसे आदमी मिलेंगे और मेरी यह बात दिन की कृतज्ञता सूखि न जाएगी। मुझे ऐसे जन मिलेंगे, जो आत्मा और देवात्मा को पहचानेंगे और जो अपने और औरों के आत्मिक हित के लिए अपना सब कुछ अर्पण कर सकेंगे, और जो मुझे गुरु और अपने आप को शिष्य रख सकेंगे। वह मुझे गुरु कहकर और गुरु मानकर अपने आप को अपना गुरु न बनाएंगे।

इसी सिलसिले में जीवन दाता भगवान् देवात्मा ने और दिल से ज़ोरदार अपील करते हुए फ़रमाया, कि

तुम काहे को उन वस्तुओं को चाहते हो, जो तुम्हारी नहीं? क्यों न देव ज्योति से तुम्हारी आंखें खुलें और तुम्हारा अन्धकार दूर हो, और तुम देख सको कि जिन को तुम अपनी पत्नी और सन्तान आदि कहते हो और जिन की गुलामी में फंसे हुए हो, वह तुम्हारे नहीं हैं; एक दिन तुम उन से जुदा हो जाओगे; और जिसे तुम अपनी ज़मीन, जायदाद और अपना रुपया कहते हो, एक दिन वह तुम्हारा न रहेगा। तब तुम उनके पीछे क्यों मरे जाते हो? तुम काहे के लिए उनके अनुरागी बनकर अपने आत्मा के भीतर अन्धकार को दिनों दिन बढ़ाते जाते हो? तुम्हारे भीतर यह सच्चा विश्वास पैदा होना चाहिए, कि सच्चे धर्म की राह पर जाने में मुझे

नेचर की ओर से ज़रूर गुप्त सहायता मिलेगी और यदि मैं सत्य धर्म्म को मुख्य रक्खूंगा, तो देवात्मा की भी सच्ची मदद मुझे प्राप्त होगी। ऐ समाज के लोगो ! सचाई और हित के राज के लाने के लिए कुछ त्याग और कुछ अर्पण करना सीखो, अपनी जायदाद, अपनी सन्तान्, अपना समय, अपना शरीर, अपना दिमाग़ अर्पण करो। यदि नहीं करोगे, तो यह सब कुछ तो तुम्हारे हाथ से एक दिन चला जाएगा, लेकिन साथ हि इसके तुम्हारा आत्मा भी दिनों दिन पतित होता जाएगा, और तुम हर तरह से घाटे में रहोगे। ऐसा हो कि देवात्मा की देव ज्योति तुम्हें इस सत्य को दिखा सके और उनके देव तेज से तुम्हारा कठोर और पतित हृदय बदल सके, और तुम इस मूल यत्न के साधनों से कुछ सच्चा लाभ उठा सको, कि जो आज से देवात्मा के सम्बन्ध में आरम्भ होते हैं।

---

६६ वें जन्म महोत्सव पर व्याख्यान का सार।

[सेवक, पौष सं० १९७३ वि०]

१० दिसम्बर १९१६ ई० को पूजनीय भगवान् का व्याख्यान पूर्णतः अद्वितीय, निहायत हि ज़ोरदार, बिजली की न्याई दिलों को हिलाने और उच्च प्रभावों से भरने वाला था। इस व्याख्यान में हमारे परम हितकर्त्ता

भगवान् ने इस विश्व वा नेचर के विकास के अटल नियम की भली भांत व्याख्या करने के अनन्तर फ़रमाया, कि यह ख़याल कि ख़ुदा ने मनुष्य को किसी ख़ास तरीक़े से पैदा किया है, पूर्णतः कल्पना मूलक और मिथ्या है। सत्य यह है, कि पशु जगत् के विकास के क्रम में मनुष्य प्रगट हुआ है, और जहां शारीरिक अंगों की बनावट के विचार से मनुष्य उच्च श्रेणी के पशुओं से मिलता जुलता है, वहां भीतर की शक्तियों के विचार से भी उस में कई वासनाएं, उत्तेजनाएं और अहं शक्तियां आदि वैसी हि मौजूद हैं, कि जैसी बहुत से पशुओं में पाई जाती हैं। अलबता यह सच है कि मनुष्य की उन्नत शील बुद्धि शक्ति ने उसे अपने से नीचे के सब पशुओं से जुदा कर दिया है, और वह अपनी विशेष बुद्धि शक्ति की उन्नति से सभ्यता के कई अंगों में आश्चर्य्य जनक उन्नति करने के योग्य हुआ है।

इसी सिलसिले में परम पूजनीय भगवान् ने फ़रमाया, कि मनुष्य के भीतर उसकी कल्पना शक्ति और वासनाओं, उत्तेजनाओं और अहं आदि भावों के उन्नत होने का पहलु ऐसा है, कि जिस ने उसे सभ्यता के कई अंगों में आश्चर्य्य उन्नति करने के योग्य बनाकर भी उसे अपने जीवन के विचार से बहुत घटिया दर्जे का वजूद बना दिया है, और उसे हिंसिक पशुओं से भी अधिक

निम्न अवस्था में पहुंचा दिया है। दृष्टान्त के तौर पर जिस तरह पंजाब के कितने हि शहरों में लड़कियों को मार देने की निहायत मकरूह रसम हज़ारों परिवारों में जारी रही है और कई घरों में अब तक भी जारी है, उस तरह कहां देखा जाता है, कि साधारण पशु तो एक तरफ़, भेड़िए और शेर जैसे हिंस्रिक जानवर भी अपने बच्चों को अपने हाथों से खतम कर रहे हों? कहीं नहीं, कहीं नहीं। इस के भिन्न जहां पशु जगत् के हज़ारों वजूद आपस में मिलकर बहुत अमन और चैन से ज़िन्दगी व्यतीत कर रहे हैं, वहां क्या यह सच नहीं है, कि हज़रत इन्सान को जुरमों से रोकने अथवा जहां तक सम्भव हो, जुरमों के कम करने के लिए विविध देशों की सरकार को हर साल लाखों और करोड़ों रुपए खर्च करने पड़ते हैं? तब सच यह है, कि चूंकि इन्सान अपनी वासनाओं, उत्तेजनाओं और अहं शक्तियों का दास है, (यह शक्तियां उस ने अपने हैवानी बज़ुर्गों से पाई हैं, और खुद उन्हें बढ़ाया है) और वह अपने निहायत सूक्ष्म वजूद के विषय में सत्य ज्ञान के विचार से अन्धेरे में रहा है, और उसके लिए उपरोक्त निम्न शक्तियों की गुलामी के कारण अन्धेरे में हि रहना और ठोकरें खाना और न केवल नाना प्रकार के कल्पित अक़ीदों और मिथ्या विश्वासों में लिप्त रहना, किन्तु नाना प्रकार के

पाप और जुरम करना भी लाज़मी है। जब तक उसके दिल पर अपने भीतर की निम्न शक्तियों का राज्य है, तब तक उसके जीवन की इस महा भयानक और हानिकारक गति को कोई चीज़ भी नहीं बदल सकती। इन्सान की इस निहायत ख़ौफ़नाक और कृपापात्र अवस्था का वर्णन करने के अनन्तर भगवान् देवात्मा ने फ़रमाया, कि क्या नेचर में उसके विकास क्रम में ऐसा प्रबन्ध हो सकता है, कि जो इन्सान की इस ख़ौफ़नाक और कृपा पात्र अवस्था में तबदीली ला सके ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्हों ने निहायत मुख़्तसर शब्दों में प्रगट किया, कि किस प्रकार देवात्मा के इस दुनिया में आविर्भूत होने के अनन्तर उसकी देव शक्तियों के द्वारा हज़ारों जन नाना पापों और बुराइयों से उद्धार लाभ कर चुके हैं, और किस तरह उन में से सैकड़ों जनों ने अपने पिछले पापों का परिशोध किया है और नाना वस्तुएं और हज़ारों रुपए दुखी हृदय और क्षमा प्रार्थना के साथ उन के असल मालिकों को वापिस किए हैं। और किस तरह उस ने (देवात्मा ने) सैकड़ों जनों को हानिकारक मिथ्या संस्कारों और विश्वासों के पंजे से आज़ाद किया है, और उन्हें आत्म जीवन, उसका लक्ष्य, मोक्ष और विकास, पूजा और इबादत आदि नाना विषयों में आश्चर्य देव ज्योति का दान दिया है, और पूजनीय देव

शास्त्र में विश्व गत नाना सम्बन्धों में नाना प्रकार के कल्याणकारी आदेश दिए हैं। यह सब बरकतें देवात्मा की देव शक्तियों के द्वारा प्राप्त हुई हैं, कि जो देवात्मा नेचर के बिकास क्रम में उसका सर्व्वोच्च आविर्भाव है। उन लोगों को जो देश हितैषिता का दम भरते हैं, इस बात का पवित्र अभिमान अनुभव करना चाहिए, कि ऐसा अद्वितीय आविर्भाव उनके हि अपने देश में हुआ है, और वह अधिक मात्रा में उनके हि देश वासियों में उच्च परिवर्तन ला रहा है। और ऐसे लोगों को पूरे जोश और हृदय गत उत्साह के साथ देवात्मा के सर्व्वोच्च श्रेष्ट कार्य्य में सहायक बनना चाहिए।

इसके अनन्तर भगवान् देवात्मा ने पूर्ण विश्वास भरे और ज़ोरदार शब्दों में फ़रमाया, कि देवात्मा ने अपनी विशेष देव शक्तियों के कारण जैसे इस समय तक सब प्रकार के विरोधी हालात पर बराबर जय लाभ की है, वैसे हि आगे भी उसका विजयी होना लाज़मी और ज़रूरी है। हमारे विरोधियों और अन्य जनों के लिए यह उचित है, कि वह उन अत्यन्त आश्चर्य्य जनक कामयाबियों को भूल न जाएं, कि जो देवात्मा ने गत ३४ वर्ष में लाभ की हैं। देव समाज उनके दर्मियान हि कामयाबी से काम करने के लिए वर्तमान है, और हमारे वह देशवासी जो इस देश को सब अंगों में

उभारने और इसका सच्चा भला करने के इस अद्वितीय कार्य्य की अन्धाधुंद मुख़ालिफ़त करते रहते हैं, उन्हें ऐसी मुख़ालिफ़त से अब हट जाना चाहिए।

महा यज्ञ के आरम्भिक दिन पर उपदेश का सार।

(सेवक, पौष सं० १९७४ वि०)

"आज (२९ नवम्बर सन् १९१७ ई०) महा यज्ञ के आरम्भिक दिन में इस समय के सम्मिलन पर अपने हर्ष का प्रकाश करता हूं, और उन लोगों के सम्बन्ध में अपनी विशेष प्रसन्नता का प्रकाश करता हूं, कि जो लाहौर से बाहर दूर २ के स्थानों से इस सभा में योग देने के लिए यहां आए हैं। तुम में से कितनों की आकांक्षा है, और होनी चाहिए, कि यह महा यज्ञ तुम्हारे लिए, जहां तक सम्भव हो, सफल हो। तुम्हारी इस आकांक्षा को सन्मुख रखकर आज इस सम्मिलन के समय में भी तुम्हें अपना शुभाशीर्वाद देना चाहता हूं।

देवात्मा के साथ देव समाजिस्थ जनों के आत्माओं का जिस प्रकार का सम्बन्ध है, और इस सम्बन्ध के विषय में उनकी जैसी कुछ आत्मिक अवस्था है, उसे प्रगट करने और उनकी इस अवस्था में जहां तक सम्भव हो, बेहतरी लाने के जिस महोच्च अभिप्राय को लेकर

महा यज्ञ स्थापन किया गया है, मेरी आकांक्षा है, कि वह महोच्च अभिप्राय जिस २ के आत्मा में जहां तक पूर्ण हो सकता हो, वह पूर्ण हो।

महा यज्ञ के दिनों में तुम में से जो २ जन देवात्मा के सम्बन्ध में एक वा दूसरे प्रकार के सच्चे साधन करने के योग्य बन चुके हों, उनके ऐसे साधनों की सफलता के लिए मैं आशीर्वाद देता हूं, और यह शुभ कामना करता हूं, कि ऐसे जनों के सच्चे शुभ साधनों में जो और लोग योग दें, उनका भी शुभ हो। सम्मिलित साधनों में योग देने के भिन्न तुम में से जो २ जन देवात्मा के सम्बन्ध में किसी प्रकार के निज के कोई साधन कर सकते हों, वा करते हों, उनके प्रति भी मैं यह आशीर्वाद देता हूं, कि उनके वह निज के साधन जहां तक सम्भव हो, सच्चे और सरल साधन हों। अर्थात् वह देवात्मा के सम्बन्ध में जो कुछ पाठ करें, वह उनका पाठ विचार पूर्वक हो। उस पाठ के समय उसके विषय पर भली भांत ध्यान हो। उस पाठ के समय देवात्मा की देव ज्योति उन्हें प्राप्त हो और उसके द्वारा उन्हें वह सत्य दिखाई दें, जो उस लेख में वर्तमान हों। वह जो कुछ शुभ कामना करें, वह उनकी उच्च भाव विहीन केवल शब्दों की कामना न हो। देवात्मा के सम्बन्ध में किसी पुस्तक के पाठ वा श्रवण से वहीं

तक किसी जन का शुभ हो सकता है, जहां तक उसके भीतर जो हितकर सत्य वर्तमान हों, वह उस पर प्रकाशित हों। उसके द्वारा उसका कुछ अज्ञान दूर हो वा कोई मिथ्या विश्वास नष्ट हो; अथवा उस में जो नीच गति नाशक वा उच्च गति दायक भाव वर्तमान हों, उसके उच्च प्रभाव प्राप्त हों। ऐसा हो, कि देवात्मा के सम्बन्ध में तुम में से जिस २ ने अब तक अपने हृदय को जिस २ नीच भाव के द्वारा परिचालित होकर आत्म जीवन नाशक चिन्ताएं वा अन्य क्रियाएं की हों, उनका तुम्हें इन दिनों में साधनों के द्वारा विशेष रूप से बोध हो और उसके सम्बन्ध में ऐसी गतियों के द्वारा नेचर के अटल नियमानुसार आत्मा जिस प्रकार अन्धा और रोगी बनता है, उसका भेद तुम पर प्रगट हो और उस के लिए तुम्हारे हृदयों में सच्ची घृणा और सच्चा कष्ट उत्पन्न हो, और जिस प्रकार शारीरिक मृत्यु के बोधी होकर तुम अपनी शारीरिक मृत्यु से डरते हो और उस से बचना चाहते हो, उसी प्रकार तुम्हें अपने २ आत्मा की मृत्यु का बोध और उसके लिए तुम्हारी जो गतियां मृत्यु दायक हैं, उन से सच्चा भय उत्पन्न हो और उन से उद्धार लाभ करने के लिए तुम्हारे हृदय में आकांक्षा जाग्रत वा उन्नत हो और तुम क्या अपनी मोक्ष और क्या अपने उच्च विकास के लिए देवात्मा के

साथ अपने आत्मिक सम्बन्ध को अधिक से अधिक सत्य रूप से उपलब्ध करने के योग्य बनो। मैं वार २ आकांक्षा करता हूं, कि तुम्हारे क्या सम्मिलित, क्या निज के साधन ऐसे हों, कि जिन में देवात्मा के देव प्रभाव तुम्हें प्राप्त हों, और तुम उसके सम्बन्ध में अपनी एक वा दूसरी नीच क्रियाओं और हीनताओं को उपलब्ध कर सको। और तुम इस सत्य को भी देख सको, कि यदि देवात्मा के साथ तुम्हारा अनुराग मूलक यथेष्ट सम्बन्ध स्थापन न हो, तो इस से तुम्हारे आत्मा की क्या २ हानि है। यदि धन सम्पत्ति, मान बड़ाई, प्रशंसा आदि से अन्धे बनकर तुम अपने आत्मा के मुख्य उद्देश्य को भूल जाओ वा उसके देखने के योग्य न रहो, तो तुम्हारे लिए कैसा दुर्भाग्य का विषय है। क्या यह सच नहीं, कि नेचर तुम्हारी आंखें खोलने के लिए वार २ ऐसी घटनाएं पैदा करती है, कि जिन के द्वारा तुम पर यहां के नाना पदार्थों और सम्बन्धियों की असारता प्रगट करती है, और पुकार २ कर कहती है, कि जिस धन वा सम्पत्ति के पीछे तुम अन्धे बनते हो, जिस सन्तान् के मोह में तुम अन्धे बनते हो, अन्य सम्बन्धियों के मोह में फंसकर अन्धे बनते हो, नाम और इज़्ज़त के मोह में फंसकर अन्धे बनते हो, यहां की वह सब चीज़ें और सम्बन्धी कि जिन के पीछे तुम अपने आत्मा का खून

करते हो, मैं एक दिन तुम से अवश्य छीन लूंगी और तुम इस मोह से अपने आत्मा का जो कुछ पतन कर रहे हो, उसका तुम्हें महा भयानक फल दिखाकर बताऊंगी, कि तुम कितने महा मूर्ख और अन्धे थे। ऐसा हो, कि तुम्हें देवात्मा की वह देव ज्योति मिले, जिस में आत्मा और उसके जीवन की सत्यता प्रकाशित होती है, और यह तत्व दिखाई देता है, कि मनुष्य के अस्तित्व में उसका आत्मा हि एक मात्र सार पदार्थ है, और इस आत्मा का जो सच्चा और पूर्ण रक्षक और जीवन दाता है, वही मुख्य वा मूल सम्बन्धी है, और उसका अनुराग सर्वाङ्ग हितकर अनुराग है। इन दिनों में महा यज्ञ के साधनों के द्वारा जहां तक इस प्रकार के सत्य और सार तत्व तुम पर प्रगट हों, और तुम्हारे हृदय में कोई उच्च परिवर्तन उत्पन्न हो, वहां तक तुम्हारे आत्मा का भला हो सकता है। मैं यह आशीर्वाद देता हूं, कि इन महा यज्ञ के दिनों में तुम्हारे ऐसे साधनों से जो कुछ और जितना शुभ सम्भव हो, वह शुभ तुम्हें प्राप्त हो।"

महा यज्ञ के आरम्भ होने पर भगवान् देवात्मा का आशीर्वाद और संक्षिप्त उपदेश।

[सेवक, पौष सं० १९७५ वि०]

१९ नवम्बर सन् १९१८ ई० की प्रातः काल को महा यज्ञ के आरम्भ होने पर जीवन दाता भगवान् देवात्मा ने अपना जो शुभ आशीर्वाद और संक्षिप्त उपदेश प्रदान किया, हम उसका सार नीचे दर्ज करते हैं:—

" आज इस वर्ष के महा यज्ञ के आरम्भ के दिन मैं यह हृदय गत शुभ कामना करता हूं, कि हमारा यह सम्मिलन हम सब के लिए कल्याणकारी हो, और इस के बाद भी इस यज्ञ के सम्बन्ध में तुम्हारे जो कुछ साधन हों, वह तुम्हारे लिए जहां तक सम्भव हो हितकर हों।

महा यज्ञ के सम्बन्ध में देव शास्त्र में जो आदेश दिए गए हैं, उन में शुरू में हि यह बताया गया है, कि इस यज्ञ का साधन कर्ता देवात्मा के साथ अपने आत्मा के सम्बन्ध को जाने, और उस से भी बढ़कर उसे उपलब्ध करने की चेष्टा करे—अर्थात् वह यह जाने कि देवात्मा कौन हैं, और उनके साथ मेरे आत्मा का क्या सम्बन्ध है, और वह सम्बन्ध किस प्रकार स्थापन होता है, और किन २ लक्षणों से पहचाना जाता है, और ऐसे सम्बन्ध के स्थापन होने से किसी साधक आत्मा को क्या २

लाभ होता है, और यदि उसके साथ कोई हृदयगत सम्बन्ध स्थापन न हो या न हो सके, तो उस से उस आत्मा की क्या २ हानि होती है ? इन तत्वों पर इन महा यज्ञ के दिनों में विशेष रूप से विचार करने और उनके सम्बन्ध में ज्ञान लाभ करने की ज़रूरत है।

देवात्मा के साथ किसी आत्मा का सम्बन्ध दो प्रकार के भावों के द्वारा स्थापन होता है, जिन में से एक प्रकार के वह उच्च भाव हैं, कि जो गौण कहलाते हैं, और जो खुद भी कई दर्जे रखते हैं, और जो यदि किसी आत्मा में पैदा हों, और उसके नीच भावों यथा घमंड, द्वेष, ईर्षा, अहं प्रियता और नीच वासनाओं की गुलामी आदि के महा हानिकारक असरों से नष्ट न हो जावें, और आत्मा में पवित्रता के आने से उन्नति कर सकें, तो वह उसके हृदय में उस मुख्य भाव के जाग्रत और उन्नत करने के लिए अनुकूल भूमि तैयार कर सकते हैं, कि जिस के उत्पन्न होने के विना कोई आत्मा सच्चे मोक्ष और उच्च जीवन के देने वाले देव प्रभावों को लगातार लाभ नहीं कर सकता, और इसीलिए एक तरफ़ जैसे वह सत्य मोक्ष नहीं पा सकता, वैसे हि दूसरी ओर उच्च जीवन में भी विकास पाने का अधिकारी नहीं बनता।

अब सोचने वाली बात यह है, कि वह कौनसा

मुख्य भाव हैं, कि जो जब तक पैदा न हो, तब तक आत्मा में जो मृत्यु दायक शक्तियां काम करती हैं, उन से मोक्ष और जो उच्च जीवन दायक शक्तियां उस में नहीं हैं, उनका उस में विकास नहीं हो सकता? वह वही महा आवश्यक और अमूल्य भाव है जिसे देव प्रेम कहते हैं। याद रक्खो कि इस सारे विश्व में जो शक्तियां काम कर रही हैं, उन में से कुछ वह हैं जो बनाने वाली हैं, और कई बिगाड़ने वाली। यदि किसी में देवात्मा के प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता और उन से ऊपर सहानुभूति, हानि बोध और हानि परिशोध आदि के भाव पैदा हो सकें, और वह इन भावों के द्वारा देवात्मा के साथ जुड़ कर उनकी सच्ची पूजा और सेवा के द्वारा उनके देव प्रभावों को कुछ न कुछ लाभ कर सके, तो जब तक उसका इस प्रकार का सिलसिला जारी रहेगा, तब तक उसकी वह शक्तियां उस में उसकी योग्यता के अनुसार कुछ न कुछ जीवन के बनाने या पैदा करने का काम करती रहेंगी, और उनका ठीक सिलसिला चलने पर वह उसके हृदय की भूमि को धीरे २ इस योग्य भी बनाती जाएंगी, कि उस में से समय आने पर देवात्मा के प्रति देव अनुराग की उत्पत्ति हो, कि जो मुख्य चीज़ है, और ज़िस के यथेष्ट मात्रा में उन्नति करने पर हि देवात्मा के साथ किसी आत्मा का मुख्य और सार

और स्थाई सम्बन्ध स्थापन हो सकता है, और यदि उसके वह गौण भाव उत्पन्न होने पर उसके नाना नीच भावों का मुक़ाबिला न कर सकें, और वह नष्ट हो जावें, तो फिर उस के हृदय से इस मुख्य भाव अर्थात् देव अनुराग की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती।

जब तक देवात्मा के प्रति देव प्रेम पैदा न हो, तब तक आत्मा की मृत्यु से रक्षा नहीं हो सकती। जिस तरह जिस्म की रक्षा के लिए ख़ुराक के काफ़ी मिक़दार में और बाक़ायदा तौर पर भीतर जाने और उसके जिस्म से अन्दर की मैल के हररोज़ ख़ारिज होते रहने की सख़्त ज़रूरत है, और जिस मनुष्य के शरीर में इस क़िस्म का सिलसिला न चल सके, उसका जिस्म ज़िन्दा नहीं रह सकता, जैसे कि हाल में एक बहुत अच्छी सेवका के अन्दर दवाई और ख़ुराक न जाने से उस के शरीर की मृत्यु हो गई, इसी तरह आत्मिक जीवन की मृत्यु से रक्षा और उसके विकास के लिए आत्मा में देव अनुराग या देव प्रेम के पैदा होने की नितान्त आवश्यकता है। इस संसार में जो लोग उन घृणाओं को प्यार करते हैं, जो आत्मा के लिए विनाशकारी हैं, और उन वासना मूलक सुखों या उनकी ग़ुलामी को प्यार करते हैं, जो देव अनुराग के सख़्त मुख़ालिफ़ हैं, वह लोग देवात्मा के साथ अपने आत्मा का गौण अर्थात्

नीच दर्जे का भी कोई सम्बन्ध स्थापन नहीं कर सकते या अगर वह कभी कुछ पैदा भी हो तो वह कुछ अरसे में टूट जाता है।

अब तुम में से जिस २ के लिए सम्भव हो वह इन दिनों में यह विचार करे, कि वह इन गौण और मुख्य सम्बन्ध सूत्रों या भावों के विचार से खुद किस अवस्था में है, और देवात्मा के सम्बन्ध में उसकी अवस्था क्या है, और आया देव समाज में दाखिल होने और उसकी उच्च संगत में बैठने का अधिकार पाकर उसका देवात्मा के साथ कुछ भी आत्मिक सम्बन्ध पैदा हुआ है, कि जिस के सम्बन्ध में साधन के लिए इस साल फिर आज के दिन से यह महा यज्ञ आरम्भ होता है ?

हमारी यह हृदय गत आकांक्षा है, कि क्या यहां लाहौर के और क्या बाहर के मुक़ामों के उन सब सेवकों और सेवकाओं को जहां तक मुमकिन हो, महा यज्ञ के दिनों में देवात्मा के साथ अपने सम्बन्ध के विषय में विचार करने का अवसर प्राप्त हो, और उन्हें वह देव ज्योति मिले, कि जिस में उन्हें अपने २ आत्माओं की वर्तमान अवस्था के देखने और पहचानने का अवसर मिल सकता है—खासकर जो आत्मा एक महा यज्ञ के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे और इसी तरह बहुत से यज्ञों के गुज़र जाने के बाद भी देवात्मा के

साथ आत्मिक सम्बन्ध स्थापन करने वाले कोई गौण उच्च भाव भी लाभ नहीं कर सके अथवा जो उन में से कुछ को कभी अपने हृदय में विकसित करने का सौभाग्य पा चुके थे परन्तु फिर अपने नीच भावों से पराजय होकर उन्हें नष्ट कर चुके हैं, उन्हें इन दिनों में अपनी अवस्था के देखने और पहचानने और उस में बेहतरी लाने का फिर अवसर प्राप्त हो।

हमारी यह गाढ़ आकांक्षा है, कि इस महा यज्ञ के सम्बन्ध में यहां और और जगहों में जो कुछ साधन हों, वह साधन कराने वालों और उन में योग देने वालों के लिए जहां तक सम्भव हो अधिक से अधिक कल्याणकारी हों।

मेरे प्रायः सैंतीस साल के विविध प्रकार के हितकर साधन और काम।

(सेवक मार्गशिर सं० १९७६ वि०)

सन् १८८२ ई० में जीवन व्रत के ग्रहण करने के अनन्तर आज तक मैं प्रायः ३७ साल तक जिस २ प्रकार के सम्पूर्णतः हितकर साधनों और कामों में लगा रहा हूं, वह यह हैं :—

(१) अपने जीवन व्रत विषयक अद्वितीय देव अनुरागों की उन्नति के सम्बन्ध में प्रति दिन बहुत प्रातः

काल अर्थात् सूर्य्योदय से प्रायः डेढ़ दो घण्टे पहले एकान्त में बैठकर कई प्रकार के निज के साधन करना।

(सूचना :— मेरे इन निज के साधनों का कुछ विस्तार पूर्वक हाल मेरे एक और अलग लेख में मिलेगा।)

(२) अपने जीवन व्रत की सिद्धि में सहायक एक वा दूसरे विषय के प्रगट होने पर उसके सम्बन्ध में एक वा दूसरी पुस्तक वा सङ्गीत आदि की रचना करना वा कोई और हितकर पुस्तक लिखना वा उसका प्रबन्ध करना।

(३) विश्व के एक वा दूसरे विभाग से सम्बन्ध रखने वाले विविध तत्वों के सम्बन्ध में चिन्तन और विचार करना और नाना समयों में उनके विषय में अपने विचार और सिद्धान्तों को लिपिबद्ध करना।

(४) देव शास्त्र नामक एक विशेष महा ग्रन्थ की रचना करना।

(५) अपनी कोई पुस्तक वा अपना कोई अन्य लेख जो प्रेस में हो, उसके आवश्यक प्रूफ़ देखना।

(६) अपनी रची हुई किसी पुस्तक को आवश्यकता के अनुसार फिर छपवाना और उस में किसी श्रेष्ठ परिवर्तन की सम्भावना बोध करने पर उसे पहले की अपेक्षा और अधिक श्रेष्ठ बना देना।

(७) पृथिवी के नाना सम्प्रदायक धर्म्म मतों और

सायंस (विज्ञान) और फ़िलासफ़ी (विश्व मूलक तत्त्व ज्ञान) के सम्बन्ध में विशेष कर और उसके भिन्न अन्य विविध प्रकार के हितकर विषयों के सम्बन्ध में नाना प्रकार की पुस्तकों और सामयिक पत्रों आदि का अध्ययन करना।

(८) नेचर की विविध प्रकार की घटनाओं के सन्मुख आने पर अपने गंभीर अवलोकन और विचार के द्वारा उनके विषय में अपने ज्ञान को बढ़ाना और नेचर के साथ अपने सम्बन्ध को गाढ़ करना।

(९) विश्व के किसी विभाग के सम्बन्ध में हितकर सेवा विषयक अपने हाथों से एक वा दूसरे प्रकार का कोई कार्य्य करना। यथाः— अपने किसी घर वा किसी स्थान को साफ़ करना, घर की दीवारों पर से जाले उतारना, और घर के अन्य दोषों को दूर करना और उसके विविध कमरों को अपनी अवस्था के अनुसार सुन्दर रूप देना; किसी रास्ते पर से किसी हानिकारक वस्तु पत्थर, रोड़े, कांच के टुकड़े, किसी फल के छिलके और कांटे आदि को उठाकर अलग फेंक देना, अपने निवास स्थान की वायु को जहां तक सम्भव हो शुद्ध रखने के लिए उचित समयों में उसके दरवाज़े और खिड़कियां और रोशनदान आदि खोलना और उनके आस पास की वायु जहां तक अपने मल मूत्र के दूषित

कर्णों से शुद्ध रह सकती हो, वहां तक उसे अपने हाथ की एक वा दूसरी क्रिया के द्वारा शुद्ध रखना, फूलों के गमलों और अन्य पौदों को पानी देना और उन्हें जहां तक हो, सुशोभित अवस्था में रखना, उनकी गोडी करना, पौदों वाले गमलों वा थावलों के भीतर से घास बूटी निकाल देना, उनके सूखे वा खराब पत्ते वा उनकी सूखी टहनियों वा उनके सूखे फलों को दूर कर देना, उनके मैले पत्तों को पानी से धो देना, उनकी खराब वा बदसूरत शाखों की कांट छांट कर देना, हितकर पशुओं की सेवा के लिए प्रति दिन अपने आहार में से दो चार उनके लिए कुछ भाग निकालना, पशु शाला में जाकर पक्षियों और वानरों आदि को अच्छे २ फल और कई प्रकार के अन्य पशुओं को दाने खिलाना, बीच २ में कई गौओं आदि को खाने के लिए खल, विनोले वा दाना आदि भेजना।

(१०) अनुकूल अवस्था के प्राप्त होने पर अपने जीवन व्रत के सम्बन्ध में सेवाकारी होने के निमित्त कोई घर वा कमरा आदि बनवाना।

(११) विश्व सम्बन्धी किसी तत्व अथवा देवसमाज सम्बन्धी एक वा दूसरे कार्य्य अथवा अपने सम्बन्ध में किसी पारिवारिक वा सामाजिक जन के किसी अनुचित और अनिष्टकारी आचरण अथवा अपने पारिवारिक

जनों और अपनी समाज के सम्बन्ध में अपने किसी विरोधी वा उत्पीड़न कर्त्ता वा कृतघ्न की किसी पाप-मूलक और उत्पीड़नकारी क्रिया से दारुण आघात् पाकर अपनी और उनकी रक्षा के विषय में विचार करना; और ऐसे नाना प्रकार के विचारों में प्रवृत्त होकर नाना समयों में सुनसान रात्रि के समय में भी कई २ घण्टे सो न सकना और न सोना।

(१२) अपने जीवन व्रत में अपने सेवाकारी स्थूल शरीर की रक्षा के निमित्त किसी विशेष कारण के भिन्न सदा नियमित रूप से शौच, स्नान, आहार, विश्राम, औषधि सेवन और व्यायाम आदि करना और आहार के लिए बैठने के समय उसकी सामग्री के देने में भौतिक, उद्भिद्, पशु वा मनुष्य जगत् के जिन २ अस्तित्वों ने भाग लिया हो, उन्हें स्मरण करके उनके हित के लिए प्रति दिन दो बार मंगल कामनाएं करना।

(१३) नाना पबलिक सभाओं में विविध हितकर विषयों में व्याख्यान, लेकचर अथवा उपदेश देना वा वक्तृता करना।

(१४) अपने किसी पारिवारिक जन के रोग ग्रस्त होने पर उसकी भली भांत देख भाल करना, और उस के रोग की निवृत्ति के लिए सब आवश्यक प्रबन्ध करना।

(१५) अपने पारिवारिक जनों की आवश्यकताओं

का पता रखना और उन्हें आप पूरा करना वा किसी और से पूरा कराना।

(१६) समय २ में अपने पारिवारिक जनों को अपने समीप बुलाकर अपनी बात चीत और अपने उपदेशों के द्वारा उनके आत्मिक कल्याण के लिए संग्राम करना।

(१७) अपने आश्रित पौदों और पशुओं की सब प्रकार से आवश्यक रक्षा करना और अपनी अवर्तमानता में उनकी उचित रक्षा का प्रबन्ध करना।

(१८) अपने घर के कमरों की सफ़ाई, मरम्मत, सजावट, असबाब की तरतीब और अपने सेहन आदि की सफ़ाई और खूबसूरती आदि की देख भाल रखना।

(१९) उचित समझने पर बाहर के किसी माननीय वा अन्य जन से मिलना और उस से अपने जीवन व्रत वा अपनी समाज वा अपने देश वा अपनी जाति आदि के सम्बन्ध में हितकर बात चीत करना।

(२०) अपने परिवार के किसी रोग ग्रस्त वा दुखिया जन वा किसी २ विशेष सामाजिक वा अन्य जन के किसी रोग वा कष्ट को जानकर उसे बार २ स्मरण करना और उसके शुभ के लिए बार २ मंगल कामनाएं करना। इसके भिन्न किसी २ विशेष जन के सम्बन्ध में अपनी देव शक्तियों के बल को विशेष रूप से प्रयोग करके उस

की रक्षा के लिए विशेष रूप से संग्राम करना ।

(२१) अपने नाम की और देव समाज से सम्बन्ध रखने वाली अन्य बहुत सी चिट्ठियों को खुद पढ़ना और उनके विषय में आवश्यक उत्तर या आज्ञाएं आदि देना ।

(२२) अपने वा अपने परिवार वा समाज पर किसी दुर्घटना के आने पर उस से रक्षा के निमित्त उचित और आवश्यक उपायों के सम्बन्ध में विचार और उचित उपाय अवलम्बन करना ।

(२३) अपने प्रति समय २ में अपने पारिवारिक, सामाजिक और अन्य जनों की अनुचित वा नीच क्रियाओं से नाना प्रकार के महा कष्ट दायक और एक२ समय में महा सांघातिक आघातों को पाकर शुभ कामनाओं आदि के द्वारा इन आघातों की अति विकट और घोर यंत्रणा और विविध प्रकार की हानि से जहां तक सम्भव हो, निष्कृति पाने और उन पर जय लाभ करने के लिए संग्राम करना ।

(२४) देव समाज के नाना जनों की नाना सभाएं करना, और उन में से अधिकारी जनों के हृदयों तक अपने उपदेशों के द्वारा अपने देव प्रभावों को पहुंचाकर उनका अज्ञान और मिथ्या विश्वासों और उनके हृदय के किसी पतनकारी नीच भाव वा उनकी किसी नीच

गति-दायक क्रिया से इनका उद्धार करने और उन में उच्च जीवन सम्बन्धी किसी सात्विक भाव के उत्पन्न करने के लिए संग्राम करना।

(२५) देव समाज से सम्बन्ध रखने वाले क्या स्थानीय और क्या बाहर के सेवकों आदि से समय २ में मिलना और उनके साथ उनके अपने आत्मिक जीवन वा समाज की किसी संस्था वा उसके किसी कार्य्य आदि के विषय में बात चीत करना।

(२६) देव समाज की विविध संस्थाओं की रक्षा और उन्नति के सम्बन्ध में विचार करके उनके परिचालकों को उचित आज्ञाएं आदि देना।

(२७) देव समाज परिषद् की आप सभाएं करना अथवा उन में योग न देने की अवस्था में उसके सभासदों को विचार के लिए अपनी ओर से कई प्रकार के आवश्यक विषय देना।

(२८) देव समाज के कर्म्मचारियों से मिलकर समाज के सम्बन्ध में उन्हें कई प्रकार के नए २ और आवश्यक काम बताना।

(२९) देव समाज सम्बन्धी कार्य्य क्षेत्रों का समय २ में दौरा करना और वहां के विविध कामों को देखना और वहां पर उपदेशों आदि की सभाएं करना।

(३०) देव समाज परिषद् और देव समाज आफ़िस

के कई प्रकार के काग़ज़ों का पता लेना और ज़रूरी काग़ज़ों पर दस्तख़त करना।

(३१) देव समाज के बड़े २ उत्सवों वा जलसों आदि के सम्बन्ध में तजवीज़ें सोचना, कार्य्य प्रणाली तैयार करना वा कराना और उसके भली भांत पूरा होने के निमित्त आवश्यक प्रबन्ध करना।

(३२) अपने तजरुबे की उन्नति के साथ २ देव समाज की गठन की उन्नति को सन्मुख रखकर विचार करना, उसके विषय में नियम बनाना और उन्हें प्रच-लित करना, और इस विधि से जहां तक सम्भव हो, सामाजिक गठन को हर साल अधिक से अधिक श्रेष्ठ और हितकर बनाने का यत्न करना।

(३३) देव समाज के किसी मकान की रचना, मरम्मत, सजावट, अथवा उस के पहले से बने हुए किसी मकान आदि में श्रेष्ठ परिवर्तन लाने की तजवीज़ें सोचना और उसके पूरा करने का प्रबन्ध करना।

(३४) देव समाज के किसी सामयिक पत्र को आप एडिट वा सम्पादन करना।

(३५) देव समाज के कई सामयिक पत्रों के लिए आप लेख लिखना वा उनके लिए उनके एडीटरों को कई प्रकार की सामग्री देना।

(३६) देव समाज के नाना जनों के विविध प्रकार के लेखों को दुरुस्त करना और उन्हें छपने के लिए देना ।

(३७) देव समाज के एक वा दूसरे जन से अलग मिलकर उसको किसी नीच चिन्ता वा क्रिया आदि से उसका उद्धार वा उस में किसी उच्च भाव के उत्पन्न करने के लिए संग्राम करना ।

(३८) आवश्यक होने पर अपने सामाजिक जनों में से किसी जन से अलग मिलकर उसकी दिक्कतों वा उलझनों वा उसकी किसी शिकायत आदि से अवगत होना, और उसके प्रति हित भाव से परिचालित होकर उसके हित के लिए संग्राम करना ।

(३९) शरीर के अत्यन्त थक जाने पर खड़े २ वा टहलते २ वा बैठे २ वा लेटे २ नेचर विषयक किसी तत्व वा समाज विषयक किसी हितकर विषय वा कार्य्य आदि के सम्बन्ध में विचार करना ।

(४०) आवश्यकता के अनुसार समय २ में गवर्नमेंट और उसके अफ़सरों और अन्य नाना जनों के साथ पत्र व्यवहार करना ।

फलतः जब तक मैं पूर्ण निद्रा की अवस्था में नहीं पहुंच जाता रहा, अथवा किसी शारीरिक रोग वा पीड़ा

के द्वारा बेसुध नहीं हो जाता रहा, तब तक मैं अपने सर्व्वाङ्ग और पूर्ण हित अनुराग के कारण किसी एक वा दूसरे प्रकार के हितकर कार्य्य वा विचार आदि में प्रवृत रहने के बिना खाली रह नहीं सकता और इसीलिए उपरोक्त कामों में से एक वा दूसरे प्रकार के कामों में लगा रहना मेरे लिए आवश्यक रहा है।

यहां तक कि नाना समयों में मैं अपने शारीरिक वल वा उसकी योग्यता से बहुत अधिक काम लेने और अतिरिक्त परिश्रम करने के कारण बीमार और कई बार बहुत बीमार हो जाता रहा हूं। फिर क्या अपने अतिरिक्त परिश्रम और क्या अन्य जनों के द्वारा दारुण आघातों वा किसी और कारण से सख्त बीमारी की हालत में भी मैं केवल यही नहीं, कि अपनी ऐसी किसी बीमारी के कारण बहुत कष्ट और यंत्रणा पाता रहा हूं, किन्तु ऐसे समयों में अपने आप को कई प्रकार के हित कर कामों के करने के अयोग्य और उनके सम्बन्ध में अपने महा प्रबल हित अनुराग की तृप्ति न पाकर भी कष्ट अनुभव करता रहा हूं और इसीलिए इस भाव से लाचार होकर अनेक बार सख्त बीमारी की हालत में भी बीमारी के बिस्तर पर लेटे २ वा कुछ बैठे वा कुछ लेटे २ अपने हाथ से खुद कुछ लिखने वा नोट लेने या

अपने मुंह से बोलकर किसी विषय में किसी और से कुछ लिखवाते रहने के लिए मजबूर हो जाता हूं। ऐसे हि समयों में मैंने अपनी "पशु जगत् और उस के सम्बन्ध में मनुष्य के कर्तव्य" नामक पुस्तक की रचना की थी, और उसके भिन्न विविध प्रकार के और लेख लिखवाए हैं।

श्री सत्यानन्द अग्निहोत्री।

परिशिष्ट ।

पति पत्नी व्रत पर उपदेश ।

(सेवक वैशाख सं० १६७६ वि०)

१६ मार्च १९१९ ई० को इस व्रत के सम्बन्ध में भगवान् देवात्मा ने जो सभा कराई, उस में उन्हों ने पहले अपने जीवन सङ्गीत के वह पद गाए, जिन में उन की देव ज्योति और देव तेज के अधिकारी जनों तक पहुंचकर उन में विशेष उच्च परिवर्तन उत्पन्न करने की आकांक्षाओं का बयान है । फिर भगवान् देवात्मा ने एक अति कल्याणकारी उपदेश दिया, जिस में उन्हों ने फ़रमाया, कि जिस तरह भौतिक जगत के विकास में सूर्य्य का आविर्भाव विशेष है, और उसकी ज्योति और उसके तेज के इस पृथिवी पर पहुंचने से हि लाखों और करोड़ों जीवधारी अपने शरीर के विचार से जीवित रहते हैं, उसी प्रकार मनुष्य जगत् के भीतर देवात्मा का आविर्भाव भी विशेष है, और वह अपनी देव ज्योति और अपना देव तेज अधिकारी जनों में संचार करके उनके आत्माओं में पूर्णतः नया और विशेष जीवन पैदा कर रहे हैं । साधारण मनुष्य शरीर और बुद्धि रखकर भी नाना सम्बन्धों में महा हानिकारक बना हुआ है । वह मान्सिक शक्तियों को उन्नत करके और सभ्यता में बहुत कुछ उन्नति करके भी भीतर के नीच भावों के

अधिकार में होने के कारण कितनी हि सूरतों में पशुओं से भी निम्न प्रमाणित हो रहा है, और इसलिए सख़्त ज़रूरत है, कि

(१) उसे ऐसी रोशनी मिले, कि जो उसके आत्मिक अन्धकार को दूर करके उसकी योग्यता के अनुसार उसके आत्मा की गठन और उसके बनने और बिगड़ने आदि के तत्वों को उसे दिखावे और उनका उसे बोध करावे।

(२) उसे ऐसी शक्ति मिले, जिस से उसका अपनी एक वा दूसरी नीच गति से उद्धार हो और उसके भीतर, अपनत्व के उलट, पर सेवा विषयक कोई उच्च भाव जाग्रत और उन्नत हो, और वह अपने नाना सम्बन्धों में नीच भावों के घटाने और उनके लिए सेवाकारी होने के योग्य हो।

और इन दोनों की हर एक विद्वान और मूर्ख, हर एक ग़रीब और अमीर, हर एक गंवार और शहरी को ज़रूरत है। और इसी ज़रूरत को पूरा करने के लिए देवात्मा का आविर्भाव हुआ है, जिस का सबूत इसी दुनिया में सैंकड़ों जनों के भीतर उच्च परिवर्तन से मिल सकता है।

नाना सम्बन्धों में बेहतरी लाने के लिए देवात्मा ने जो साधन प्रणाली स्थापन की है, वह भी विशेष है।

उसके स्थापन किए हुए सोलह यज्ञ और उनकी साधन प्रणाली और कहीं नहीं है। उन्हीं में एक यज्ञ पति पत्नी के सम्बन्ध में है, कि जिस का आज व्रत है। इस यज्ञ सम्बन्धी साधनों का उद्देश्य यह है, कि देवात्मा के देव प्रभाव पतियों और पत्नियों तक पहुंचें और उस से उनके परस्पर के सम्बन्धों से बुराई दूर हो, और भलाई उत्पन्न हो। इस प्रकार के उच्च परिवर्तन कसरत से परिवारों में आए हैं।

जिस प्रकार शारीरिक रोगों के इलाज के लिए डाक्टरों और हस्पतालों की ज़रूरत है, उसी प्रकार आत्मिक रोगियों के इलाज के लिए देव समाज में आत्मिक हस्पताल का काम हो रहा है। जहां रोगी आत्माओं में धीरे २ सेहत आती है, और यह सेहत नेचर के अटल नियमों के अनुसार हि आती है। और जिस प्रकार हर एक शारीरिक रोगी राज़ी नहीं हो सकता, और किसी स्कूल का हर एक लड़का डिगरी हासिल नहीं कर सकता, उसी प्रकार हर एक आत्मा अपने आत्मिक रोगों से रिहाई लाभ नहीं कर सकता, या किसी रोग से रिहाई पाने पर लाज़मी तौर पर सदा के लिए बचा नहीं रह सकता, बलकि कोई २ गिर भी जाता है, अर्थात् फिर उसी रोग में ग्रस्त हो जाता है, और उन में से कोई फिर अच्छा होना भी चाहता है और अच्छा हो भी जाता है, और कोई नहीं भी होता,

और नष्ट हो जाता है। देवात्मा नेचर में जो कुछ असम्भव है, उसे सम्भव नहीं बना सकता। उनके देव प्रभावों से हर एक अधिकारी आत्मा में उसकी योग्यता के अनुसार उच्च परिवर्तन ज़रूर आता है, कि जिस के लाभ करने की हर एक अधिकारी आत्मा को अत्यन्त और सब से बढ़कर आवश्यकता है।

अब तक इस दुनिया में मनुष्यों की एक विशेष संख्या को उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नति तक का हि बोध प्राप्त हुआ है, और उसके लिए उन्हों ने संस्थाएं खोली हैं। लेकिन हृदयों के रोगों और उनके विकारों को दूर करके और उन में उच्च भाव उत्पन्न करके उन्नति लाने के लिए नेचर की सच्ची वा वैज्ञानिक कोई संस्था नहीं है। देवात्मा ने देव समाज की यह अद्वितीय संस्था इसी उद्देश्य को लेकर स्थापन की है। जिन का यहां आकर हित हुआ है, उनका यह कर्तव्य है, कि वह जहां इस संस्था से आप लाभ उठावें, वहां इस तत्व को जानकर कि औरों की भलाई करने के बिना अपनी भलाई का दायरा नहीं बढ़ता, अपने पारिवारिक जनों, सम्बन्धियों, मित्रों, दोस्तों और अन्य जनों को लाकर इस अद्वितीय संस्था से लाभ उठाने के योग्य बनावें।